इकई 1 रीतिकालः परिचय एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 रीतिकाल परिचय
1.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
1.3.2 काल-विजान
1.3.3 नामकरण
1.3.4 वर्गीकरण
1.3.5 प्रवृत्तियाँ
1.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
1.4.1 दरबारीपन
1.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
1.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
1.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
1.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

'मध्यकालीन कविता' शीर्षक प्रश्न पत्र का यह रीतिकाल संबंधित खण्ड की प्रथम इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

1.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहेली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

1.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है, वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता । इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता । लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है....."भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। ..... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का

लड़ाई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	**आलोचक**
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डॉ0 नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह
1624- 1832 ई.	मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।

रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में 1650 ई. से 1850 ई. के बीच मान लिया गया है। 1643 ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. के बाद समाप्त होती है। 1842- 43 ई. से राजा लक्षमण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' का रचनाकाल प्रारंम्भ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर 1850 ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- '' इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'' केशवदास का समय 1590 से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, डॉ0 नगेन्द्र

विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - 1643 ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा

अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। "(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृष्ठ - 63) आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

1.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है '' इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।'' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' पृष्ठ 179) नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह 'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है। .....संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही 'रीति' नाम से विख्यात हुई। '' (पृष्ठ- 563) रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किये गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही 'रीतिकाल' नामकरण का आधार बनी। 'रीतिकाल' का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि 'रीतिकाल' नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता। रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्की के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	**आलोचक**
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डॉ0 रामाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

1.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

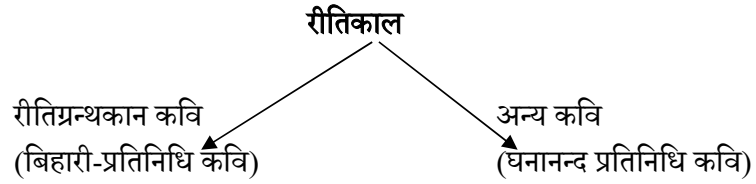

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डॉ0 नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डॉ0 बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

रीतिकालीन कविता का वर्गीकरण

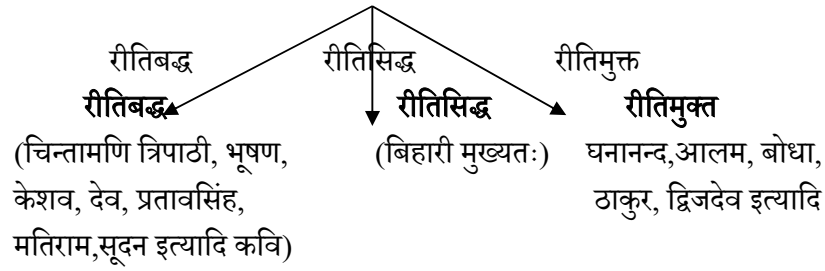

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

1.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है।

रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- **रीति-निरूपण की प्रवृत्ति :** रीतिकाल कविता की सबसे बडी़ पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।
- **श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति -** रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था। अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ।।' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''
- **सहजता बनाम अलंकरण-** भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई । मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।
- **सामंती चित्र और दरबारीपन-** रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल

मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि।..... यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था। इन आदर्शों से गाँव का कोई नाता नहीं था। इसलिए नागर संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उडा़ने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय ..... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर..... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल ..... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन ..... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन..... ने माना है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित शब्दों पर 8-10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

1.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानें है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भों में समझने का प्रयास करें।

1.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई

है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। ..... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा।''

1.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। 200 वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है।.....पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य- लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम् उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहे हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है। '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता। कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता -सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ। "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इक्ट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।''

1.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया। शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति

न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- '' रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता । वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।'' (पृष्ठ - 564) पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" ('हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) डॉ0 नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई।।

फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कह्यो मुसक्याइ, लला, फिर आइयो खेलन होरी।।

1.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 169) शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। ..... अतः उनकी

बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 186) यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं **(भाखाबद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी)** तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में टिप्पणी है ''रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 57)

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बताइए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की 'हिततरंगिणी' रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाला की कविता का समय मुगल काल का समय है।

1.6 रीतिकालः मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को खा़रिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना हेय नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः '' मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है '' रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान

उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। .....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। .....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक-नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। '' (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)

1.7 सारांश

मध्यकालीन कविता की 'रीतिकालः परिचय एवं आलोचना' शीर्षक यह 11 वीं इकाई है। इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का 'उत्तर रमध्यकाल' (1650- 1850 ई.) रीतिकाल कहलाता है।
- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।
- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति ा, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त
- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

1.8 शब्दावली

रीतिबद्ध	-	काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।
दरबारीपन	-	सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।
अखण्ड	-	बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ
प्रशस्ति	-	किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।
पुनर्जागरण	-	नवीन चेतना का उदय

रूपान्तरण - स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1650- 1850 ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डॉ0 नगेन्द्र

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई-2 रीतिबद्ध: परिचय एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

2.00 रीतिबद्ध: परिचय एवं आलोचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 रीतिकाल: परिचय एवं भेद
2.3.1 रीतिकाल- परिचय
2.3.2 रीतिकाल- भेद
2.4 रीतिबद्ध: परिचय, प्रमुख कवि
2.4.1 रीतिबद्ध: परिचय
2.4.2 रीतिबद्ध: प्रमुख कवि
2.5 रीतिबद्ध साहित्य: विशेषता व प्रदेय
2.5.1 रीतिबद्ध: विशेषता
2.5.2 रीतिबद्ध: प्रदेय
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

रीतिकाल नामक पुस्तक की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में आप रीतिकाल की एक शाखा रीतिबद्ध साहित्य के बारे में पढ़ेंगे। रीतिकाल के परिचय के क्रम में आपने रीतिकाल के बारे में पढ़ा। आपने पढ़ा कि रीतिकालीन साहित्य में श्रृंगार रस के पद्य रचे गए। नायक -नायिका भेद की प्रवृत्ति, दरबारीपन की प्रवृत्ति के साथ ही इस काल में रीति निरुपण की प्रवृत्ति भी प्रमुख रही है। इस इकाई में हम रीति निरुपण की प्रवृत्ति के बहाने रीति बद्ध कविता को समझने का प्रयास करेंगे| रीति बद्ध कविता लक्षण और उदाहरण की कविता है। प्रश्न है कि यह लक्षण और उदाहरण क्या है? इस इकाई में हम इसे समझने का प्रयास करेंगे| रीतिकाल में अनेक कवि हुए हैं| इन कवियों को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीति मुक्त में विभाजित किया गया है| यहाँ हम रीतिबद्ध कवियों के बारे में अध्ययन करेंगे| साथ ही हम रीतिबद्ध कविता के अपने योगदान के बारे में रेखांकन करेंगे|

2.2 उद्देश्य

रीतिबद्ध : परिचय एवं आलोचना नामक इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

* रीतिकालीन साहित्य को और बेहतर ढंग से समझ सकेंगे |
* रीतिकालीन साहित्य के प्रमुख भेदों के आधार से परिचित हो सकेंगे |
* रीतिबद्द साहित्य की विशेषता को समझ सकेंगे |
* रीतिबद्ध साहित्य के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे |
* रीतिबद्ध साहित्य की भाषा से परिचित हो सकेंगे |

* रीतिबद्ध साहित्य के योगदान को समझ सकेंगे |

2.3 रीतिकाल: परिचय एवं भेद

2.3.1 रीतिकाल: परिचय

रीतिकाल हिंदी कविता में चला एक प्रसिद्ध कविता आंदोलन था| यह भक्ति कविता के बाद व आधुनिक काल के बीच का कविता आंदोलन था| भक्ति साहित्य को हिंदी कविता में स्वर्ण काल कहा गया | यही कारण है कि उसके बाद चले रीति कविता की तुलना भक्ति कविता से करने का चलन रहा...और रीति कविता को नकार या पतनशील मनोवृत्ति के काव्य के रूप में देखा गया| लेकिन रीति कविता के अपने योगदान हैं| एक बात और समझने की है| पूरे मध्यकाल की चेतना सामंती ही रही है| भक्तिकाल अपने कथ्य में भले ही रीतिकाल से भिन्न साहित्य रहा है किन्तु वहां भी श्रृंगार और अलंकार से युक्त रचनाएं होती रहीं| प्रेम और भक्ति की सघनता में जब भक्ति प्रबल हुई तब भक्तिकाल और जब प्रेम प्रबल हुआ तब रीतिकाल|

रीतिकाल का समय मोटे तौर पर 1650 से लेकर 1850 के बीच स्वीकार कर लिया गया है| हालांकि 1800 ई में स्थापित फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना, बाइबल का हिंदी अनुवाद, हिंदी समाचार पत्रों के प्रकाशन आदि घटनाओं ने हिंदी भाषा के साहित्य को आधुनिक चेतना से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया| इस दृष्टि से 1800 के बाद के रीति कवियों की कविता और उसके पूर्व की रीति कविता का अध्ययन दिलचस्प होगा| रीतिकाल के प्राय: महत्वपूर्ण कवि 1750 से पूर्व के हैं| इस ढंग से पदमाकर आदि कुछ एक कवि ही बाद में आते हैं| अर्थ यह कि रीतिकालीन साहित्य की अर्थ भंगिमा बहुत हद तक बदलने लगी थी| यह किसी भी रचना आंदोलन में होता है| प्रारंभिक समय का ताप धीरे-धीरे पिघलने लगता है| पिछली इकाई में आपने रामचंद्र शुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रामविलास शर्मा आदि के मतों के सन्दर्भ में रीतिकाल के सीमांकन का अध्ययन किया|

पिछली इकाई में आपने रीतिकाल के नामकरण सम्बन्धी विभिन्न मतों का भी अध्ययन किया| अधिकांश आचार्यों ने रीतिकाल नाम को ही उचित माना| रीतिकाल नामकरण का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है| इसके अतिरिक्त डॉ नगेंद्र , रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह आदि ने भी रीतिकाल नाम को ही उचित माना है| प्रश्न है ऐसा क्यों हुआ? रस की दृष्टि से इस काल में श्रृंगार रस की रचनाएं सर्वाधिक लिखी गयीं| अलंकारों का भी प्राबल्य रहा| इस कारण श्रृंगार काल और अलंकृत काल भी इस युग को कहा गया| किन्तु रीति में व्यापक व्यंजना है| रीति का अर्थ हुआ- एक बँधी हुई प्रणाली पर काव्य रचना करना | यह बँधी हुई प्रणाली क्या थी? यह पद्धति थी लक्षण निरुपण की पद्धति| लक्षण निरुपण और उदाहरण रचने की यह पद्धति ही पूरे 200 वर्षों तक चलती रही| अलंकार का ग्रन्थ हो या रस का, नायिका भेद की रचना हो या वीर रस की रचना, रीतिकाल में सभी रचनाएं रीति निरुपण के ढंग से ही रची गयीं| अत: रीतिकाल के नामकरण का आधार सुदृढ रहा है|

2.3.2 रीतिकाल: भेद

रीतिकाल की प्रवृत्ति भले ही मुख्य रूप से दरबारी रही है या इस काल खंड में श्रृंगारिक रचनाओं की प्रबलता रही, किन्तु पूरे रीतिकाल में कथ्य और संरचना की दृष्टि से एक ही प्रकार की रचनाएं नहीं हुई हैं| यही कारण रहा है कि विभिन्न आचार्यों ने रीतिकाल के भेद किये हैं| सर्वप्रथम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का भेद करते हुए इसे दो भेदों में विभक्त किया था-
रीतिग्रन्थकार कवि में उन्होंने बिहारी को प्रतिनिधि कवि माना तथा अन्य कवि वर्ग में उन्होंने घनानन्द को प्रतिनिधि कवि स्वीकार किया| शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पहले वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध , रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डॉ० नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डॉ० बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और

स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

रीतिकालीन कविता का वर्गीकरण

रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध व रीति मुक्त

रीतिबद्ध - इस धारा के अंतर्गत चिन्तामणि त्रिपाठी, भूषण, केशव, देव, प्रतापसिंह, मतिराम, सूदन इत्यादि कवि

रीतिसिद्ध धारा के अंतर्गत - बिहारी मुख्यतः हुए हैं| मतिराम, देव ने रीति सिद्ध के साथ ही रीतिसिद्ध रचनाएं भी लिखी हैं|

रीतिमुक्त - इस धारा के अंतर्गत - घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि कवि हुए हैं|

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरण की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से हटकर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है, वे रीतिमुक्त कहलाये।

उसके अतिरिक्त भी रीतिकालीन कविता के कुछ और वर्ग किये जा सकते हैं| रीतिकाल के भीतर भूषण जैसा वीर रस का कवि भी हुआ है| हालांकि भूषण को कुछ लोगों ने रीतिसिद्ध के अंतर्गत रखा है| इसी प्रकार भक्ति, नीति की रचनाएं भी रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं| ब्रजभाषा गद्य की रचनाएं भी रीतिकाल में मिलती हैं| ये सभी रचनाएं व वर्ग रीतिकालीन कविता को बड़ा आधार देते हैं|

2.4- रीतिबद्धः परिचय, प्रमुख कवि

2.4.1 रीतिबद्ध परिचय

रीतिकाल के नामकरण का आधार रीतिबद्ध कविता है| हमने देखा कि रीतिबद्ध कविता का आधार रीति निरुपण की प्रवृत्ति रही है| यह रचना की एक विशेष पद्धति है, जिसका संकेत स्वयं रीति कवि एवं आचार्यों ने ही किया है -

* रीति सुभाषा कवित्त की, बरनत बुध अनुसार - चिंतामणि
* अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीत - देव
* सुकविन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथा - भूषण
* काव्य की रीति सिख्यो सुकवीन्ह सों - भिखारीदास

अर्थ यह कि रीतिबद्ध कविता रचना की विशेष पद्धति के रूप में रूढ़ होता चला गया| इस पद्धति में रीति निरुपक लक्षण ग्रंथों को आधारित करके काव्य लिखे गए| इस धारा के कवियों को रसनिरुपक, अलंकार निरुपक, छंद निरुपक तथा नायक-नायिका भेद आदि के आधार पर रचनाएं लिखनी पड़ी| लक्षण ग्रंथों की परम्परा संस्कृत काव्यशास्त्र में भी थी, किन्तु रीतिकालीन कविता के कवियों ने अपनी मौलिकता भी दिखाई| संस्कृत के आचार्य जहाँ लक्षण निरुपण करके दूसरे कवि की कविता उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते थे,

वहीं हिंदी के कवि आचार्य के साथ कवि भी थे, इस कारण वे लक्षण को स्पष्ट करने के लिए अपनी ही कविता के उदाहरण प्रस्तुत करते थे| संस्कृत में वामन आदि आचार्यों को छोड़ दिया जाए तो प्राय: आचार्य कवि न् थे| किंतु हिंदी के अधिकांश आचार्य, सहृदय कवि भी थे| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी तथ्य को लक्षित करते हुए लिखा था कि इसी बहाने हिंदी में बहुत से सरस पद रचे गए| हालांकि शुक्ल जी ने इस स्थिति के दूसरे पक्ष को भी स्पष्ट करते हुए लिखा है -" संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे| हिंदी काव्यक्षेत्र में यह भेद लुप्त हो गया| इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा| आचार्यतत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यायलोचन शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास नहीं हुआ| कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्त हो जाते थे| काव्यांग का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन- मंडन, नये -नये सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ"| इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल के आचार्य मूलत: कवि भी थे| लेकिन उनके आचार्यत्व में कमी थी, हम इस आक्षेप से पूरी तरह सहमत नहीं हो सकते|

2.4.2 रीतिबद्ध: प्रमुख कवि

प्रिय विद्यार्थियों! आपने पढ़ा कि रीतिबद्ध धारा रीतिकालीन कविता की आधारभूत रही है| इस धारा के कवियों का काव्य सृजन व उनके द्वारा निरुपित लक्षण ग्रन्थ विपुल रहे हैं| यहाँ हम प्रमुख रीतिबद्ध आचार्यों एवं उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे|

केशवदास

केशवदास हिंदी में रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं| आपका जन्मदिन 1555 ई में हुआ था| आप ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह के दरबारी कवि थे| केशवदास जी द्वारा रचित ग्रंथों में रामचन्द्रिका, रतन बावनी, वीरसिंह देव चरित, विज्ञान गीता, रसिक प्रिया, कवि प्रिया, छंद माला, नख शिख एवं जहांगीर जस चन्द्रिका आदि हैं| इनमें से रामचन्द्रिका महाकाव्य है| रसिक प्रिया, रस पर आधारित काव्य शास्त्र का ग्रन्थ है तथा कवि प्रिया अलंकार पर आधारित ग्रन्थ है|

केशवदास की कवि प्रिया व रसिक प्रिया के माध्यम से हिंदी में रीति ग्रंथों की परम्परा चली| ये हिंदी के विवादित आचार्य भी रहे हैं| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने केशव को हृदयहीन व कठिन काव्य का प्रेत कहा है| बावजूद केशवदास का ऐतिहासिक महत्व है|

चिंतामणि त्रिपाठी

चिंतामणि त्रिपाठी का रचनाकाल 1643 ई से प्रारम्भ होता है| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी को लक्षित करते हुए रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है| चिंतामणि त्रिपाठी द्वारा रचित ग्रंथों में रस विलास, काव्य विवेक, काव्य प्रकाश, कवि कुल कल्पतरु, श्रृंगार मंजरी, छंद विचार पिंगल व रामायण हैं| इनमें से कवि कुल कल्पतरु सर्वांगनिरुपक ग्रन्थ है और चिंतामणि त्रिपाठी के यश का आधार है| मिश्र बन्धुओं ने पूर्व अलंकृत काल में चिंतामणि त्रिपाठी को सबसे बड़ा आचार्य माना है|

भूषण

महाकवि भूषण का जन्म 1613 ई में हुआ था| इनका वास्तविक नाम घनश्याम था तथा इन्हें भूषण की उपाधि सोलंकी राजा रूद्र के पुत्र इंद्रराय ने दी थी| भूषण की प्रसिद्धि का आधार इनकी वीर रस की रचनाएं रही हैं| भूषण द्वारा लिखित रचनाओं में शिवा बावनी, शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक, अलंकार प्रकाश, छंदोहृदय प्रकाश, दूषण उल्लास, भूषण उल्लास एवं दूषण हजारा आदि हैं|

भूषण की कीर्ति का आधार शिवराज भूषण है| इन्हें वीर रस के कवि के रूप में तथा राष्ट्रीय कवि के रूप में सम्मान प्राप्त है|

कुलपति

कुलपति आगरा के रहने वाले थे| इनके अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, किन्तु इनकी ख्याति का आधार रसरहस्य रहा है| रस रहस्य की रचना कुलपति ने अपने आश्रयदाता राम सिंह की आज्ञा से की थी| रस रहस्य में 8 वृत्तान्त और 652 पद्य हैं| रस रहस्य में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, काव्य पुरुष रूपक तथा काव्य भेदों आदि की चर्चा है| इसके अतिरिक्त ध्वनि, रस, गुण, दोष आदि पर भी रस पूर्वक विचार किया गया है|

सोमनाथ

सोमनाथ की दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं - रसपीयूषनिधि और श्रृंगारविलास| रसपीयूषनिधि में 22 तरगें तथा 1127 पद्य हैं| इस ग्रन्थ में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य प्रकरण, शब्द शक्ति, ध्वनि भेद, नायिका भेद आदि का निरुपण हुआ है|
श्रृंगार विलास में श्रृंगार रस और नायिका भेद का ही विस्तार है | कुछ लोग इसे रसपीयूषनिधि का ही अंश मानते हैं|

भिखारीदास

भिखारीदास रीतिकाल के प्रमुख आचार्य हैं| इनके 7 ग्रन्थ मिलते हैं| रस सारांश, छंदोरवपिंगल, काव्य निर्णय, श्रृंगार निर्णय, नाम प्रकाश (कोश) , विष्णु पुराण भाषा, शतरंज शतिका |

रस सारांश - रस सारांश में रस वृत्तियों और रस दोषों समेत रस के विभिन्न अंगों का परिचय मिलता है|

काव्य निर्णय - काव्य निर्णय में 25 उल्लास और 1210 पद्य हैं| ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, काव्य के विभिन्न अंगों का परिचय, शब्द शक्ति निरुपण, अलंकार मूल वर्णम, काव्य गुणों एवं दोष आदि का वर्णन किया गया है | काव्य शास्त्र को सरल रूप में तथा अपनी उपपत्ति प्रस्तुत करने की दृष्टि से काव्य निर्णय का महत्त्व रहा है|

श्रृंगार निर्णय- श्रृंगार निर्णय के मुख्यतः चार खंड हैं| श्रृंगार रस का आलम्बन विभाव (नायक -नायिका भेद), श्रृंगार रस का उद्दीपन विभाव (सखी -दूत वर्णन), श्रृंगार रस विषयक अन्य सामग्री तथा श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग भेदों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है| यह ग्रन्थ भी चर्चित रहा है|

प्रतापसाहि

प्रतापसाहि के दो ग्रन्थ चर्चित रहे हैं| व्यंग्यार्थ कौमुदी और काव्य विलास |

व्यंग्यार्थ कौमुदी - इस ग्रन्थ के दो भाग हैं| मूल भाग और वृत्ति भाग | मूल भाग में 130 पद्य हैं| यह ग्रन्थ काव्य प्रयोजन, शब्द शक्ति पर तो प्रकाश डालता ही है, किन्तु पुस्तक नायक - नायिका भेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है |

काव्य-विलास- इस ग्रन्थ की रचना 1886 में हुई थी| ग्रन्थ में 6 प्रकाश हैं तथा 400 पद्य हैं | ग्रन्थ में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, शब्द-शक्ति, गुण-दोष निरुपण तथा रस व ध्वनि भेदों पर चर्चा की गयी है|

अभ्यास प्रश्न 1

सही/गलत का चुनाव कीजिये|

1. रीतिकाल का समय 1650 से लेकर 1850 के बीच का है|
2. रीतिकाल को श्रृंगार काल भी कहा जाता है|

3. चिंतामणि त्रिपाठी रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं|
4. भूषण रीतिमुक्त धारा के कवि हैं|
5. केशवदास का जन्म 1555 ई में हुआ था|

2.5 रीतिबद्ध साहित्य: विशेषता व प्रदेय

2.5.1 रीतिबद्ध साहित्य: विशेषता

रीतिबद्ध साहित्य रीतिकाल के केंद्र में रहा है| प्रवृत्ति की दृष्टि से या विषय की दृष्टि से रीति सिद्ध कवियों ने भी श्रृंगार, नायिका भेद या अलंकरण की वृत्ति से युक्त रचनाएं लिखीँ | किन्तु पद्धति की दृष्टि से वे केवल उदाहरण आदि रचते हैं| हालांकि उनके उदाहरण भी लक्षण से मुक्त नहीं हैं| यहाँ संक्षेप में रीतिबद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का हम अध्ययन करेंगे|

* रीति निरुपण की प्रवृत्ति

रीति बद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषता रीति निरुपण की रही है| रीतिबद्ध आचार्य कवि सबसे पहले लक्षण देते थे तथा उन्हीं लक्षणों के आधार पर उदाहरण की रचना किया करते थे| यह प्रवृत्ति रीतिकाल में लम्बे समय तक चली और यही रीतिकाल नामकरण का आधार बनी|

* रीति ग्रंथों का निरुपण

रीतिकाल में रीति ग्रंथों का पर्याप्त मात्रा में निरुपण हुआ| संस्कृत काव्यशास्त्र में लक्षण ग्रंथों की समृद्ध परम्परा रही है| उन्हीं को आधार बना करके रीतिकालीन कवियों ने रस, अलंकार, नायिका भेद आदि पर रीति ग्रन्थ लिखे| चिंतामणि त्रिपाठी, केशव, देव, मतिराम, भूषण आदि आचार्य कवियों ने स्वतंत्र रूप से काव्य शास्त्र के ग्रन्थ लिखे| हालांकि आचार्य शुक्ल जैसे आचार्यों ने रीतिकालीन कवियों की मौलिकता पर प्रश्न चिह्न लगाए हैं, बावजूद कई रीतिकालीन आचार्यों ने मौलिक उदभावनायें की हैं |

दरबारी वृत्ति और आचार्य

रीतिबद्ध कविता दूसरे रीतिकालीन कविता की तरह ही दरबारीपन की मानसिकता से ग्रस्त थी | प्राय: रीतिकालीन कवि शिक्षक या आचार्य थे| ये किसी- न- किसी राजा के दरबार में शिक्षक के रूप में वर्तमान थे| इन आचार्य कवियों का काम राजा, राजुकुमार या राजकुमारियों को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था | इस क्रम में बहुत से रीति ग्रन्थ निर्मित हुए | रीतिकाल के बाद आचार्य कवियों का द्वैत लगभग समाप्त हो गया|

काव्यरूप और भाषा

रीतिबद्ध कवियों ने अधिकांशत: मुक्तक काव्य रूप का ही प्रयोग किया| भूषण, केशव आदि आचार्य कवियों ने प्रबंध काव्य भी रचे लेकिन मुख्य रूप से पूरे रीतिकाल की प्रवृत्ति मुक्तक की ही रही|

भाषा की दृष्टि से सम्पूर्ण रीतिकाल की कविता की भाषा ब्रजभाषा ही रही| स्वाभाविक था कि रीतिबद्ध कविता की भाषा भी ब्रजभाषा रही|

2.5.2 रीतिबद्ध: प्रदेय

आपने पिछली इकाई में अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना। इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को खारिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना हेय नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डॉ० बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः " मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में मूर्तिमता, चित्र, बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है" रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य- शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक- नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। " (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)| ऊपर हमने रीतिकालीन कविता के महत्व के सन्दर्भ में कुछ आलोचकों के मत देखे| अब हम थोड़ी सी चर्चा रीतिबद्ध कविता की करेंगे

रीतिबद्ध कविता ने आचार्य कवियों को जन्म दिया|| इस ढंग से रीतिबद्ध कविता अपने आप में विशिष्ट है| इन आचार्य कवियों ने हिंदी काव्यशास्त्र की नींव रखी| भिखारीदास के काव्य निर्णय आदि ग्रंथों ने हिंदी काव्यशास्त्र को खड़ा किया| रीतिकाल से पूर्व के काव्यशास्त्र की भाषा संस्कृत है, यह हम जानते हैं| इस प्रकार रीतिबद्ध कविता ने हिंदी का मौलिक काव्यशास्त्र खड़ा किया|

रीतिबद्ध कविता का एक बड़ा योगदान यह रहा कि इसने संस्कृत काव्यशास्त्र को सरल रूप में प्रस्तुत कर दिया| संस्कृत काव्यशास्त्र अपनी बोधगम्यता में दुरूह था|

अभ्यास प्रश्न 2
रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये|

1. रतनबावनी के रचनाकार .....हैं|
2. कविकुलकल्पतरु .....की रचना है|
3. शिवा बावनी .....की रचना है|
4. कुलपति की प्रसिद्द रचना .....है|

5. रसपीयूषनिधि के रचनाकार .....हैं|
6. काव्य निर्णय के रचयिता .....हैं|

2..6 सारांश

विद्यार्थियों! आपने रीतिबद्ध कविता के बारे में अध्ययन किया| आपने पढ़ा कि रीतिबद्ध धारा रीतिकाल की एक शाखा रही है| रीतिबद्ध धारा में चिंतामणि त्रिपाठी, भूषण, मतिराम, देव, प्रताप साहि, भिखारीदास जैसे आचार्य हुए| यह धारा लक्षण और उदाहरण पर आधारित रही है| किसी कविता में कविता के लक्षण प्रस्तुत कर, फिर उसका उदाहरण देने की बँधी हुई काव्य रचना पद्धति ही रीतिकाल में रीति निरूपण शैली के रूप में प्रसिद्ध हुई| इस रीति निरुपण शैली के कारण ही हिंदी का काव्यशास्त्र खड़ा हुआ| रीतिकाल के अधिकांश कवि आचार्य व अध्यापक थे| उनकी आलोचना को आप अध्यापक आलोचना या शिक्षक आलोचना भी समझ सकते हैं| शास्त्रीय निरुपण की यह पद्धति रीतिकाल की मुख्य विशेषता थी| यही कारण है कि इस काल का नाम भी रीतिकाल पड़ा|

अभ्यास प्रश्न 3
100 शब्दों में टिप्पणी कीजिये
रीतिबद्ध साहित्य

.....
.....
.....
.....

रीतिकाल के भेद

.....
.....
.....
.....

2.7 शब्दावली

- रीतिकाल- १६५० से लेलर १८५० तक चला हिंदी का काव्यान्दोलन
- रीतिबद्ध – रीतिकाल की एक शाखा , जिसमें एक बद्ध पद्धति पर रचनाएँ हुयीं
- रीति-निरूपण – लक्षण-उदाहरण की पद्धति पर काव्य रचना
- काव्य पद्धति – एक विशेष पैटर्न पर लिखा गया काव्य
- श्रृंगार- नायक-नायिका के प्रेम का मनोभाव
- दरबारीपन- किसी राजा या आश्रयदाता की प्रशंसा की वृत्ति
- लक्षण-ग्रन्थ – काव्य के लक्षण बताने वाले ग्रन्थ
- काव्य-रीति – एक विशेष प्रकार की कविता शैली

- सुकवि – अपने कवि कर्तव्य से सचेत कवि
- आचार्य कवि – काव्यशास्त्र या कविता की सैद्धांतिकी पर अधिकार रखकर कविता करने वाला कवि
- सामंती जीवन- राजा, सामंत की दिनचर्या

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) 1- सही 2- सही 3- गलत 4- गलत 5- सही
2) 1-केशवदास 2-चिंतामणि त्रिपाठी 3-भूषण 4-रसरहस्य 5-सोमनाथ 6-भिखारीदास

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ बच्चन सिंह

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिहारी और देव- लाला भगवान दीन
2. रीतिकाव्य की भूमिका-डॉ नगेन्द्र

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. रीतिबद्ध कविता की प्रमुख विशेषताओं को वर्णित कीजिये
2. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों लो रेखांकित कीजिये

इकाई-3 रीतिसिद्ध: परिचय एवं आलोचना

3.00 इकाई की रुपरेखा

3.1प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 रीतिसिद्ध: परिचय, प्रमुख कवि
3.3.1 रीतिसिद्ध: परिचय
3.3.2 रीतिसिद्ध: प्रमुख कवि
3.4 रीतिसिद्ध कविता: पाठ
3.5 रीतिसिद्ध साहित्य: विशेषता व प्रदेय
3.5.1 रीतिसिद्ध: विशेषता
3.5.2 रीतिसिद्ध: प्रदेय
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! पिछली दो इकाईयों में आपने रीतिकाल और उसके प्रभेद रीतिबद्ध का अध्ययन किया| आपने रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं के आलोक में रीतिबद्ध साहित्य का अध्ययन किया| इस इकाई में हम रीतिसिद्ध नामक रीतिकालीन प्रभेद का अध्ययन करेंगे|

रीतिसिद्ध का अर्थ ऐसे कवियों से है, जिन्होंने अपनी रचनाओं में लक्षण और उदाहरण तो नहीं रचा, किन्तु रचना करते समय उनका ध्यान लक्षण ग्रंथों पर अवश्य रहा| सरल शब्दों में कहें तो यह कि उन कवियों को हम रीति सिद्ध कवि कहेँगे जो लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे, केवल सरस श्रृंगारिक कवितायेँ रची ; किन्तु ऐसे कवियों के उदाहरण भी लक्षण ग्रन्थ ही बने हैं |

इस इकाई में रीति कविता की समझ के बहाने रीति सिद्ध कविता को हम समझने का प्रयास करेंगे|

3.2 उद्देश्य

रीतिकाल नामक पुस्तक की यह तीसरी इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

* रीति साहित्य का अर्थ समझ सकेंगे|
* रीतिसिद्ध साहित्य के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे|
* रीतिसिद्ध कविता की मुख्य विशेषताओं को समझ सकेंगे|
*रीतिसिद्ध कविता के प्रदेय को समझ सकेंगे|
* रीतिसिद्ध साहित्य के रूप व भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे|

3.3 रीतिसिद्ध: परिचय एवं प्रमुख कवि

3.3.1 रीतिसिद्ध: परिचय

रीतिसिद्ध कविता से तात्पर्य ऐसी कविता से है जो लक्षण को दृष्टिगत रखते हुए सरस उदाहरणों की रचना करती है| रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण नहीं रचे हैं, किन्तु उनके उदाहरण लक्षण पर ही आधारित हैं| श्रृंगार रस के सरस उदाहरण प्रस्तुत करने की दृष्टि से रीतिसिद्ध कविता का अपना अलग महत्त्व है|

3.3.2 रीतिसिद्ध: प्रमुख कवि

रीतिसिद्ध कविता अपने काव्य की रसिकता के कारण चर्चित रही है| इस धारा को डॉ बच्चन सिंह ने काव्य-चेतस कहा है| हालांकि बिहारी जैसे रीतिसिद्ध कवि को उन्होंने इससे बाहर कर दिया है| बिहारी को बच्चन सिंह ने मुक्त रीतिकाव्य के अंतर्गत रखा है तथा उसे पुन: दो भागों में यथा आभिजात्य वर्ग और स्वच्छन्द काव्यधारा में विभक्त कर दिया है| हालांकि यह वर्गीकरण उचित प्रतीत नहीं होता| रीतिसिद्ध कविता के अंतर्गत बिहारी, मतिराम, देव, पदमाकर जैसे कवियों को ही रखा जा सकता है| कुछ आलोचकों ने तो बिहारी को ही रीतिसिद्ध कवि के रूप में स्वीकृत किया है, उन लोगों ने मतिराम, देव आदि को रीतिबद्ध के अंतर्गत रखा है| यह सही है कि मतिराम, देव आदि कवियों को रीतिबद्ध के अंतर्गत भी रखा गया है, किन्तु उनकी कविता में सरसता कम नहीं है| इस कारण रीतिसिद्ध के अंतर्गत हम मुख्यतः बिहारी और क्रमशः देव, मतिराम, पदमाकर आदि कवियों की कविताओं को देख सकते हैं|

अभ्यास प्रश्न)1

सही/ गलत का चुनाव कीजिये|

1- बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं|
2- देव रीतिमुक्त कवि हैं|
3- ललित ललाम के रचनाकार देव हैं|
4- रसराज बिहारी की रचना है|
5- रीतिसिद्ध कविता के अंतर्गत केशव आते हैं|

3.4 रीतिसिद्ध कविता: पाठ

बिहारीलाल

सटपटात-सी ससि-मुखी, मुख घूँघट-पट ढाँकि ।
पावक-झर-सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि॥
फिरि-फिरि दौरत देखिए, निचले नैक रहें न।
वे कजरारे कौन पै करत कजा की नैन ॥

सघन कुंज घन घन तिमिर अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम यह, दीप सिखा-सी जाति॥
कहत सबै कबि कमल-से, मो मत् नैन-पखान।
नतरुक कत इन घिसि लगत उपजत बिरह-कृसान॥
इन अँखियाँ दुखियान को, सुख सिरज्योई नाहि।
देखे बनै न देखियो, बिन देखे अकुलाहिं॥
लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं;
ये मुँहजोर-तुरंग-लौ ऐंचत हूँ चलि जाहिं॥
चित-बित बचत न हरत हठि, लालन दृग बरजोर।
सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर॥
उर लीने अति चटपटी, सुनि मुरली-धुनि धाय।
हौं निकसी हुलसी सु तौ गो हुल सी उर लाय॥
भाल लाल बेंदी छए छुटे बार छबि देत।
गह्यो राहु अति करि, मनु ससि-सूर-समेत॥
छप्यो छबीली मुख लसै, मनौ कलानिधि
झलमले, नीले अंचल चीर। कालिंदी के नीर॥
जोग-जुगुति सिखए सबै, मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता, सेवत कानन नैन॥
बेसरि-मोति-दुति-झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पटु पोंछ्यो जाय॥
पग-पग मन अगमन परति चरन अरुन-दुति ऊलि।
ठौर-ठौर जखियत उठे दुपहरिया-सी फूलि॥
भूषन - भार सम्हारिहै, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न परत धरि सोभा ही के भार॥

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नैन न होती लखाइ।
सौंधे के डोरन लगी, अलि चली सँग जाइ॥
करी बिरह ऐसी तऊ, दीने हूँ
चसमा धरै, गैल न छाँड़त नीचु। चाहै लहै न मीचु॥
नित संसो हंसो वचतु, मनो सो वह उनमान।
बिरह-अगिनि-लपट न सकै, झपटि न मीचु सिचान॥३२॥
कौन सुनै, कासों कहौं, सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह॥

मतिराम

रसराज

कुंदन को रंग फीको लगै, झजकै अति अंगन चारु गोराई,
आँखिन में अलसानि, चितौनि मैं मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल चिकात नहीं 'मतिराम' लखे मुसकानि मिठाई,
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे हैं नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरें-सी निकाई॥

क्यों इन आँखिन सों निरसंक है मोहन को तन-पानिप पीजै,
नेकु निहारे कलंक लगै, इहि गाँव बसे कछु कैसेक जीजे ?
होत रहे मन यों 'मतिराम' कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजे,
है बनमाल हिए लगिए अरु है मुरली अधरा रस-लीजे॥

सबर नेह को लाज तजी, अरु गेह के काज सबै विसरायो,
डारि दियौ गुरुलोगन को डरु गाँव चवाव मैं नाँत्र धरायो।
होत कियो हम जेतो कहा, तुम तो 'मतिराम' सबै बिसरायो,
कोऊ कितेक उपायौ करौ, कहुँ होत है आपनो पीड परायो॥

गुच्छन को अवतंस लसै, सिखि पच्छन अच्छ किरीट बनायो,
पल्लव लाल समेत छरी, कर पल्लव मों 'मतिराम' सुहायो।
गुंजन को उर मंजुल हार निकुंजन ते कड़ि बाहर आयो,
आजु को रूपु लखे ब्रजराज को आजु ही आँखिन को फलु पायो॥

मोर-पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई,
मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल लोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल, बिसाल बिलोकनि, को न विलोकि भयो बस माई ?
वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठो लगै अँखियान लुनाई॥

ललित ललाम

जंग मैं अंग कठोर महा, मदन्नीर झरें झरना, सरसे हैं,
फूलनि रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूल प्रभा निकसे हैं।
सुंदर सिंदुर मंडित कुंभनि, गैरिक श्रृंग समान लसे हैं,
भाऊ दिवान उदार, अपार, सजीव पहार करी बकसे हैं॥

छाँह करें द्विति-मंडल पै सच ऊपर यों 'मतिराम' भए हैं,
पानिन को सरसावत हैं सिगरे जग के मिटि ताप गए हैं।
भूमि-पुरंदर भाऊ के हाथ पयोदन ही सत्र काज ठए हैं,
पंथिन के पथ रोकन को घने वारिद-वृन्द वृथा उनए हैं ।।।

बारि के बिहार बर बारन के बोरिबे को
बारि-चर बिरची इलाज जयकाज की,
कवि 'मतिराम' बलवंत जल-जंतु जानि,
दूरि भई हिम्मत दुरद सिरताज की।
असरन - सरन चरन की सरन ताकी,
त्यों ही दीनबन्धु निज नाम की सुलाज की,
दौरे एते मान ध्यति आतुर उताल मिली
बीच ब्रजराज कौ गरज गजराज की।।

मतिराम-सतसई

तिरछी चितवन स्याम की, लसत राधिका ओर,
भोगनाथ को दीजिए वह मन सुख बरजोर ॥

मेरी मति मैं राम है, कवि मेरे 'मतिराम',
चित मेरो आराम मैं हित मेरे आराम ।।

देव

प्रेम-चंद्रिका

एकै अभिलाष लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' सचराचर मैं।
जासों मनु राचैः तासौं तनु-मनु राचै रुचि
भरि के उधरि जाँचे साँचै करि कर मैं।
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देह प्यारे की सती लौं बैठि सर मैं।
प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठो सुनि ।

बैठो गडि गहिरे, तौं पैठो प्रेम-घर मैं ॥

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनों लोक वृड़ि गए एक संग मैं।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
सुन्यारे करि बाँचे कौन जाँचै चितभंग मैं।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि, जिमि
जंबु - रस - बुंद जमुनाजल तरंग मैं।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग हूँ करि समान्यो स्यामरंग मैं ॥

'देव' न देखति हौं दुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रजभूप मैं।
पूरि रही री वही धुनि कानन आन न आनन ओप अनूप मैं ॥
ये अँखियाँ न हमारियै जाय मिलीं जल बंद ज्यों कूप मैं।
कोटि उपाय न पाइय फेरि, समाइ गई रँगराइ के रूप मैं ॥

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ॥
'देव' जियै मिलिबेई कि आस कै आस हू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते सुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि ॥

धार मैं धाइ धँसों निरधार है, जाय फँसी उकसी न अबेरी ॥
री अँगराइ गिरीं गहिरी गहि फेरे फिरीं औ घिरीं नहिं घेरी।
'देव' कछू अपनो बसु ना रस-लालच लाल चितै भई चेरी।
बेगि ही बूड़ि गई पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ, कोऊ कहौ
रंकिनी, कलंकिनी, कुनारी हौं।
कैसो परलोक, नरलोक वर लोकन मैं,

लीन्हों में अलोक लोक-लीकन ते न्यारी हौं
तन जाहि, मन जाहि 'देव' गुरुजन जाहि,
जीव क्यों न जाहि, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावन वारी बनवारी के मुकुट पर,

पीत पटवारी बहि मूरति पै वारी हौं ॥

रावरो रूप रह्यो भरि नैननि, वैननि के रस सों सुति सानो ।
गात मैं देखत गात तुम्हारेई बात तुम्हारिए बात बखानो ॥
ऊधो, हहा हरि सों कहियो, तुम हो न इहाँ, यह हौं नहिं मानो ।
या तन ते बिलुरे तो कहा, मन ते अनते जु बसौ तब जानो ॥

जौन जी मैं प्रेम, तब कीजै व्रत-नेम, जब,
कंज मुख भूलै, तब संजम विसेखिए ।
आस नहीं पी की, तब आसन ही बाँधियत,
सासन कै साँसन को मूँदि पति पेखिए ।

नख ते सिखा लौं सब स्याममई बाग भई,
बाहिर हैं भीतर न दूजो 'देव' देखिए।
जोग करि मिलें जो वियोग होय बालम, जु
ह्याँ न हरि होयें, तब ध्यान धरि देखिए ॥=

जोगहि सिखै हैं ऊधौ जो गहि के हाथ हम,
सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ कै चुकीं।
'देव' पंचसायक नचाय खोलि पंचन मैं,
पंचहू करनि पंचामृर्त सो अच्चै
कुल-वधू ह्व के हाय कुलटा कहाई, अरु चुकीं ।
गोकुल मैं, कुल मैं, कलंक सिर लै चुकीं।
चित होत हित न हमारे नित और, सो तौ
वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकीं ॥

'देव' श्रीति-पंथा चोरि, चीर गरे कंथा डारि,
भसम रमाय खान-पान हू न छूजिए ।
दूरि दुख-चुंद राखि, सुंदरा पहिरि कान,
ध्यान सुन्द्रानन गुरु के पग पूजिए।
श्रङ्गी की टकी लगाय, भृंगी-कीट के मनु,
बिरागिनि है वपु विरहागिनि मैं भूजिए।
केली तजि राधिका अकेली होय जोगिनि, तौ

अलख जगाय हेली चेली चलि हूजिए ॥

पद्माकर

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में।
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है।
कहै 'पदमाकर' परागन में पानहूँ में।
पानन में पीक में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में।
देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है ॥
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में।
बनन में बागन में बगरो बसंत है ॥

पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के।
परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं ॥
कहै 'पदमाकर' बिसासी या बसन्त के सु।
ऐसे उतपात गात गोपिन के मुंज हैं ॥
ऊधो यह सूधो सों सँदेसौ कहि दीजो भलो।
हरि सों हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं ॥
किंसक गुलाब कचनार औ अनारन की।
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं ॥

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा ब्रज लूक बसंत को ऊकन लागी।
त्यों 'पदमाकर' पेखो पलासन पावक सी मनो फूँकन लागी ॥
वै व्रजनारी बिचारी बधू बन बाबरी लौं हिये हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी

रे मन साहसी साहस राख तु साइस थी सब जैर फिरेंगे।
त्यो 'पदमाकर' था सुख में तुख त्यो दुख में सुख सेर फिरती ॥
वैसे ही वेणु बजावत स्याम सुनाम हमारी है टेर फिरेंगे।
एक दिना नहिं एक दिना कबहुँ फिर वे दिन फेर फिरेंगे ॥

जैसो से न मोसों कहूँ नैकहूँ बरात हुतो।
तैसो अप हौहूँ नेकहूँ न होसों हरिहों ॥

कदै 'पदमाकर' प्रचंड जो परेगी तो।
उमंड पारि तोसों भुजदंड ठोकि लरिहीं ।॥
चलो चलु चलो चलु विचलु न धीच ही ते।
कीच बीच नीच तो हुटुम्ब को कचरिहों ॥
येरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं।
गंगा के कछार में पछार छार करिहीं ॥

बगसि बितुंड दिये झुण्डन के झुण्ड रिपु।
गुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को ॥
कई 'पदमाकर' करोरन को कोष द्ये।
पोड़सहू दीन्हें महादान अधिकारी को ॥
ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये।
अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को ॥
दाता जयसिंह दोय बातै तो न दीनी कहूँ।
बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को ॥

3.5.1: रीतिसिद्ध कविता: विशेषता

* श्रृंगार निरूपण

श्रृंगार वर्णन रीतिसिद्ध की प्रमुख प्रवृत्ति है। इस काल में भक्तिकाल के राधा-कृष्ण भी विलासी नायक-नायिका मात्र बन कर रह गए। इस काल में सर्वाधिक प्रमुख रस श्रृंगार-रस था | इन कवियों ने श्रृंगार के संयोग-पक्ष का वर्णन अधिक किया है। वियोग वर्णन में मार्मिकता का अभाव है । विभिन्न तीज त्योहारों पावस आदि का सुंदर वर्णन मिलता है। श्रृंगारी भावना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण इन कवियों का दरबारी कवि होना था। अपने स्वामी को खुश करना ही इनका प्रमुख ध्येय था| अतः इन कवियों ने श्रृंगार-वर्णन को सर्वाधिक महत्व दिया।

* अलंकार प्रयोग व चमत्कार वर्णन

रीतिकालीन कवियों ने अपनी आश्रय-दाता राजाओं व सामंतों को प्रसन्न करने के लिए चमत्कार का सहारा लिया। इन कवियों ने विलासी राजाओं को खुश करने के लिए कल्पना की उड़ान, वाकपटुता, चमत्कार-वर्णन आदि का सहारा लिया | इन कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं को अलंकृत करने के लिए अनेक ढंग अपनाये| इसलिए डॉ० रामकुमार ने इस काल को कलाकाल व मित्र-बंधुओं ने अलंकृत काल की संज्ञा दी है। इन कवियों के लिए अलंकार साधन नहीं बल्कि साध्य बन गए थे।

* प्रकृति वर्णन

रीतिकाल में प्रकृति का चित्रण आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में मिलता है। यह प्रकृति-चित्रण नायक-नायिका की मनोदशा के अनुरूप हुआ है। संयोग दशा में प्रकृति का मनोहारी चित्रण है तथा वियोग दशा में त्रास उत्पन्न करने वाला रूप है। रीतिकाल में स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन दुर्लभ है। प्रकृति के विभिन्न अवयवों का वर्णन इन्होंने नायक व नायिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन करने के लिए भी किया है। नायक-नायिका की सुंदरता के लिए अनेक

उपमाएं प्रकृति से ली गई हैं। इन कवियों ने प्रकृति चित्रण में अनेक नए उपमान भी प्रयोग किए हैं। इनका प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप में कहीं अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है।

* नारी वर्णन-

रीतिकाल के कवियों ने नारी का कामुक वर्णन किया है। इनके लिए नारी केवल भोग विलास की वस्तु है। इन्होंने नारी को प्राय: नायिका के रूप में चित्रित किया है जो नायक के प्रेम में बंधी है अर्थात इन्होंने नारी को अधिकार क्षेत्र में प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। यह कनि नारी के शारीरिक सौंदर्य का वर्णन ही करते रहे। इसका प्रमुख कारण यह था कि अधिकांश रीतिकालीन कवि दरबारी कवि थे। इनका प्रमुख उद्देश्य अपने आश्रय दाता राजा को प्ररान्न करना था जो प्रायः भोग विलास में सूबे रहते थे। अतः इन्होंने नारी को भोग विलास के साधन के रूप में प्रस्तुत किया। मानो चाराना ही इन कवियों के लिए सब कुछ भी।

* विरह वर्णन: बिहारी आदि रीतिसिद्ध कवियों ने संयोग के साथ-साथ वियोग का भी सफल चित्रण किया है। लेकिन बिहारी को विरह-वर्णन में अधिक सफलता नहीं मिली है। उनके विरह-वर्णन में मार्मिकता का अभाव है। चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विरह-वर्णन इस प्रकार किया गया है कि पाठक को कई बार हंसी आ जाती है। अन्य रीतिसिद्ध कवि भी विरह-वर्णन करते समय नौसीखिए प्रतीत होते हैं।

*भक्ति भावना:

रीतिसिद्ध कवियों ने प्रेम के साथ-साथ अपनी भक्ति भावना को भी अभिव्यक्त किया है। रीतिसिद्ध कवि उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ उच्च कोटि के भक्त भी माने जाते हैं। बिहारी के काव्य में प्रेम के साथ-साथ भक्ति व नीति की भी सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने अपने काव्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सुंदर वर्णन किया है। इनकी भक्ति में दांपत्य भक्ति की प्रधानता है। कहीं-कहीं वात्सल्य भाव भी प्रकट होता है। दास्य-भक्ति भी रीतिसिद्ध कवियों के काव्य में मिलती है। फिर भी भक्ति की भावना इन कवियों के काव्य में उत्तना अधिक विस्तार नहीं पा सकी जितना सूर, तुलसी, कबीर, जायसी जैसे भक्ति कालीन कवियों के काव्य में मिलती है।

* काव्य-रूप-

रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मुक्तक काव्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है लेकिन रीतिकाल की मांग ही मुक्तक-काव्य थी। राजाओं तथा नवाबों के पास इतना समय नहीं था कि वे प्रबंध-काव्य सुन सकें और दरबारी कवियों का एकमात्र उद्देश्य अपने आश्रयदाता राजाओं को प्रसन्न करना था। उन्होंने मुक्तक काव्य की रचना की।

* कला- रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए छंदों, अलंकारों, बिंबों आदि का बड़ा सुंदर प्रयोग किया है।

छंदों की दृष्टि से इन कवियों ने प्रायः दोहा, कवित्त, सवैया का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त छप्पय, बरवै, सोरठा आदि का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है। फिर भी इन कवियों ने दोहा, कवित्त, सवैया का अधिक प्रयोग किया है क्योंकि ये छंद ब्रज-भाषा की प्रकृति के अनुकूल थे।

चमत्कार उत्पन्न करने के लिए इन कवियों ने विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार : दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग बखूबी किया है। इन कवियों ने अपने काव्य में अनुप्रास,

यमक, श्लेष, पुनरुक्ति, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग बखूबी किया है। इन कवियों के लिए अलंकार साधन नहीं बल्कि साध्य बन गए थे।

* ब्रजभाषा की प्रधानता

रीति काल में अधिकांश काव्य ब्रजभाषा में रचा गया । ब्रज भाषा ही इस युग की प्रधान साहित्यिक भाषा थी | इसका प्रमुख कारण यह था कि ब्रजभाषा श्रृंगार-रस व कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा थी। रीतिकाल के अधिकांश कवि केवल अपने स्वामी अर्थात अपने आश्रयदाता राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्य-रचना कर रहे थे | अतः उन्होंने ब्रजभाषा जैसी मधुर भाषा को चुना।

डॉ नगेंद्र इस विषय में लिखते हैं" भाषा के प्रयोग में इन कवियों ने एक खास नाजुक मिजाजी वरती है। इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश नहीं जिसमें माधुर्य न हो।" लेकिन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने व्याकरण की त्रुटियों के आधार पर रीतिकालीन कविता की आलोचना की है|

वस्तुतः ब्रजभाषा का जितना प्रसार इस काल में हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था | फिर भी हम रीतिकाल की भाषा को पूरी तरह निर्दोष या त्रुटिहीन नहीं मान सकते। रीतिकालीन कवियों की भाषा में कई स्थान पर कारक चिन्हों एवं व्याकरणिक संरचना की त्रुटि है।

3.5.2 रीतिसिद्ध कविता: प्रदेय

रीतिसिद्ध कविता इस ढंग से महत्वपूर्ण रही है कि इस कविता के बहाने हिंदी में श्रृंगार रस का ढेर सारा उदाहरण इकठ्ठा हो गया| बिहारी जैसे कवियों ने श्रृंगारिक जीवन के इतने बहविध चित्र खींचे हैं कि सहसा विश्वास करना कठिन हो जाता है कि दोहे जैसे छोटे काव्य रूपों में इतने भाव एक साथ कैसे आ सकते हैं| आलोचकों ने जब बिहारी को गागर में सागर भरने वाला कवि कहा है तो उनकी इसी विशेषता के कारण|

रीतिसिद्ध कविता का एक बड़ा प्रदेय यह भी समझना चाहिए कि इस कविता ने रीतिकालीन समाज के मध्यम वर्गीय जीवन के बहु चित्र खींचे हैं| इन चित्रों के माध्यम से हमारे सामने मध्यकालीन जीवन का बड़ा प्रामाणिक चित्र खड़ा हो गया है| इतना प्रामाणिक चित्र रीतिबद्ध कविता हमारे सामने नहीं रखती| रीतिसिद्ध कविता की इसी विशेषता के कारण यह कविता धारा माध्यकाल का एक प्रामाणिक पाठ बन सकी है|

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये|

1. **रीतिसिद्ध कविता का बल .....पर रहा है|**
2. **रीतिसिद्ध कविता की भाषा .....रही है|**
3. **सतसई का अर्थ .....दोहों से है|**
4. **बिहारी सतसई का छंद .....है|**
5. **रीतिसिद्ध कविता में रस की दृष्टि से .....रस की प्रधानता रही|**

3.6 सारांश

रीतिसिद्ध कविता जीवन के उल्लास की कविता है| यह एक ऐसी कविता है, जो हमारे भीतर जीवन का राग भरती है| रीतिसिद्ध कविता के केंद्र में सामंती जीवन के बहुविध चित्र मिल जायेंगे| दरबार के अपने चित्र, स्त्री -पुरुष के अपने काम चित्र, मध्यम वर्ग के चित्र, श्रृंगार के चित्र... ये सभी मिलकर मुग़लकाल का यथार्थ हमारे सामने रख देते हैं| इस कविता में जीवन को उल्लास में देखा गया है| यह उल्लास रीतिसिद्ध कविता की प्रमुख विशेषता है| विद्यार्थियों!

इस इकाई में आपने रीतिसिद्ध कवियों की कविताओं का मूल पाठ भी पढ़ा| यह पाठ ब्रजभाषा में है| सम्पूर्ण रीति कविता की भाषा ब्रज ही रही है|

3.7 शब्दावली

- रीतिसिद्ध- रीति कविता का एक भेद, जिसमें लक्षण के अनुरूप उदाहरण रचे गए
- आभिजात्य वर्ग- संपन्न व कुलीन वर्ग
- स्वछन्दता- रुढियों को तोड़ने की मनोवृत्ति
- नायिका भेद- स्त्री के शारीरिक , मानसिक भेद -
- अलंकार- कविता में सौन्दर्य वृद्धि के उपकरण या साधन
- अलंकृत काल- रीतिकाल का एक नाम

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न) 1

1-सही 2- गलत 3-गलत 4- गलत 5- गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1. उदाहरण
2. ब्रजभाषा
3. 700
4. दोहा
5. श्रृंगार

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ बच्चन सिंह

3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रीतिकाव्य की भूमिका- डॉ नगेन्द्र

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. बिहारी की कविता पर विचार कीजिये
2. रीतिसिद्ध कविता की मुख्य विशेषता बताइए

इकाई-4 रीतिमुक्त कविता: परिचय एवं आलोचना

4.00 इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 रीतिमुक्त: परिचय, प्रमुख कवि
4.3.1 रीतिमुक्त: परिचय
4.3.2 रीतिमुक्त: प्रमुख कवि – परिचय
4.4 रीतिमुक्त कविता: मूल पाठ
4.5 रीतिमुक्त साहित्य: विशेषता व प्रदेय
4.5.1 रीतिमुक्त: विशेषता
4.5.2 रीतिमुक्त: प्रदेय
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक /उपयोगी सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

रीति मुक्त काव्यधारा, रीतिकाल की तीसरी धारा है| जिन कवियों ने लक्षण और उदाहरण से मुक्त रहकर स्वच्छन्द ढंग से काव्य रचना की, उन्हें रीति मुक्त कवि कहा गया| रीति मुक्त कवियों ने स्वच्छन्द भाव को अधिक महत्व दिया| इन कवियों ने भी रस व श्रृंगार की रचनाएं कीं, किन्तु उनका आधार लक्षण ग्रन्थ न बने| यही कारण है कि ऐसे कवियों को रीति मुक्त या स्वच्छन्द धारा का कवि कहा गया| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -" रसखान, घनानंद, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत कवि हुए हैं, उनमें किसी ने लक्षणग्रन्थ की रचना नहीं की"| स्पष्ट है कि इस धारा के कवियों ने लक्षण ग्रंथों से मुक्त होकर काव्य रचना की| इस इकाई में हम रीति मुक्त कविता की प्रमुख विशेषताओं को पढ़ेंगे| साथ ही रीति मुक्त कविता के अवदान की भी चर्चा करेंगे|

4.2 उद्देश्य

रीति साहित्य सम्बन्धी यह चतुर्थ इकाई है| इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

* रीतिमुक्त साहित्य को समझ सकेंगे|
* रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे|
* रीतिमुक्त कविता की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेंगे|
* रीतिमुक्त कविता के पाठ का अध्ययन कर सकेंगे|
* रीतिमुक्त कविता के प्रदेय से परिचित हो सकेंगे|

4.3 रीतिमुक्त कविता: परिचय एवं प्रमुख कवि

4.3.1 रीतिमुक्त कविता: परिचय

रीति साहित्य की विशेषता रीति निरुपण रही है| रीतिबद्ध कविता की विशेषता रीति निरुपण की रही है, वहीं रीति सिद्ध काव्यधारा ने सरस उदाहरण की रचना की| इन दोनों काव्यधाराओं का विलोम रचते हुए रीतिमुक्त काव्यधारा ने लक्षण, उदाहरण से इतर भाव की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति की | यही कारण है कि इस काव्य धारा को रीति मुक्त काव्य धारा और स्वच्छन्द काव्य धारा कहा गया है| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काव्य धारा को अन्य कवि कहा है| आचार्य शुक्ल का ध्येय यह रहा है कि इस धारा के कवियों ने रीतिबद्ध व रीतिसिद्ध कवियों से अलग होकर रचना की| डॉ बच्चन सिंह ने अपने इतिहास में इस धारा के कवियों को स्वच्छन्द काव्यधारा के अंतर्गत रखा है| डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है-" जिस प्रकार साम्राज्य का ढांचा टूट रहा था, उसी प्रकार रीति से बंधा हुआ कविता का ढांचा भी टूटने लगा था"| वस्तुतः साहित्य में हमेशा वृत्तियों में तनाव चलता रहता है| रीति बद्धता की प्रतिक्रिया रीति मुक्त होने की वृत्ति में भी हम समझ सकते हैं|

4.3.2 रीतिमुक्त: प्रमुख कवि-परिचय

रीतिमुक्त काव्यधारा में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर जैसे कवियों को शामिल किया गया है| इनमें घनानंद मुख्य हैं| यहाँ हम इन कवियों की विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे|

आलम

आलम के जन्मस्थान के बारे में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता| इनका समय 16-16 वीं सदी ठहरता है | आलम की दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं - माधवानल कामकंदला और आलमकेलि | प्रवाद है कि आलम एक रंगरेजिन से प्रेम करते थे। किंवदंती है कि आलम ने अपनी पगड़ी रंगने के लिए एक रंगरेजिन को दिया। पगड़ी की छूट में कागज का एक टुकड़ा बंधा हुआ था। उस पर दोहा की एक पौक्त लिखी हुई थी 'कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीना।' संभवतः आलम से दोहा पूरा न हो सका हो और उसे पूरा करने के लिए पगड़ी की खूँट में इसलिए बाँध दिया हो कि याद आने पर उसे पूरा कर लेंगे। यह भी संभव है कि जानबूझकर शरारतन उसे पगड़ी की छूट में बाँधकर रंगरेजिन के पास पगड़ी रंगने के बहाने भेज दिया हो। रंगरेजिन ने दोहा पूरा कर दिया 'कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीना।' फिर उसे पगड़ी की खूँट में बाँधकर आलम को लौटा दिया। कहते हैं, आलम जन्मना ब्राह्मण थे। रंगरेजिन की प्रतिभा पर आलम मुग्ध हो उठे। वे ब्राहाण से मुसलमान हो गये और अपना नाम आलम रख लिया। रंगरेजिन के साथ उनका निकाह हो गया। इस कहानी में कितनी सचाई है और कितना कल्पना का अंश है, ठीक ढंग से कहा नहीं जा सकता।
वस्तुतः स्वच्छन्द धारा के कवियों पर भी रीति का प्रभाव था। इसीलिए इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया है। 'आलमकेलि' में नवोढ़ा, अभिसारिका, मानिनी, खंडिता आदि का वर्णन है। इनके साथ ही कृष्ण की बाललीला, गोपी, विरह, यमुना, कुंज आदि भी उसके वर्ण्य हैं। कुछ कवित्त रेख्ता में भी कहे गये हैं। स्थान-स्थान पर फारसी कविता का भी प्रभाव है।

उनका एक प्रसिद्ध सवैया है-

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कॉकरि बैठि चुन्यो करें।
जा रसना सों करी बहु बातकन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करें।।
आलम जीन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करें।
नैनन में जो दा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें।।

भाषा की सरसता, सहजता का एक उदाहरण देखिए-
कैधों मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत हैं, ए दई।
कैधों पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधों बकपाँति उत अंतगति है गई ?
आलम कहै, हो आली! अजहूँ न आए प्यारे,

कैधों उत रीत विपरीत बिधि ने ठई ?
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही,
जूझि गए मेघ, कैधों बीजुरी सती भई ?

घन आनंद (1673-1761)

घन आनंद रीतिमुक्त काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। किसी ब्रजनाय ने उनकी कविता की प्रशस्ति में लिखा है-

नेही महा, ब्रजभाषा, प्रवीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग की रीति में कोविद भावना-भेद-स्वरूप को ठाने ।।
चाह के रंग में भीज्यौ हियो, विछ्रें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कबित्त बखाने ।।

घन आनंद मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के दरबारी कवि थे। एक कथा के अनुसार शाही दरबार के ही 'सुजान' नामक वेश्या से उनका गहरा प्रेम था। जब बादशाह को मालूम हुआ कि घन आनंद बहुत अच्छा गाना गाते हैं तब उसने उन्हें गाने की आज्ञा दी। पर घन आनंद ने नम्रतापूर्वक अपनी असमर्थता व्यक्त की। षड्यन्त्रकारी दरबारियों ने बादशाह को बताया कि घन आनंद सुजान के कहने से गा सकते हैं। सुजान बुलाई गयी। उसके कहने से घन आनंद ने गाया ऐसा गाया कि सारा दरवार मंत्रमुग्ध हो गया। पर बादशाह ने अपनी आज्ञा के उल्लंघन करने के अपराध में घन आनंद को देश निकाला दे दिया। सुजान उनके साथ न जा सकी। वे वृन्दावन जाकर निंवार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गये और साधु-जीवन व्यतीत करने लगे, किन्तु सुजान का नाम नहीं भूले। उनकी रचनाएँ सुजान के प्रेम से रचनात्मक रूप से प्रेरित हैं।

घनआनंद की बहुत-सी रचनाएँ हैं- सुजानहित, कृपाकंद, वियोग बेलि, इश्कलता, प्रेम सरोवर, प्रेम पद्धति, गिरिपूजन, दान घटा इत्यादि। अब इन्हें घन आनंद-ग्रंथावली के नाम से विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने संपादित किया है।

घन आनंद प्रेम की पीड़ा के कवि हैं। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें प्रेम के पीर का कवि कहा है- 'समुझे कबिता घन आनंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी।' घन आनंद का प्रेम विषम है- 'प्रीतिरीति विषम सु रोम-रोम रमी है।' नायिका की अपार शोमा को वाणीबद्ध करना वैसा ही है जैसा चाँदनी को नापना-

पानिप अपार घन आनंद उकति ओछी,
जतन जुगति जोन्ह कौन पै नपति है।
झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजति कानन छवै।
हँसि बोलनि में छवि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है है।
लट लोल कपोल कलोल करें, कल कंठ बनी जलजावलि है।
अंग-अंग तरंग उठे दुतिकी, परिहै मनो रूप अबै घर च्वे।

घनानंद लिखते है-

रावरे रूप को रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारिये ।

ठाकुर (1766-1823): बुंदेलखंडी ठाकुर मुक्त रीतिधारा के स्वच्छन्द कवि थे। उनका जन्म ओरछा में हुआ था। वे जैतपुर के राजा पारीक्षित के दरबारी कवि थे। कभी-कभी विजावर दरबार की भी शोभा बढ़ाते थे।

उन्होंने लिखा है-

सीख लीन्हों मृग मीन खंजन कमल नैन,
सीख लीनो जस औ प्रताप को कहानी है।
सीख लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीख लीन्हों मेर और कुबेर गिरि आनो है।

ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात, याको नहीं भूलि कहूँ बांधियत बानो है।
डेल सो बनाय मेलत सभा के बीच लोगन कवित्त कीयो खेल कर जाना है।

बोघा : घन आनंद की भाँति बोधा भी प्रेमी कवि हैं। आपका जन्म बाँदा जिले के राजापुर गाँव में हुआ था। वे पन्नानरेश खेत सिंह के दरबारी कवि थे। उनका नाम बुद्धिसेन था। खेत सिंह उन्हें प्यार से बोघा कहते थे। वे मुख्यतः बोधा नाम से लिखते थे, कहीं-कहीं बुद्धिसेन नाम भी आया है। उनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं-विरही सुभान दंपति विलास (इश्कनामा) और माघवानल कामकंदला चरित्र (विरहवारीश)।

इन पुस्तकों में उनका लेखन-काल अंकित नहीं है, अतः बोधा का काल-निर्णय नहीं हो पाता। सरोज में सं. 1804 (1747 ई.) उनका काव्यकाल माना गया है। खेत
सिंह गद्दी पर तो नहीं बैठे फिर भी बोधा ने इन्हें महाराज नाम से संबोधित किया। गद्दी पर उनके छोटे भाई अमान सिंह बैठे। उनके पिता सभा सिंह की मृत्यु सन् 1752 में हुई थी अतः बोधा का रचनाकाल 1752 के बाद ही ठहराया जा सकता है। बोधा दरबार की एक नर्तकी सुभान पर आसक्त थे। इस अपराध के फलस्वरूप राजा ने उन्हें देश-निकाला दे दिया। इस निर्वासन काल में उन्होंने माधवानल कामकंदला चरित्र या विरहवारीश लिखा।
बोधा ने लिखा है-

मिलि जाने तासों मिलि कै जनावे हेत
हिल हित को न जाने ताकों हितू न विसाहिए।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै
लघु है चले जो तासों लघुता निबाहिए।
नीति को निबेरो यहि भाँति अहे
बोधा कबि आपुको सराह ताहि आपुहू सराहिए।

दाता कहा, सूर कहा, सुन्दर सुजान कहा आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए।

****
उन्होंने लिखा है-

अति छीन मृनाल के तारहु तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह तें द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाँडो लदावनो है।।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनो है।।

द्विजदेव (1820-61): द्विजदेव रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि हैं। ये अयोध्या के राजा थे और 'द्विजदेव' के नाम से कविता लिखते थे। उनका वास्तविक नाम मानसिंह था। लछिराम और रसिक बिहारी उनके आश्रित कवि थे। इन्होने दो ग्रंथों की रचना की है-श्रृंगारलतिका और श्रृंगारबत्तीसी। दूसरी पुस्तक पहली का ही अंग है। वसंत का एक ध्वनि-चित्र देखें-

गुंजरन लागीं भौर भीरें केलि कुंजन मैं, क्वैलिया के मुख तें कुहूकानि कढ़े लगी।
द्विजदेव तैसे कछु गहब गुलाबन तें, चहकि चहूँधा चटकाहट गर्दै लगी ।।

वसंत का ही एक दूसरा दृश्य है-

तुर ही के भार सूधे सबद सुकीरन के मंदिरन त्यागि करें अनत कहूँ न गौन।
द्विजदेव त्यौंही मधुभारन अपारन सों नेकु झुकि झूमि रहे मोंगरे मरुअ दौन।
खोलि इन नैनन निहारीं तो निहारों कहा सुषमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन देखात उनयो सौ चंद गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन।।

पावस का एक दृश्य देखें-

घहरि घहरि घन सघन चहूँधा घेरि छहरि छहरि विष बूँद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं अब चूक मत दाँव ए रे पातकी पपीहा ! तू पिया की धुनि गावै ना ।।
फेरि ऐसौ औसर न ऐहैं तेरे हाथ, एरे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तौ बिन प्रान प्रान चहत तजोई अब, कत नभ चंद तू अकास चढ़ि धावै ना।।

अभ्यास प्रश्न) 1
सही/गलत का चुनाव कीजिये।

1. विरहवारीश के रचनाकार बोधा हैं।
2. द्विजदेव रीतिसिद्ध काव्यधारा के कवि हैं।
3. ठाकुर बुंदेलखंड के रहने वाले थे।
4. इश्क्लता घनानंद की रचना है।
5. घनानंद की रचनाओं में सुजान की प्रतिध्वनि है।

4.4 रीतिमुक्त कविता: मूल पाठ

घनआनंद

आँखिन कों जो सुख निहारें जमुना के होत,
सो सुख बखानें न बनत देखिबेई है।
गौर-स्याम-रूप-आदरस है दरस जाकौ,
गुपुत-प्रगट भावना बिसेखिबेई है ।।

जुग कूल सरस सलाका दीठि परत हीं,
अंजन सिंगाररूप अवरेखिबेई है।
आनंद के 'घन' माधुरी की झर लागि रहै,
तरल तरंगिनि की गति लेखिवेई है ॥

भोर तें साँझ लों कानन ओर निहारति बावरी नैकु न हारति ।
साँझ तें भोर लों तारनि ताकिबो, तारनसौं इक तार न टारति ॥
जौं कहूँ भावतो दीठि परै 'घनआनंद' आँसुनि औसर गारति ।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के मन आरति ॥

भए अति निठुर मिटाय पहिचान डरी,
याही दुख हमें जक लगी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरंदई गई भूलि सुधि,
हमें सूल सलनि सो केहूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहो धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसें कल पाय है॥७॥

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिर नेह को तोरिए जू ।
निरधार अधार दे धार मँझार दई गहि बाँह न बोरिए जू ॥
'घन आनंद' आपने चातक कों गुन बाँधिलै मोह न छोरिए जू ।
रस प्यास कै ज्याय बढ़ाय के आस बिसास मैं यों विष घोरिए जू ॥

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारिए ।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहीं आन तिहारिए ॥
एकही जीव हुतौ सुतौ वार्यो सुजान सकोच औ सोच सहारिए ।
रोकी रहेन दहे 'घनआनंद' बावरी रीझ के हाथनि हारिए ॥

घेरि घबरानी उबरानिही रहित 'घन-
आनंद' आरत राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान रूप के अधार विनु,
व्याकुल बिकार भरी खरी गुजरति हैं ॥।
अतन जतन तें अतखि अरसानी बीर, परी
पीर भीर क्यों हूँ धीर न धरति हैं।
देखिए दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पें नित लंघन करति हैं ॥

अकुलानि के पानि पर्यो दिन राति सु ज्यों छिनकौ न कहूँ बहरै ।

फिरबोई करें चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यों ठहरै ॥
भए कागद नाव उपवन सबै 'घनआनंद' नेह नदी गहरै ।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी विरहानल की लहरै ॥

राति द्योस कटक सहेजी रहे दहे दुख,
कहा कहाँ गति या वियोग बजमारे की ।
लियो घेरि औचक अकेलौ के विचारौ जीव,
कछु न वसाति यों उपाय बलहारे की ॥
जान प्यारे लागो न गुहार तौ जुहार करि,
जूझि है निकसि टेक गहे पन धारे की।
हेत खेत धूरि चूरि चूरि है मिलैगो तब,
चलैगी कहानी 'घनआनंद' तिहारे की ॥

ऐरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन वारी,
तो सो और कौन मानै ढरकौहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान 'घन-
आनंद' निधान सुख दान दुखियानि दै ॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे,
अब है अमौही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह विथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायनि की हाहा नैकु आनि दै ॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप वाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलें तजि आपन पौ झुझुकें कपटी जे निसाँक नहीं ॥
'घनआनंद' प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरी ऑक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥॥

जिन ऑखिनि रूप चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित पीर सों पूरित जो हियरा फिर ताहि कही कहाँ लागनि है ॥
'घनआनंद' प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा सुख दागनि है।
सुख मैं मुखचंद बिना निरखे नख तें सिख लों विष पागनि है ॥

पूरन प्रेमको मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधार है लेख्यो ।
ताहि के चारु चरित्रविचित्रनि यों पचि कै रचि राखि बिसेख्यो ॥
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यो ।
सो 'घनआनंद' जान अजान लों टूक कियो पर बाँचि न देख्यो ॥

जीव की बात जनाइए क्योंकरि जान कहाय अजाननि आगौ ।

तीरनि मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोईबो रागौ ॥
ऐसी बनी 'धनआनंद' आनि जुआन न सूझत सो किन त्यागौ ।
प्रान मरेंगे भरेंगे बिथा पै अमोही सों काहू को मोह न लागौ ॥

पर-काजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ है दसौ ।
निधि-नीर सुधा की समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनंद' जीवनदायक हौ कल्लू मेरियौ पीर हिएँ परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहिं लै बरसौ ॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस के वन सो दरसै सो ।
जे बन मानस ते सरसे तिन सों मिलि मानस क्यों सरसै हो ।
हाय दई ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यो तरसै जो ।
चातक प्रान जिवाय दै ज्यान हहा 'घनआनंद' को बरसै जो ॥

धुनि पूरि रहै नित कानन में, आज को उपराजिचोई सी करें।
मनमोहन गोहन जोहन के, अभिलाप समाजिबोई सी करें ॥
'धनआनंद' तीखियै ताननि सों सर से सुर साजिबोई-सी करै ।
कित तें यह बैरिनि बाँसुरिया, बिन बाजेई वाजिबोई-सी करें ॥॥

जिनको नित नीकें निहारत हीं तिनकों अँखियाँ अत्र रोवति हैं।
पल पाँवड़े पायनि चायनि सों अँसुबानि के धारनि धोवति हैं ॥
'घनआनंद' जान सजीवन कों सपने बिन पायेई खोवति हैं ।
न खुली मुँदी जानि परें कछु ये दुखदाई जगे पर सोबति हैं ॥

पहिलें पहिचानि जु मानि लई अब तो सु भई दुख मूल महा ।
इतकै हित वैर लियो उत है करि ज्यों हरि व्योहरि लोभ महा ॥
'घनआनंद' मीत सुनौ अरु उत्तर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्हें पाय अजू हम खोयो सबै हमैं खोय कहौ तुम पायो कहा ॥

जब तै तुम आवन आस दई तब तें तरफौं कब आयहौ जू।
मन आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन जाम सुभाय हो जू ॥
विधि के दिन लों छिन बाढ़ि परे यह जानि वियोग बितायहौ जू ।
सरसौ 'घनआनँद' वा रस कों जु रसा रस सो बरसायहौ जू ॥

तुमही गति हौ तुमही मति हौ तुमही पतिहौ अ
नित प्रीति करौ गुन हीननि सों यह रीति सुजान प्रबीनन की ॥
बरसौ 'घनआनंद' जीवन को सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तो चित के पन पै इत के निधि हौ हित के रुचि मीनन की ॥

सदा कृपानिधान हौ कहा कहौं सुजान हौ
अमानि दान मान हौ समान काहि दीजिए।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे खरे प्रतीति के
निकेत नीति रीति के सुदृष्टि देखि लीजिए॥
ठगी लगी तिहारियै सु आप त्यों निहारियै
समीप है बिहारियै उमंग रंग भीजिए।
पयोद मोद छाइए बिनोद को बढ़ाइए
बिलंब छाड़ि आइए किधों बुलाय लीजिए॥

मो-से अन पहिचान कों, पहिचान हरि कौन।
कृपा कान मधि नैन ज्यों, त्यों पुकार मधि मौन॥

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही जोहि।
सो ही मो ही सो कठिन, क्यों करि सोही तोहि॥

ठाकुर

बैर प्रीति करिबे का मन में न राखै संक
राजा राव देखि कै न छाती धकधाकरी।
अपनी उमंग की निवाहिबे की चाह जिन्हें
एक सो दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी॥
'ठाकुर' कहत मैं विचार कै बिचार देखो
यहैं मरदानन की टेक बात आकरी
गही जौन गही जौन छोड़ी तौन छोड़ दई
करी तौन करी बात ना करी सो ना करी॥

सामिल में पीर में शरीर में न भेद राखै
हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय।
ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जंत्र मंत्र किये
साँप के जहर को उतारै तो उतरि जाय॥
'ठाकुर' कहत कछु कठिन न जानौ अब
हिम्मत किये तें कहो कहा न सुधरि जाय।
चारि जने चारिहू दिसा तें चारों कोन गहि
मेरु को हिलाय कै उखारै तो उखरि जाय॥

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के
दान युद्ध वीरता में नेकहू न सुरके।

जस के करैया हैं मही के महिपालन के
हिये के विशुद्ध हैं सनेही साँचे उर के ॥

'ठाकुर' कहत हम वैरी बेवकूफन के
जालिम दद्दाद हैं अदेनियाँ ससुर के
चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज
हम कविराज हैं पै चाकर चातुर के ॥

ग्वारन को यार है सिंगार सुख सोभन को
साँचो सरदार तीन लोक रजधानी को।
गाइन के संग देख आपनो बखत लेख
आनंद विशेष रूप अकह कहानी को ॥
'ठाकुर' कहत साँचो प्रेम को प्रसंगबारो
जा लख अनंग रंग दंग दधिदानी को।
पुण्य नंद जू को अनुराग ब्रजबासिन को
भाग यसुमति को सुहाग राधारानी को ॥

लगी अन्तर में करै बाहिर को बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोउ बाहर भानतु है ॥
कवि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सों सवही सब भाँति बखानतु है।
पर बीर मिले बिद्युरै की विथा मिलि कै बिल्लुरै सोई जानतु है ॥

यह प्रेम कथा कहिये किहिसों सौ कहेसों कहा कोऊ मानत हैं।
पर ऊपरी धीर बँधायो चहें तन रोग न वा पहिचानत हैं ॥
कहि 'ठाकुर' जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाय वेत्राय भये कोऊ पीर पराई न जानत है ॥॥

ये जे कहें ते भले कहियो करें लान सही सो सबै सहि लीजै ।
ते बकि आपुहि ते चुप होयेंगी काहे को काहुचे उत्तर दीजै ॥
'ठाकुर' मेरे मते की यह धनि मान के जोबन रूप पतीजै।
या जग में जनमैं को जियै को कहै फल है हरि सों हित कीजै ॥

एक ही सों चित्त चाहिये और लों बीच दगा को परै नहिं टाँको ।
मानिक सों चित बेचि के जू अब फेरि कहाँ परखावनो ताको ।
'ठाकुर' काम नहीं सब को इक लाखन में परबीन है जाको ।
प्रीति कहा करिवे में लगै करिकै इक ओर निवाहनो वाको ॥

बोधा

अति खीन सुनाह के तारहते तेहि पर पाँव दे आवतो है।
सुई वह ते द्वार सकी न तहाँ परतीत कोटांड़ी खाती है।
यह प्रेम को पन्थ कराह महा तरवार की बार चावनी हैं

एक सुभान के आनन के कुरान जहाँ को
लगि केश्रो सतक्रतु की पदवी खुटिये खस्ति के सुसुकाइट ताको ।
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि 'बोला' जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिले तो जहान मिसे नई जान मिले ती जहान कहाँ को।

लोक की लाज थी सोकसी को बारिये श्रीति के उपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह की नाती सनेह में होती करें पुनि सीऊ॥
'बोवा' सुनीति निवाह कर वर उपर जाके नहीं सिर होऊ।
खोक की भीत जेरात जो बीतती श्रीति के बैंड़े पर जनि कोऊ ॥

'बोवा' दिसू सो कहा कड़िये सोविया सुनि पूरि रहे अरगाह है।
यात सहे सुख मौन बरें उपचार करें बद्ध ओसर पाइ के ॥
ऐसो न कोऊ मिल्यो कवहें जो की बरंच दया कर खाई है।
आवतु है सुख हीं बदि के फिरि पीर रहे या सरीर समाइ है ॥

कवहें मिलिवी कवहें मिलियो यह धीरज ही में बरेवो करें।
करते कदि आहे गरे ते फिरे मन की मनहीं में सिरेवो करें ।॥
कवि 'वोवा' नचार सरी कहूँ तिनही हवासों हिरेवो करे।
सहते ही बने कहते न बने सन ही मन पीर पिरीयो करें॥॥

हिलि मिलि जानै तासों मिलि के जनावै हेत ।
हित को न जानै ताको हितु न बिसाहिये ॥
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै ।
लघु है चले जो तासों लघुता निवाहिये ॥
'बोधा' कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै।
आप को सराहै ताहि आपहू सराहिये ॥
दाता कहा सूर कहा सुंदर सुजान कहा।
आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिये ॥

वह प्रीति की रीति को जानत थी तबही तो बच्यो गिरि ढाहन तें ।
गजराज चिकारि कै प्रान तज्यो न जरो सँग होलिका दाहन तें ॥
कवि 'बोधा' कबू न अनोखी यहै का बनै नहीं प्रीति निबाहन तें ।

प्रहलाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यों न कढ़ें प्रभु पाहन तें

4.5 रीतिमुक्त साहित्य: विशेषता एवं प्रदेय

4.5.1 रीतिमुक्त साहित्य: विशेषता

* रीति से मुक्त होने की कोशिश

रीति या बद्ध प्रणाली से मुक्ति इस काव्यधारा के कवियों में केवल अंतरवस्तु के स्तर पर व्यक्त नहीं हुई है अपितु इन कवियों ने सचेत ढंग से अपनी रीति मुकत्ता की घोषणा की है | घनआनंद ने घोषणा की कि मैं कविता नहीं लिखता, अपितु कविता मुझे बनाती है|

एक छंद में घनआनंद कहते हैं :

ईछन तीछन बान बखान सो
पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यारे भरे अति पानिप
मायल घायल चोप चटावत ॥
है घन आनंद छावत भावत
जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत ॥

कविता से व्यक्तित्व बनने की बात कहना रोमांटिक वृत्ति ही समझा जाना चाहिए|

* प्रेम की व्यंजना का काव्य

रीति मुक्त कविता में प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है| प्रेम के संयोग व वियोग दोनों पक्ष की अभिव्यक्ति रीतिमुक्त कविता में हुई है| हालांकि प्रमुखता वियोग की ही रही है| यहाँ घनआनंद की कविता के कुछ उदाहरण देखना उचित होगा-

नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस,
इते पैर एक सी बाट चहों।
****
रावरे रूप की रीति अनूप
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी
अघानि कहू नहिं आनि तिहारिये ॥
****
अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
****

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ
मन लेहूं पै देहूं छटांक नहीं।
****
स्याम घटा लिपटी थिर बीज की सौहैं अमावस-अंक उजयारी।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल पै द्विग-शीतलता-सुख-कारी ॥
कै छबि छायौ सिंगार निहारी सुजान-तिया-तन-दीपति-त्यारी।
कैसी फबी घनानन्द चोपनि सों पहिरी चुनी सावँरी सारी ॥

****
नेही सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर
नहि और ठौर, काहि सांकरे समहारिये
बहुत दिनान को अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठी जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को ॥
झूटी बतियानि की पतियानि तें उदास हैव कै,
अब न घिरत घन आनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों लै सुजान को ॥

4.5.2 रीतिमुक्त साहित्य: प्रदेय

प्रिय विद्यार्थियों! आपने रीतिमुक्त कविता का अध्ययन किया| रीतिमुक्त कविता के मूल पाठ को भी आपने पढ़ा | आपने देखा कि रीतिमुक्त कविता रीति निरुपण की तत्कालीन पद्धति से मुक्त होकर स्वच्छचंद पद्धति पर चलती है| रीतिमुक्त कविता में प्रेम का आधार हृदय है न कि शरीर | रीतिमुक्त कविता हिंदी की पहली स्वच्छन्द धारा की कविता है| स्वच्छनंदता का अर्थ है रूढ़ियों को तोड़ना | सभी रीतिमुक्त कवि प्रेमी हैं और दरबारी होकर भी रूढ़ियों से मुक्त हैं| दरबार की सीमाओं को तोड़ना, शरीर की जगह प्रेम को स्थापित करना एक बड़ा प्रदेय समझना चाहिए | रीतिमुक्त कवियों की भाषा भी सघन है|रीतिमुक्त कविता ने हिंदी की रोमांटिक कविता की धारा का मार्ग प्रशस्त किया, यह इस धारा की प्रमुख विशेषता है।

अभ्यास प्रश्न) 2
रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये।

1. रीतिमुक्त कविता धारा में प्रेम के पीर का कवि .....को कहा गया है।
2. विरहवारीश के रचनाकार .....हैं।
3. रीतिमुक्त कविता .....प्रेम की कविता है।
4. माधवानल कामकंदला..... की रचना है।
5. इश्कलता .....की रचना है।

4.6 सारांश

रीतिमुक्त कविता की इस इकाई में आपने रीतिमुक्त कविता की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन किया| इस क्रम में आपने घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव जैसे कवियों की कविताओं का अध्ययन किया| आपने पढ़ा कि रीति मुक्त कविता ने प्रेम के स्वच्छन्द रूप को स्थापित किया | रीति मुक्त कविता ने कथ्य और भाषा की रूढ़ियों को तोड़कर उसे गतिशील किया | इस इकाई में रीतिमुक्त प्रमुख कवियों की कविताओं के पाठ से रीतिकाल की नयी भंगिमा को समझने में मदद मिलेगी|

4.7 शब्दावली

- रीतिमुक्त काव्यधारा- रीतिकाल की एक प्रमुख धारा
- स्वच्छंद काव्य- रुढियों से मुक्ति का काव्य
- कनक- सोना
- कामिनी- स्त्री
- पीर- पीड़ा
- विषम- कठिन , विपरीत
- सूधो- सीधा
- मारग- मार्ग

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न)1 – 1. सही 2.गलत 3. सही 4. गलत 5. सही

अभ्यास प्रश्न)2 1. घनानंद 2. बोधा 3. स्वछन्द 4. आलम 5. घनानंद

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ बच्चन सिंह

4.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. घनानन्द कवित्त- सं विश्वनाथ मिश्र
2. रीतिकाव्य की भूमिका- डॉ नगेन्द्र

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. रीतिमुक्त साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को वर्णित कीजिये
2. प्रमुख रीतिमुक्त कवियों का परिचय दीजिये

इकाई-5: रीतिकाल: नीति एवं भक्ति कविता

5.1:- प्रस्तावना

5.2:- उद्देश्य

5.3- नीति एवं भक्ति कविता का परिचय
5.4- नीति एवं भक्ति कविता का स्वरूप एवं विकास
5.5- नीति कविता: कवि परिचय एवं नीतिपरक दोहे
5.5.1- महाकवि बिहारीलाल
5.5.2- वृंद
5.5.3- गिरिधर कविराय
5.5.4- बैताल
5.5.5- सम्मन
5.5.6- रामसहायदास
5.5.7- दीनदयाल गिरि
5.6- भक्ति कविता: कवि परिचय एवं भक्तिपरक दोहे
भक्ति कविता - (निर्गुण एवं सगुण)
5.6.1-दरिया साहब
5.6.2-जगजीवनदास
5.6.3-पलटू साहब
5.6.4- चरनदास
5.6.5-शिवनारायण
5.6.6-तुलसी साहब
5.6.7-कासिमशाह
5.6.8- नूर मुहम्मद:
5.6.9- शेख निसार
5.7- सारांश
5.8- बोधात्मक प्रश्न-उत्तर
5.9- निबन्धात्मक प्रश्न
5.10- संदर्भ ग्रंथ सूची
5.11- सहायक ग्रंथ-सूची

5.1- प्रस्तावना

समुचित प्रस्तुत इकाई में रीतिकाल में लिखी गई नीति एवं भक्ति विषयक काव्य रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है। रीतिकाल का परिचय इससे पूर्व की इकाईयों में भी दिया गया है। रीतिकाल की अन्य काव्य-प्रवृत्तियों में रीतिकालीन 'नीति एवं भक्ति कविता' का परिचय दिया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का विवेचन उत्तर मध्यकाल के अंतर्गत संवत् 1700 से संवत 1900 तक लिखे गये साहित्य के लिए हुआ है। रीतिकालीन काव्यों में जहां रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त स्वच्छंद प्रेमधारा

के ग्रंथों की सृष्टि हुई, वहीं ज्ञान, प्रेम, भक्ति, नीति तथा वीर रस की काव्य- सारणियां भी समानांतर रूप में प्रवाहित होती रहीं। ये सभी धाराएं पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की विकसित अवस्थाएं थीं। रीतिकाव्य का मुख्य उद्देश्य समाज की नीति और मूल्यों को प्रस्तुत करना है। रीतिकाल में नीति और भक्ति की कविताएँ उस समय की सांस्कृतिक, सामाजिक, और राजनीतिक परिवेश को प्रतिबिंबित करती हैं। रीतिकाल में सामंतों और राजाओं का जीवन विलासिता से परिपूर्ण था।

इस इकाई में विद्यार्थी देखेंगे कि रीतिकाल की मुख्य काव्यधारा के साथ ही अनेक कवि पहले से ही चली आ रही उस भक्ति एवं नीति संबंधी भावधारा के माध्यम से अपनी सृजनात्मकता को व्यक्त करने में संलग्न थे जिसे उनसे पूर्व सरहपा,कबीर, नानक तुलसी आदि भी व्यक्त कर चुके थे। इस युग में नीति व भक्ति कविता की रचना भी इसी संदर्भ में की गयी है ।

5.2- उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप-

- रीतिकाल, नीति और भक्ति कविता से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल नीति एवं भक्ति कविता के स्वरूप को जान सकेंगे।
- रीतिकालीन काव्य के अंतर्गत आने वाले कवियों की भक्ति एवं नीति परक दोहे की विशेषताएँ जान सकेंगे।

5.3- नीति एवं भक्ति, रीति कविता का परिचय

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सन् 1643 से सन् 1843 ई०) श्रृंगार-परक लक्षण ग्रंथों की प्रधानता के कारण रीतिकाल कहलाता है। 'रीतिकाल' के नामकरण पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। इसीलिये इस काल के अनेक नाम मिलते हैं, यथा- श्रृंगार काल, कला काल, अलंकृत काल।

इस युग में रीति और आचार्यत्व की प्रधानता रही। इस काल के साहित्य में काव्यांगों की शिक्षा देने वाले ग्रन्थों की प्रमुखता रही। काव्य कला की दृष्टि से रीति काव्य में नये प्रतिमानों की प्रतिष्ठा हुई। भक्ति एवं भाव की अपेक्षा इस काल के कवि पूर्ण रूप से श्रृंगार और कला में रचे-बसे हैं। रीतीतर काव्य में अनेक काव्यधाराएँ एक साथ चलती रहती हैं। इस रीतिमुक्त काव्य के अनेक उपभाग किए गए हैं-

1. स्वच्छंद प्रेम काव्य, 2. वीर काव्य, 3. भक्तिकाव्य, 4. नीति काव्य, 5. विनोद काव्य, 6. अन्य काव्य।

इस काल में वीर, भक्ति, प्रेमाख्यान और नीति-अन्योक्ति काव्यों का सृजन होता रहा जिनका अपना अलग अस्तित्व भी है और तत्कालीन परिवेश से संबद्धता भी। नीतिपरक मुक्तकों का क्षेत्र भक्तिपरक मुक्तकों की तुलना में आरंभ से ही अधिक रहा है। हिंदी के जन्म से पूर्व नीतिकाव्य पर ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सांस्कृतिक सिद्धांतों का प्रभाव रहा। ब्राह्मण-संस्कृति के परिवेश में लिखे जाने नीतिकों में चाण के चाणक्यशतक, शंकर वर्मा के 'वल्लालशतक', भर्तृहरि के 'नीतिशतक', क्षेमेन्द्र के 'चारुचर्चा', 'सेव्यसेवषष्टिका 'दर्पदलन' आदिः जल्हण के 'मुग्धोपदेश', कुसुमदेव के 'दृष्टांतशतक', द्याद्विदेव की 'नातिपदेश चुमान कवि के 'उपदेशशतक' आदि ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है। जैनों द्वारा लिख गरे नीति ग्रंथों में अमितगति की 'धर्मपरीक्षा' तथा हेमचंद्र का 'योगशास्त्र' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। ये ग्रंथ अन्य जैन ग्रंथों के समान अपभ्रंश भाषा में है। इनके अतिरिक्त बौद्ध संघों के विघटन से आविर्भूत महायान और हीनयान शाखाओं तथा बाद में महायान की वज्रयान और सहजयान नामक उपशाखाओं से विकसित क्रमशः सिद्ध और नाथ संप्रदायों के संतों ने अपने उपदेश भी इसी भाषा में लिखे। इन सब पर सांप्रदायिक प्रभाव स्पष्ट है। हिंदी की आरंभिक अवस्था में तो इस प्रकार का काव्य कम लिखा गया, किंतु भक्तिकाल में यही मूलतः पूर्ववर्ती धार्मिक परंपराओं के अनुरूप रचा जाने के परिणामस्वरूप बौद्ध और जैन प्रभावों से अछूता रहा। संतकाव्यधारा के कवियों ने जितनी भी नीतिपरक रचनाएं लिखीं, उन पर प्रायः नाथों का प्रभाव रहा। सगुणभक्त कवि इनके विपरीत संस्कृत में रचित नीतिग्रंथों के अनुगामी रहे। इस संबंध में यह कहना असंगत न होगा कि इस काल के कवियों की रचनाओं में नीति सामान्यतः भक्ति और साधना की अंगीभूत हो कर आयी, किंतु, इनके साथ ही एक अन्य धारा भी इसी काल में आरंभ हुई। उसमें वे कवि थे, जिन्होंने वैयक्तिक अनुभवों के आधार पर नीतिपरक मुक्तकों की रचना की। ऐसे कवियों में रहीम का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इनके पश्चात तो नीतिकाव्य का प्रवाह इसी दिशा में चल पड़ा।

5.4- रीतिकाल: नीति एवं भक्ति कविता का स्वरूप एवं विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल एक कालखंड है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार-"चौथा वर्ग नीति के फुटकल पद्य कहने वालों का है। इनको कवि कहना हम ठीक नहीं समझते। इनके तथ्यकथन के ढंग में कभी-कभी वाग्वैदग्ध्य रहता है पर केवल वाग्वैदग्ध्य के द्वारा काव्य की सुष्टि नहीं हो सकती। यह ठीक है कि कहीं-कहीं ऐसे पद्य भी नीति की पुस्तकों में आ जाते है जिनमें कुछ मार्मिकता होती है, जो हृदय की अनुभूति से भी संबंध रखते हैं, पर उनकी संख्या बहत ही अल्प होती है। अतः ऐसी रचना करने वालों को हम 'कवि' न कहकर हुए हैं। 'सुक्तिकार' कहेंगे। रीतिकाल के भीतर वृंद, गिरिधर, घाघ और बैताल अच्छे सूक्तिकार हुए है।"

"छठा वर्ग कुछ भक्त कवियों का है जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाये हैं।"

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में जितने भी रीतिग्रंथ मिलते हैं उनमें कवियों का उद्देश्य भिन्न है। इन रीति ग्रंथों के कवियों का उद्देश्य काव्यांगों का शास्त्रीय विवेचन करना नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य कविता करना था। कविता के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बहुत सीमित था। कवि अर्थोपार्जन के लिए कविता करते थे। सामंतों का दरबार उनकी कविता का मुक्त बाज़ार था। सामंतों की रुचि का ख्याल रखना और उनका मनोरंजन करना कवियों के लिए महत्वपूर्ण हो गया। इस कार्य के लिए कवियों ने तीन प्रकार से शास्त्र का सहारा लिया। प्रेम-क्रीड़ाओं से संबंधित काम शास्त्र, उक्ति वैचित्र्य से संबंधित अलंकार शास्त्र और नायक नायिका के स्वभाव का वर्णन करने वाले रस शास्त्र को कवियों ने अपना आधार बनाया। रीतिकाल में हिन्दी कविता का स्वरूप बदलता रहा। रीतिकाल तक आते-आते कविता का विषय शृंगार हो गया। इस युग में भक्ति गौण और शृंगारिकता प्रमुख हो गई। रीतिकालीन काव्य में भक्ति और नीति परक उक्तियाँ दो रूपों में प्राप्त होती हैं एक तो लक्षणग्रंथों में उदाहरण स्वरूप निबद्ध की गई, दूसरी स्वतंत्र रूप से। रीति के बंधे परिवेश से निकलकर जीवनानुभवों को व्यक्त करने के लिए ऐसी रचनाएँ रीतिबद्ध कवियों के ग्रंथों में मिलती हैं किन्तु स्वतंत्ररूप से जीवन-जगत के यथार्थ रूप को प्रकट करने वाले छंदों की रचनाएँ नीतिकाव्य के अंतर्गत ही मिलती है। विद्वानों का ऐसा विचार है कि भक्ति यदि इन कवियों के आकुल अंतर के लिए शरणभूमि थी, तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात-प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व के विरेचन के परिणाम स्वरूप शांति का आधार थी। इसीलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छंदों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्राय: देखने को मिलती है। इन छंदों में पूर्व परंपरा का पालन तो है ही साथ ही अपने परिवेश से प्रेरित जीवन के उत्थान-पतन और आशा-निराशा का चित्रण भी पाया जाता है।

5.5- नीति कविता: कवि परिचय एवं नीतिपरक दोहे

नीतिकाव्य- हिंदी-साहित्य के रीतिकाल में नीतिकाव्य भी एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इस काल की नीति-विषयक रचनाओं की एक परंपरा संस्कृत-काव्यों से चली आ रही है। भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' (650) नाम से संस्कृत भाषा में नीतिकाव्य की रचना की थी। हेमचंद्र के अपभ्रंश-व्याकरण में अनेक दोहे नीति से संबद्ध हैं। नीतिकाव्य उत्तम आदर्शों, मार्गदर्शन, और जीवन के नियमों को साझा करते हैं। ये कविताएँ जीवन के मूल्यों और नैतिकता की महत्वपूर्ण सीख देती हैं। नीतिकाव्य काव्य का वह रूप है जिसमें नीति, धर्म, और नैतिकता के मूल्यों को प्रवाहित किया जाता है। इसमें जीवन के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है और सही और गलत की पहचान करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान किया जाता है। नीति कविताओं के लिए आदिकवि चाणक्य और विद्यापति की कविताएँ भी महत्वपूर्ण है। जीवन के विभिन्न पहलुओं को अद्भुत रूप से व्यक्त करने के लिए कवियों ने नीति, भक्ति, प्रेम, और अन्य विषयों पर कई दोहे और कविताएँ रची हैं। यह कविताएँ अध्यात्मिक तथा सामाजिक संदेशों को सुंदर शब्दों में प्रस्तुत करती हैं। कबीर, तुलसी, रहीम, उमाल आदि कवियों ने भी नीतिविषयक रचनाएं दोहा छंद में की हैं। रीतिकाल में नीति-विषयक काव्यों के रचयिताओं में मुख्यतः बिहारी है और उनके अतिरिक्त- **वृंद, गिरिधर कविराय, बैताल, सम्मन, रामसहायदास, दीनदयाल गिरि** आदि के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। रीतिकाल और नीति कविता के कई महान कवियों ने अपने दोहों में जीवन के मूल्यों, नैतिकता, और धर्म के महत्व को समझाया है। यहाँ उनमें से कुछ प्रमुख कवि और उनके दोहे-

चाणक्य- भारतीय नीति शास्त्र के महान गुरु और राजनीतिज्ञ चाणक्य ने "अर्थशास्त्र" और "नीतिशास्त्र" जैसी महत्वपूर्ण ग्रंथों का लेखन किया है। भारतीय संस्कृति के विद्वान और कवि भार्गव ने "नीतिशतक" के रूप में नीति सम्बंधित कई उत्कृष्ट काव्य रचें।

5.5.1-महाकवि बिहारीलाल-

रचना- बिहारी सतसई

हिन्दी साहित्य के महाकवि बिहारी रीतिकालीन, रीतिसिद्ध काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि थे। बिहारीलाल का जन्म सन् 1603 ई० के लगभग ग्वालियर के पास बसवा गोविंदपुर गाँव में हुआ था। वे संस्कृत के विद्वान थे। "नीति एवं भक्ति कविता" के विषय में महाकवि बिहारीलाल के दोहे नीति और भक्ति के विषयों पर हैं। उनके दोहों में जीवन के मूल्यों की व्याख्या की गई है। बिहारी के दोहे में अधिकांश सौंदर्य वर्णन भौतिक है। थोड़े दोहे ही नीति, व्यक्ति और प्रकृति संबंधी हैं। बिहारी की सतसई का वर्णन विषय अत्यन्त विस्तृत है। कवि ने इसमें अपनी मौलिक प्रतिभा और विवेकशीलता का सुन्दर परिचय दिया है।

बिहारी **सतसई में** नीति और भक्ति के दोहे हिन्दी अर्थ सहितः-

बिहारी ने कृष्ण के साथ-साथ अपने दोहे में किसी आलौकिक व्यक्ति को भी नमन किया है। बिहारीलाल ने संदेश में लिखा था –

1- "**नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास इही काल।**
अली कली हौं सो बंध्यो, आगे कौन हवाल"॥

बिहारी के इस दोहे ने राजा के ऊपर मंत्र जैसा काम किया। वे रानी के प्रेम पाश से मुक्त होकर पुनः अपना राज-काज सम्भालने में लग गए। इस प्रकार बिहारी ने 'सात सौ' दोहे लिखे जो संग्रहीत होकर **'बिहारी सतसई'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बिहारी सतसई को श्रृंगार, भक्ति और **'नीति की त्रिवेणी'** भी कहा जाता है।

'

बिहारी ने कृष्ण और राधा को शक्तिमान तथा शक्ति के रूप में देखा है-

2-**मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोई।**
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित दुति होई ॥

कवि बिहारी अपने ग्रंथ के सफल समापन के लिए राधा जी की स्तुति करते हुए कहते हैं कि मेरी सांसारिक बाधाएँ वही चतुर राधा दूर करेंगी जिनके शरीर की छाया पड़ते ही साँवले कृष्ण हरे रंग के प्रकाश वाले हो जाते हैं।

3-जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै राम ॥

आडंबरों की व्यर्थता सिद्ध करते हुए बिहारी कहते हैं कि नाम जपने की माला से या माथे पर तिलक लगाने से एक भी काम सिद्ध नहीं हो सकता। यदि मन कच्चा है तो वह व्यर्थ ही सांसारिक विषयों में नाचता रहेगा। सच्चा मन ही राम में रम सकता है।

4-या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहीं कोई।
ज्यों-ज्यों बूढ़े स्याम रंग त्यों-त्यों उज्जवल होई॥

इस प्रेमी मन की गति को कोई नहीं समझ सकता। जैसे-जैसे यह कृष्ण के रंग में रंगता जाता है, वैसे-वैसे उज्ज्वल होता जाता है अर्थात कृष्ण के प्रेम में रमने के बाद अधिक निर्मल हो जाते हैं।

5-कनक कनक ते सौं गुनी मादकता अधिकाय।
इहिं खाएं बौराय नर, इहिं पाएं बौराय॥
सोने में धतूरे से सौ गुनी मादकता अधिक है। धतूरे को तो खाने के बाद व्यक्ति पगला जाता है। सोने को तो पाते ही व्यक्ति पागल अर्थात अभिमानी हो जाता है।

6-कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग नाइक, जग बाइ॥

हे प्रभु! में कितने समय से दीन होकर आपको पुकार रहा हूँ और आप मेरी सहायता नहीं करते। हे जगत के गुरु, जगत के स्वामी ऐसा प्रतीत होता है, मानो आप को भी संसार की हवा लग गयी है अर्थात आप भी संसार की भांति स्वार्थी हो गए हो।

5.2.2-वृंद

रचना-'वृंद-सतसई'

ये नीति-काव्याकार ईसा की अठारहवीं शती से उनीसवीं शती तक अपनी रचनाओं की सृष्टि करते रहे। अठारहवीं शती के प्रथम चरण में सन् 1704 के आसपास मेड़ता (जोधपुर) निवासी वृंद ने अपनी 'सतसई' की रचना की थी। 'वृंद-सतसई' में सात सौ दोहे हैं। भाषा सरल, सरस और कलापूर्ण है। वृंद के दोहों में रसमय कवित्व तो नहीं है; हां, कलापूर्ण सूक्तियां उन्हें अवश्य कह सकते हैं। लोकप्रियता की दृष्टि से 'वृंद- सतसई' के अनेक दोहे आज भी लोकजीवन की वाणी के माध्यम से सुने जा सकते हैं।

फीकी पै नीके लगै, कहिए समय बिचारि ।

सबकौ मन हरषित करै, ज्यौं बिवाह में गारि ॥

भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।

जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं ॥

5.5.3-गिरिधर कविराय

इन्होंने व्यवहार और नीति से संबद्ध कुंडलियां लिख कर जितनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है, उतनी प्रसिद्धि रीतिकाल का कोई अन्य नीतिकाव्यकार नहीं पा सका। नीतिविषयक कुंडलियां केवल दो कवियों की ही सुनी जाती हैं-एक गिरिधर कविराय की और दूसरे दीनदयाल की। इनका कविताकाल 1743 के बाद का माना गया है। जाति, गांव परिवार, घर-बार, राजदरबार आदि स्थानों पर मनुष्यों को क्या नीति अपनानी चाहिए और कैसा व्यवहार करना चाहिए,इन बातों को कवि ने ऐसी सीधी-सादी सरल भाषा में बताया है।

5.5.4- बैताल

रचना-'विक्रम'

नीति काव्यकार का समय 1782 ई. के बाद और 1829 ई. से पहले माना जा सकत है। ये जाति के बंदीजन थे और कहा जाता है कि चरखी वाले विक्रमसाह की सभा में रहा थे। बैताल ने अपनी कुंडलियां 'विक्रम' को संबोधित करते हुए लिखी हैं। इनकी भाषा सरल है तथा कथन-शैली अनूठी है। उदाहरण:

बाम्हन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै।

पूत वही मरि जाय, जो कुल में दाग लगावै ॥

अरु बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइए।

बैताल कहै विक्रम सुनो, एते मरै न रोइए ॥

5.5.5-सम्मन-

ये जाति से ब्राह्मण थे। इनका जन्म 1777 ई. में हुआ था और इनका निवासस्थान मल्लावां (जिला हरदोई) था। इनके नीति संबंधी दोहे ग्रामीण जनता में बहुप्रचलित है। भाष सरल और सीधी होते हुए भी मर्म को स्पर्श करती है। मनुष्य का जीवन दिनों के फेर से अच्छा बुरा बनता रहता है। इस भाव के दोहे बड़े मर्मस्पर्शी हैं। मिष्ट भाषणा के संबंध में सम्मन कहते हैं :

सम्मन मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर।

जेहि नहिं सीखो बोलिवो, तेहि सीखो सब धूर ॥

5.5.6-रामसहायदास-

रचना-'राम-सतसई'

ये जाति के कायस्थ थे और चौबेपुर (जिला बनारस) के रहने वाले थे। कविता में इनका उपनाम 'राम' था। बिहारी की 'सतसई' की भांति इनकी 'राम-सतसई' भी शब्दों को कारीगरी और वाक्चातुर्य की दृष्टि से प्रसिद्ध है। इनका कविताकाल 1703 से 1823 ई. तक माना जा सकता है। जायसी के 'अखरावट' के ढंग पर इन्होंने 'ककहरा' की रचना की थी, जिसमें नीतिविषयक उपदेश हैं।

5.5.7-दीनदयाल गिरि –

रीतिकालीन नीतिकारों में दीनदयाल गिरि सर्वप्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ये मथुरा जिले के बरसावा गांव के महात्मा थे। बाबा दीनदयाल गिरि जाति के गोसाईं थे। लौकिक विषयों पर गिरि जी की अन्योक्तियां नीति-साहित्य में मूर्धन्य स्थान रखती हैं। इनके ग्रंथ 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' की भाषा बहुत स्वच्छ, सुव्यवस्थित और परिष्कृत है। इनकी कविता में सहृदयता एवं भावुकता स्पष्टतः लक्षित होती है। कलामयी भावात्मकता के साथ नीतिकाव्य की सर्जना में दीनदयाल गिरि गिरिधर कविराय से उच्च सिद्ध होते हैं। अन्योक्ति-आश्रित नीतिकाव्य के क्षेत्र में इनकी मार्मिकता और सौंदर्यानुभूति का विशिष्ट स्थान है। किसी क्रूर के संबंध में चंद्र को संबोधित करते हुए गिरि जी लिखते हैं:

केतौ सोम कला करौ, करौ सुधा कौ दान।

नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया परवान ॥

यह तेलिया परवान बड़ी कठिनाई जाकी।

टूटीं याके सीस बीस बहु बांकी टांकी ॥

बरनै दीनदयाल चन्द ! तुम ही चित चेतौ।

कूर न कोमल होहिं कला जौ कीजै केतौ ॥

5.6- भक्ति कविता: कवि परिचय एवं भक्तिपरक दोहे

भक्ति कविता- इस काल में श्रृंगार-काव्य के अतिरिक्त भक्तिकाव्य, की रचना भी पर्याप्त मात्रा में हुई। रीतिकाल में काव्य रूपों की जितनी विविधता एक साथ मिलती है, वह इससे पहले के हिन्दी साहित्य में नहीं मिलती है। इस युग में, कवियों का लक्ष्य सिर्फ राजसभा में राजा की प्रशंसा में पुरस्कार पाना था। तब कविता में आध्यात्मिक चेतना का प्रसार करना कठिन था। लेकिन समस्त हिंदी साहित्य में रीतिकाल ही एक ऐसा युग है, जिसमें राग और भोग के साथ देश तथा परमात्मा-भक्ति का साहित्य भी समान स्तर पर लिखा हुआ मिलता है। रीतिकालीन संदर्भ में भक्ति की परंपरा पूरी तरह सुरक्षित है। उसमें प्रत्येक रीतिकवि भक्त है। रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त वर्गों के कवि मूलतः भक्त हैं। वे कृष्णकथा के गायक हैं। कृष्णकथा को भौतिक आधार देकर भी वे कृष्ण से क्षमा माँगते चलते हैं और कम-अधिक मात्रा में शुद्ध भक्ति-भावना को भी प्रदर्शित करते हैं। परंतु रीतिकाल की रचनायें अधिकतर श्रृंगारिक है।

इसके अतिरिक्त इसमें वीर, भक्ति और नीतिकाव्य की रचनायें भी उपलब्ध है। अब तक प्रकाशित रीतिकालीन भक्ति-साहित्य के दो रूप मिलते हैं-1. निर्गुण भक्ति 2. सगुण भक्ति।

वैष्णव संप्रदायों ने राम-कृष्ण-भक्ति का साहित्य लिखा है। यह गद्य और पद्य दोनों में लिखा गया है। भक्तिकाव्य मानवता, भगवान, और आत्मा के बीच के आंतरिक संबंध को व्यक्त करते हैं। ये कविताएँ प्रेम, श्रद्धा, और आध्यात्मिकता के महत्व को उजागर करती हैं। मन में भगवान को बसाओ, प्रेम के सागर में डूब जाओ। चाहे जितना भयंकर हो संसार, भगवान के साथ हैं तुम अपार। रीतिकाल, नीति, और भक्ति कविताओं के प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते है। ये कवि न केवल अपने काल में महत्वपूर्ण थे, बल्कि आज भी उनकी कविताओं का महत्व बना हुआ है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को ज्ञान, नैतिकता, और आध्यात्मिकता के संदेश प्रदान किए हैं। भक्तिकाव्य का मुख्य उद्देश्य ईश्वर या किसी देवता के प्रति भक्ति और श्रद्धा को प्रकट करना होता है। इसमें भक्ति के उत्कृष्ट भाव, ध्यान और समर्पण का वर्णन किया जाता है। संस्कृत साहित्य की इस भक्ति भावना का प्रभाव हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों पर विशेष रूप से पड़ा। सूरदास, नन्ददास, तुलसीदास, मीराबाई आदि भक्त कवियों ने उपासना को ही ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र साधना माना है। रीतिकाल में आते-आते राधाकृष्ण का पवित्र प्रेम अलौकिक प्रेम में परिणत हो गया।

> वस्तुतः भक्तिकाल के अनंतर रीतिकाल में भी संतकाव्य, सूफ़ीकाव्य, रामकाव्य और कृष्ण काव्य की रचना होती रही। भक्ति कविताओं के लिए संत कवि मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, और कबीर जैसे कवियों के गीत विख्यात है।

नीति से संबंधित दोहे आचार्य चाणक्य के "कौटिल्य अर्थशास्त्र" से लिए गए है।

भक्ति -भक्ति से संबंधित दोहे संत कबीर दास के "कबीर अमृतवाणी" से लिए गए है। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत, कुमारसम्भव,रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि लिखे है।

रीतिकाल, नीति, और भक्ति कविता के कई महान कवियों ने उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत की हैं। यहाँ कुछ प्रमुख कवि और उनकी प्रमुख रचनाओं का उल्लेख है –

संतकाव्य-

संतकाव्य- संतकाव्य में रामानंद की शिष्य-परंपरा में दो भिन्न भक्ति-भावनाओं के भक्त हुए। निर्गुणमार्गी भक्तों में कबीर, दादू, रैदास आदि प्रसिद्ध संतकवि हुए, और सगुणमार्गी भक्तों में तुलसीदास जैसे महाकवि। निर्गुणभाव के संतकवियों में नामदेव का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। ईसा की तेरहवीं शती में उन्होंने जिस निर्गुणभाव की काव्यधारा प्रवाहित की, वह शनैः शनैः अग्रसर होती रही और ईसा की सत्रहवीं शती से आगे बढ़ कर उन्नीसवीं शती तक भी अपनी ज्ञान-योग-भावना की शांतिमयी शीतलता प्रदान करती रही। इस भावना को अग्रसर करने में रीतिकाल के कई संतकवियों के समय-समय पर योग दिया, जिनमें यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवनदास, पलटू साहब, चानदास, शिवनारायण और तुलसी साहब विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

5.6.1-दरिया साहब-

बिहार वाले दरिया साहब प्रसिद्ध संत हुए हैं। ये जाति के मुसलमान थे। इनका जन्म 1664 ई. में और स्वर्गवास 1780 ई. में हुआ था। इनकी रचनाओं में आत्मशुद्धि पर बल दिया गया है। इनकी एक प्रसिद्ध कृति 'ज्ञानदीपक' है। ये निर्गुण भक्तिधारा के संतकवि थे। नाम-स्मरण के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना ही इनका मुख्य सिद्धांत और आध्यात्मिक लक्ष्य था। निम्नलिखित पंक्तियों से इनकी विचारधारा का संकेत मिल जाता है और साथ ही यह कबीर से भी प्रभावित थे-

भीतर मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है।

अवगति सुरति महल के भीतर, वाका पन्थ न जोवै है।

जुगति बिना कोई भेद न पावै,

साधु संगति का गोवै है।

कह दरिया कुटने बे गोदो, सीस पटकि का रोवै है।

5.6.2-जगजीवनदास:

जगजीवनदास संत दादूदयाल की शिष्य-परंपरा में आते हैं, लेकिन इन्होंने अपना एक भिन्न संप्रदाय चलाया था, जिसे 'सत्यनामी' (सतनामी) संप्रदाय कहते हैं। इनकी शिष्य परंपरा में आगे चल कर गोविंद साहब, भीखा साहब, पलटू साहब आदि संत हुए। जगजीवनदास का जन्म 1670 ई. में बाराबंकी जिले के सरदहा ग्राम में हुआ था। इनकी कृतियों भक्तिभावना के संतकवि होते हुए भी इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं सगुण भक्ति का पुर दिखायी पड़ता है। इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा तथा अवधी की शब्दावली का समन्वय स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

इनकी काव्यशैली का उदाहरण यह है –

ऐसे साई की मैं बलिहरिया री।

ए सखि संग रंग रस मातिउं देखि रहिउं अनुहरिया री।

गगन भवन मा मगन भइठं मैं, बिनु दीपक उंजियरिया री।

झलकि चमकि तहं रूप बिराजै, मिटी सकल अन्धियरिया री।

कहा कहाँ कहिबे की नाहीं, लागि जाहि मन पहियाँ री।

जगजीवन वह जोती निरमल, मोती हीरा बरियाँ री॥

5.6.3-पलटू साहब:-

पलटू साहब जाति के वैश्य थे। वे जगजीवनदास के परवर्ती संत हैं। इनकी रचनाएं प्रायः दोहा, कुंडलियां, झूलना, अरिल्ल आदि छंदों में मिलती हैं। भाषा में सरलता के साथ-साथ प्रभाव भी है। चमत्कारपूर्ण भाषा के लिए इनकी वाणी प्रसिद्धि पा चुकी थी। इनकी अन्योक्तियों में उत्कृष्ट आध्यात्मिक उद्बोधन मिलता है।

क्या तू सोवै बावरी चाला जात बसन्त।

चाला जात बसन्त कंत ना घर में आये।

धृग जीवन है तोर कंत बिनु दिवस गंवाये।

गर्व गुमानी नारि फिरै जोवन मदमाती।

खसम रहा है रूठि नहीं तू पठबै पाती।

लगै न तेरो चित्त कंत को नाहि मनावै।

का पर करै सिंगार फूल की सेज बिछावै।

पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिरि पछितैहै अन्त।

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत॥

5.6.4- चरनदास-

संत चरनदास (1703-1782) अलवर के पास मेवात क्षेत्र के निवासी थे। इनके बावन शिष्य थे, जो बड़े पंडित इनके द्वारा प्रवर्तित चरनदासी संप्रदाय' की की थी। कहा जाता है कि चरनदास के इक्कीस ग्रंथों की रचना की थी। इनमें योग, भक्ति और सदाचार पर विशेष बल है।

हिरदै मैं पावक जरै, हेली तपि नैना भये लाल।

आँसू पर आँसू गिरै, हेली यही हमारा हाल॥

प्रीतम बिन कल ना परै, हेली कलकल सब अकुलाहिं।

डिगी परूं सत ना रहो, हेली कब पिय पकरे बांहिं॥

गुरु सुकदेव दया करें, हेली मोहि मिलावै काल।

चरनदास दुःख सब भजें, हेली सदा रहूँ पति नाल॥

5.6.5-शिवनारायण-

शिवनारायण का जन्म बलिया जिले के चंदवार नामक स्थान में हुआ था। ये बाल्यकाल में ही विरक्त हो गये थे।इनके काव्य में परमात्मा से जीवात्मा का मिलन पति-पत्नी के मिलन की भांति रसमयी वाणी में भोजपुरी का प्रभाव है।

फूल एक फूलेला बलम जी के देसवा सतगुरु दीहले लखाय हो।

नैन सनेहिया सोइ फुल निरखत मन मोरा रहले लोभाय हो।

नयन कंवल जल तीनों सुहावन भौरा गुंजेला तेहि बीच हो।

वाके डार पात नहिं साखा नहीं कांदों नहिं कीच हो॥

5.6.6-तुलसी साहब

तुलसी साहब का कुल-नाम श्यामराव था। ये दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे और पूना के युवराज थे। ये पेशवा बाजीराव के बड़े भाई थे। इनके चार ग्रंथ मिलते हैं। घटरामायण, रत्नसागर, शब्दावली, पद्मसार (अपूर्ण) इनकी कविताओं में संतमत, दर्शन, वैराग्य, साधना आदि से संबद्ध उपदेश भरे हर 'घटरामायण' शीर्षक कृति में इन्होंने माया के संबंध में यह भाव व्यक्त किया है:

नर से निकसी इक नारी, कोई बूझै साधु बिचारी।

हाथ न पाँव सीस नहिं काया, खाया सब जग झारी ॥

माई न बाप आपसे उपजी, करी खसम की ख्वारी।

बारी न बूढ़ि तरुन तन नाहीं, सोवत सब जग मारी ॥

आवै न जाय मरै ना जीवै, जुग जुग रहनि करारी।

ऋषी मुनी सब झारि बिगारे सब जग त्राहि पुकारी॥

सत्रहवीं शती के एक अन्य प्रसिद्ध संत प्राणनाथ (1618-1694) हैं। इनका जन्म जागनगर (काठियावाड़) में हुआ था, किंतु अधिकांश जीवन बुंदेलखंड में व्यतीत हुआ। ये उच्च कोटि के साधक और संत थे। उन्हीं के शब्दों में-

चन्द विन रजनी, सरोज बिन सरवर,

तेज बिन तुरंग, मतंग बिन मंद को।

बिन सुत सदन, नितम्बिनी सुपति बिन,

धन बिन धरम, नृपति बिन पद को॥

बिन हरि भजन जगत साहै जग कौन,

नौन बिनु भोजन, बिटप बिना छद को।

प्राणनाथ सरस सभा न सोहै कवि बिन,

विद्या बिना बात, न नगर बिना नद को॥

इसके अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी के अंत में संत प्राणनाथ, बाबा धरणीदास ने प्रेमप्रगास, रत्नावली, बूला साहब, अठारहवीं शताब्दी दयाबाई, सहजोबाई, उन्नसवीं शताब्दी में स्वामी शिवदयाल आदि कवियों का उल्लेख है।

सूफी-काव्य अथवा प्रेमाख्यान-काव्य

यद्यपि हिंदी में प्रेमाख्यानों की सूफी-काव्यधारा का पूर्ण उत्कर्ष भक्तिकाल में लक्षित होता है। इस काल में दो प्रकार के प्रेमाख्यान काव्य पाये जाते हैं। पहली श्रेणी में कासिम शाह, नूर मुहम्मद, हुसेन अली 'सदानन्द', सूरदास और दुखहरन दास की गणना की जाती है। प्रेमाख्यानक काव्यों में कुछ तो लोक प्रचलित प्रेमाख्यानों पर आधारित हैं और कुछ पौराणिक प्रेमाख्यानकों पर। इन सभी प्रेमाख्यानों पर सूफियों की 'प्रेम की पीर' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

5.6.7-कासिमशाह

इनका जन्म बाराबंकी ज़िले के दरियाबाद नगर में श्री इमानुल्लाह के यहाँ हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समकालीन थे। जिस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी के प्रेमकाव्य 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमकथा है, उसी प्रकार कासिमशाह के 'हंस-जवाहर' (1736) काव्य में शहजादा हंस और शहजादी जवाहर की प्रेमकहानी है। जवाहर स्वप्न में हंस को देखती है और जागने पर अपनी विरह-व्यथा को व्यक्त करती है-

कहं गइ रैनि सुहावनी, भोर भयो केहि काज।

मैं पापिन कस जागहूँ, बिछुड़ि गयो सरताज।

भा अति सोइ बिरह धुनि केरी।

निरखे रूप मिले नहिं हेरी। पिय आपुहि माँ अहै समाना। ओहट भयो आग दै प्राना।

सपने कंठ कन्त के लागी। बाउर भई सोय जब जागी।

5.6.8- नूर मुहम्मद:

नूर मुहम्मद 'इंद्रावती' और 'अनुराग बांसुरी' (1764) की रचना की। नूर मुहम्मद अवधी भाषा के तो ज्ञाता थे ही फ़ारसी के अच्छे आलिम भी थे। हैं। उनकी 'अनुराग बाँसुरी' में भक्ति के पद इस प्रकार है-

जानत है वह सिरजन हारा।

जो किछु है मरम हमारा॥

हिन्दू मग पर पाँव न राखे।

का जौ बहुतै हिंदी भाखेउँ ॥

मन इसलाम मिस्किलै मौजेउँ।

दीन जेंवरी करकस भौजेउँ।।

5.6.9- शेख निसार

शेख निसार का वास्तविक नाम गुलाम अशरफ था। इन्होंने 'यूसुफ जुलेखा' (1790) की रचना की थी। शेख निसार ने मसनवी शैली में लिखित काव्य 'यूसुफ-जुलेखा' में लिखित पंक्ति-

दिन भर मौन गहे रहै, भूख प्यास गई भूल। पान खाइ न रस पियै, कांट भये बस फूल ॥

भूषन रतन उतारि जो डारा। दुखदायक भई सधै सिंगारा। मन महं सोच करै मुरझाई। लैगा प्रान सरूप देखाई। नाउं ठाउं कछु जानौ नाहीं। कहां सो खोज करौं जग माहीं।

इन लोगों नै बाह्याडंबर का विरोध करते हुए भी पूजा का अपना निजी विधान बनाया और. अपने-अपने संप्रदाय की प्रतिष्ठा में संलग्न हो गये। कबीर, नानक, दादू आदि इतिहास के बदलाव के लिए आवश्यक थे। केवल गुरु गोविंदसिंह ऐसे संत थे जिन्होंने समय को पहचाना और उनका प्रभाव भी पड़ा।

गुरु गोविन्दसिंह (1666-1708): गुरु गोविन्दसिंह गुरु तेग बहादुर के पुत्र थे। ये शस्त्र और शास्त्र दोनों में समान रूप से निपुण थे। इन्होंने 'चंडी चरित्र' के साथ 'गोविंद रामायण' भी लिखी। इनकी रचना से इनकी विचारधारा पर प्रकाश पड़ता है-

कोऊ भयो मुडिया संन्यासी, कोऊ जोगी भयो, कोऊ ब्रह्मचारी, कोऊ जतियन मानबो ।

हिन्दू तुरक कोऊ राफजी, इमाम साफी।

मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।।

करता करीम सोई राजक रहीम ओई

दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानवो।

एक ही की सेब सबही को गुरुदेव एक

एक ही सरूप सबै, एकै जोत जानबो ।।

5.7- सारांश

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के अंतगर्त नीति एवं भक्ति कविता पर दोहे व पद में रचनायें होती रहीं। कवि बिहारी के सभी दोहे मर्मस्पर्शी है। भक्तिकाल की कविता में सगुण व निर्गुण काव्य दोनों लिखे गये, पर इन काव्यों पर भी सामंती विलास और रीति-श्रृंगार का स्पष्ट प्रभाव है। यह उल्लेखनीय है कि जहां भक्तिकाल में तुलसी और रहीम के दोहों में भक्ति और गति दोनों को स्थान प्राप्त हुआ, वहीं रीतिकालीन नीतिकाव्य शुद्ध नीति की व्याख्या के लिए ही लिखा गया। नीतिकाव्य नैतिकता और चरित्रनिर्माण का मार्ग प्रस्तुत करता है, किंतु सरसता तथा मार्मिक भावुकता की दृष्टि से नीतिकाव्य बहुत उत्कृष्ट सिद्ध नहीं हुआ।

5.8- बोधात्मक प्रश्न-उत्तर

1-"नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहीं विकास इही काल" पंक्ति किसकी है।

अ- गिरिधर

ब-वृंद

स- कविराय

द- बिहारी

उत्तर- 1- द

2-'वृंद-सतसई' किसकी रचना है।

अ- बैताल

ब-वृंद

स- सम्मन

द- बिहारी

उत्तर- 2 – ब

2- कवि बैताल की रचना बताइएं-

अ -विक्रम

ब –ककहरा

स –राम सतसई

द –नीतिशतक

उत्तर- 3 – अ

4- 'जानत है वह सिरजन हारा,जो किछु है मरम हमारा' पंक्ति है।

अ- कासिमशाह

ब -शेख निसार

स-नूर मुहम्मद

द-सूरदास

उत्तर- 4 – स

5.9- निबन्धात्मक प्रश्न

1- नीति कविता का परिचय दीजिए ?

2- भक्ति कविता का परिचय दीजिए ?

5.10- संदर्भ ग्रंथ सूची

1-बिहारी रत्नाकर- श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली

2- बिहारी-सतसई –डॉ नेमिचंद जैन,विश्व भारती पब्लिकेश,नयी दिल्ली

3-रीति काव्यधारा-डॉ पूरन चंद टण्डन, स्वराज प्रकाशन ,दिल्ली

5.11- सहायक ग्रंथ सूची

1-हिन्दी साहित्य का इतिहास –डॉ सुधीन्द्र कुमार,नवलोक प्रकाशन भजनपुर दिल्ली, प्रथम संस्करण,2006

2-हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास –डॉ बच्चन सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली , प्रथम संस्करण, 1996, संशोधित संस्करण 2006

3-हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

4-हिन्दी साहित्य का इतिहास –डॉ नगेंद्र, डॉ हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस अंसारी रोड दरियागंज, प्रथम संस्करण,1973, दूसरा 1991,तीसरा 2009, पुनर्मुद्रण संस्करण 2013-2014

इकाई – 6 रीतिकाल : नए परिपेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 रीतिकाल और हिंदी आलोचना

6.3.1 आरम्भ

6.3.2 विकास एवं स्थापना

6.3.3. स्थापना का विकास

6.4. रीतिकाल : नया परिप्रेक्ष्य

6.4.1 हिंदी आलोचना के कुछ स्वर भिन्न

6.4.2 हिंदी का 'सार्वजनिक क्षेत्र'

6.4.3. हिंदी और 'स्त्री विमर्श'

6.5 रीतिकालीन कविता की आलोचना के नए परिप्रेक्ष्य

6.6. सारांश

6.7. शब्दावली

6.8. संदर्भ ग्रंथ

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

रीतिकाल के अध्ययन के क्रम में अब तक विद्यार्थियों ने रीतिकाल के उद्भव एवं विकास का क्रम से अध्ययन किया है, आपने यह भली-भांति जान लिया है कि रीतिकाल किसे कहते है, रीतिकाल का उद्भव एव विकास कैसे हुआ, रीतिकाल की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां क्या थीं। अब तक की इकाईयों में आपने रीतिकालीन कविता का स्पष्ट अध्ययन कर लिया है। साथ ही हिंदी आलोचना परम्परा ने रीतिकालीन युग एवं उस युग की कविता का जो साहित्यिक आंकलन किया था वह भी आप जान चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में रीतिकाल एवं उसकी कविता की हिंदी आलोचकों द्वारा की गई आलोचना की सीमाओं को जानते हुए सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक एवं साहित्यिक युग-परिवर्तन के कारण, रीतिकालीन कविता के नए मूल्यांकनों का भी संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

हिंदी आलोचना की जो परम्परा जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन से प्रारंभ होती है, उसको भारतीय संदर्भों में पुष्पित और पल्लवित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना का स्पष्ट ढांचा स्थापित किया था। आज आचार्य शुक्ल कि कई स्थापनाएं समय के साथ अप्रासंगिक लगती हैं और पुनर्समीक्षा की मांग करती प्रतीत होती हैं। रीतिकालीन कविता की आचार्य शुक्ल और कई अन्य स्थापित हिन्दी आलोचकों द्वारा की गई आलोचना भी पुनर्लेखन की मांग करती है। प्रस्तुत इकाई विद्यार्थियों का ध्यान इसी तरह के नए परिप्रेक्ष्य की ओर खीचने का प्रयास करती है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- रीतिकालीन कविता की हिंदी आलोचना द्वारा प्रस्तुत साहित्यिक व्याख्या को समझ सकेंगे।
- रीतिकालीन कविता को 'स्त्री-विमर्श' और 'सार्वजनिक क्षेत्र' (Public Sphere) के संदर्भ में समझ सकेंगे।
- रीतिकालीन कविता के एक नवीन और उत्तर-आधुनिक आयाम को समझ सकेंगे।

6.3 रीतिकाल और हिंदी आलोचना

हिंदी साहित्य के इतिहास की एक लम्बी परम्परा है। जैसा कि संसार भर की सभी साहित्यिक परम्परा में होता है कि उसका एक अपना ऐतिहासिक उद्भव एवं विकास क्रम होता है ठीक वैसे ही हिंदी साहित्य की इतिहास लेखन एवं हिंदी आलोचना की भी एक अपनी परम्परा है। जिस किसी भी भाषा, साहित्य या साहित्यिक प्रवृत्ति का इतिहास लिखा जाना अथवा उसकी साहित्यिक आलोचना का लिखा जाना प्रारम्भ होता है उस प्राम्भिक अवस्था का प्रभाव बहुत बाद तक भी बना रहता है। समय के बहाव के साथ साहित्य संस्कृति, इतिहास से सम्बंधित मानसिकता में थोड़ा या बहुत अधिक परिवर्तन होता जाता है। यह एक सहज प्रवृत्ति है। इसी तरह हिंदी साहित्य के इतिहास, उसके विभिन्न कालों की प्रवृत्तियों, प्रमुख ग्रंथो, प्रमुख कवियों, रचनाकारों के अध्ययन एवं उनकी आलोचना का भी अपना एक क्रमिक इतिहास रहा है। परन्तु धीरे-धीरे नवीन शोधों, साहित्यिक प्रवृत्तियों, राजनीति, अर्थनीति, समाज एवं मनोगत विचारधाराओं में परिवर्तन के साथ पहले से चली आ रही इतिहास एवं आलोचनात्मक प्रवृत्ति में समुचित परिवर्तन होता रहा है। जैसे-जैसे समय बदलता जाता है पुरानी साहित्यिक प्रवृतियों, विचार सरणियों, काल विभाजन एवं काल नामों को नवीन तथ्यों एवं नवीन मानसिकता के कारण परिवर्तित होते देखा गया है। हिंदी साहित्य के संदर्भ में यदि देखा जाए तो उसके सभी कालों - आदिकाल, रीतिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल की अनेक प्रवृत्तियों पर यथायोग्य नवीन से नवीन विचार व्यक्त किए

गए हैं। अतः सभी अध्ययनकर्ताओं का यह कर्तव्य है कि इन नए शोधों के आधार पर सम्पूर्ण साहित्यिक परपरा का नवीन अध्ययन किया जाए। प्रस्तुत इकाई भी हिन्दी की रीतिकालीन कविता को इधर हाल के बीते दशकों में हुए नवीन शोधों और अध्ययन के आधार पर देखने और समझने का प्रयास करेगी।

6.3.1 आरम्भ

हिंदी साहित्यके संदर्भ में एक खास अलिखित नियमावली को सभी शोधकर्ता, अध्यापक एवं छात्र महसूस करते ही हैं। वो प्रवृत्ति यह है कि हिंदी क्षेत्र में सार्वजनिक रूप से सर्वाधिक प्रतिष्ठित आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल हिंदी विषय के किसी भी अंग की आलोचना के लिए सदैव ही प्रतिमान की तरह रहे हैं। यह प्रवृत्ति कभी बेहद सकारात्मक होते हुए भी नवीन विचार एवं शोध के लिए बाधक भी सिद्ध हुई है। **हिंदी साहित्य की इतिहास परम्परा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1888-1941) का लिखा हुआ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) अपनी अभूतपूर्व सफलता एवं मूल्यवत्ता के साथ एवं प्रतिमान के रूप में स्थापित है।** आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल के उद्भव एवं विकास, नामकरण एवं काल-विभाजन, प्रवृत्ति एवं प्रमुख कवि इन सब प्रश्नों पर विचार करने वाला प्रत्येक व्यक्ति आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। छोटे-बड़े कई तरह के बदलावों के बाद भी आरम्भ से लेकर वर्तमान तक के हिंदी अध्येताओं, अध्यापकों एवं छात्रों / शोधछात्रों की मूल मानसिकता का आधार आचार्य शुक्ल का 'इतिहास' ही रहा आया है।

ऐसा नहीं है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा स्थापित मान्यताओं पर आज तक परिवर्तन नहीं हुए है परन्तु फिर भी अपनी कई-कई मान्यताओं के साथ सम्पूर्ण हिंदी साहित्य के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में आचार्य शुक्ल अभी भी स्थापित प्रतिमान की तरह पढ़े और समझे जाते हैं। प्रस्तुत इकाई का संबंध हिंदी साहित्य के बहुत महत्वपूर्ण काल 'रीतिकाल' से है, अत: सबसे पहले हम हिंदी आलोचना एवं रीतिकाल के अन्तर्सम्बन्ध को देखने का प्रयल करेंगे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल से पूर्व प्रतिष्ठित प्राच्यविद्याविद् **सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941)** का नाम सामने आता है। जिनका लिखा हुआ **'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1889)** हिंदी साहित्य का प्रथम एवं संक्षिप्त रूप से व्यवस्थित इतिहास माना जाता है। विद्यार्थी ध्यान देंगे कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल से पूर्व हिंदी साहित्य के इतिहास संबंधी संकलन की भी एक परम्परा थी, **जिसमें 'गार्सा द तासी (1794-1878) लिखित ' 'इस्त्वार द ल लिग्रेरेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' (1837 प्रथम भाग) 'मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ फैलन द्वारा लिखित 'तबकातुश्शुअरा' (1848) एवं 'शिवसिंह सेंग'र (1833-1878) द्वारा लिखित 'शिव सिंह सरोज' (1878) तथा 'मिश्रबंधुओं' का लिखा हुआ 'मिश्रबंधु विनोद'(1913) का नाम शामिल है। परन्तु ये सभी मात्र 'तिथि एवं नाम संकलन' के ग्रंथ थे, इतिहास ग्रंथ नहीं।**

अपने इतिहास ग्रंथ में 'ग्रियर्सन' ने ही सर्वप्रथम न केवल भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल की अवधारणा की स्थापना प्रस्तुत की बल्कि उस साहित्यिक प्रवृत्ति का भी पहला उल्लेख किया जिसका विकास तीन दशक बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया। हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रवृत्ति के आधार पर काल विभाजन एवं नामकरण का कार्य सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने ही प्रस्तुत किया था। इस क्रम में उन्होंने भक्तिकाल के बाद के काल को सर्वप्रथम **'रीतिकाल'** कहा तथा उसे **केशवदास द्वारा स्थापित कवियों के रीति सम्प्रदाय** के रूप में प्रस्तुत किया। विस्तार के लिये विद्यार्थी ग्रियर्सन के ग्रंथ के हिंदी अनुवाद जिसका नाम **'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास'** को देख सकते हैं। इस ग्रंथ का अनुवाद **किशोरीलाल गुप्त** ने किया है, जिसका प्रकाशन **'हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी'** से 1957 में हुआ है।

6.3.2 विकास एवं स्थापना

ग्रियर्सन के इसी साहित्यिक विवेचन को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बेहद स्पष्ट और सुगठित भाषा एवं विचार विन्यास के साथ न केवल पुष्पित पल्लवित किया बल्कि लगभग एक शताब्दी तक अमर बना दिया। अपने इतिहास में **रीतिकाल: प्रकरण - 1 सामान्य परिचय** में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "रीतिग्रंथों की इस परम्परा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिंत्य बातों तथा जगत के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया।'

इससे भी आगे आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति की एक सीमा को उस युग की एकमात्र प्रवृत्ति सा बताते हुए रीतिकालीन कविता की आलोचना का लगभग भविष्य ही तय कर दिया उन्होंने लिखा, "**वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हें दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल की इस के विचार कोई श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है।श्रृंगार के वर्णन की बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था**"। रीतिकालीन कविता की इसी प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने कर्महीनता और जनता की कुरुचि से भी जोड़ा। आगे जा कर आचार्य शुक्ल का यही विवेचन हिंदी आलोचना का स्थापित प्रतिमान बन गया। रीतिकालीन कविता को हेय दृष्टि से देखने वाले आलोचक तो आचार्य शुक्ल के विवेचन का हथियार की तरह प्रयोग करते ही रहे साथ ही रीतिकालीन कविता को संवेदना और सहृदयता के साथ देखने वाले आलोचक (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं डॉ नगेन्द्र) तक आचार्य शुक्ल के स्थापित प्रतिमानों की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाए। इसी क्रम में इनके बाद की पीढ़ी के लगभग हर प्रतिष्ठित आलोचक ने आचार्य शुक्ल के विवेचन को ही अपना वैचारिक समर्थन दिया।

6.3.3 स्थापना का विकास

आचार्य शुक्ल से पूर्व एक और प्रतिष्ठित आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) ने भी आचार्य शुक्ल को रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति पर मूल- आघात करने के लिए पृष्ठभूमि प्रदान की। सन् 1903 में लिखे अपने निबंध में, आचार्य द्विवेदी लिखा "**नायिका भेद और रस तथा अलंकार के विवेचन से पूरितपुस्तकों की भी इस वक्त आवश्कता नहीं**"। अपने एक और निबंध "**नायिका भेद**" में वे लिखते हैं, कि "**10 वर्ष का अज्ञात यौवना से लेकर 50 वर्ष की प्रौढ़ा तक के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बताकर और उनके हावभाव विलास आदि की सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सतोष नहीं करते थे। दुराचार में सुकरता होने के लिए दूती कैसी होनी चाहिए। मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि में से इस काम के लिए कौन अधिक प्रवीण होती है, इन बातों का भी वे (कवि) निर्णय करते थे**"। रीतिकालीन कविता को लेकर हिंदी में आरम्भिक शीर्ष आलोचकों/ सम्पादकों की यह मानसिकता कोरी हठधर्मिता नहीं थी, वास्तव में रीतिकालीन कविता में अति श्रांगारिकता की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित की जा सकती है, परन्तु किसी भी 200 साल के लम्बे कालखण्ड में किसी बड़े जातीय फलक के भीतर सैकड़ों पुरुष एवं स्त्रियों द्वारा रची गई कविताधारा को मात्र उसकी प्रमुख काव्य प्रवृत्ति के आधार पर व्याख्यायित करते चले जाना बहुत सकारात्मक आलोचनात्मक प्रवृत्ति नहीं मानी जा सकती।

कहना न होगा कि ग्रियर्सन से आंरभ होकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से समर्थित एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे समर्थ आलोचक से संबंधित यह एकांगी आलोचना दृष्टि हिंदी आलोचना परम्परा का मुख्य स्वर बनी ही रही। डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचक जो प्रथम मूलतः रीतिकालीन कविता के समर्थक रहे थे वे भी हिंदी आलोचना परम्परा की इस एकांगी प्रवृत्ति से अछूते नहीं रहे। डा. रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे सक्षम परवर्ती आलोचकों ने भी रीतिकालीन कविता की इसी जड़वादी आलोचना-परम्परा को ने केवल जस का तस बने रहने दिया बल्कि उसका एकांगी विकास ही किया (यदि विद्यार्थी चाहे तो वे खोज कर '**डॉ रामविलास शर्मा' की पुस्तक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' (1955) का 'दरबारी काव्य परम्परा' नामक अध्याय** का पाठ कर सकते हैं।

6.4 रीतिकाल : नया परिप्रेक्ष्य

किसी भी समाज की यह प्रवृत्ति होती है कि वो स्वयं की एक मुख्य प्रवृत्ति का उद्भव एवं विकास करता है। यह मुख्य प्रवृत्ति भी अपनी आंतरिक क्षमता के आधार पर स्वयं का निरंतर विकास करती है। समाज की मुख्य धारा, इसी प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर स्वयं परिमार्जन करती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि इस मुख्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त समाज में अन्तर्निहित कुछ अन्य गौण (छोटी) प्रवृत्तियां नहीं होती, एक जीवित और निरंतर विकासमान समाज के भीतर जाति, वर्ग, लिंग और व्यक्तिगत अस्मिता के आधार पर कई गौण प्रवृत्तियां पाई ही जाती है जो कि देश, काल, परिस्थिति के आधार पर अपना परिमार्जन, विचलन एवं विकास करती रहती हैं। कुछ संदर्भों में यह सिद्धान्त साहित्य पर भी लागू होता है।

रीतिकाल कविता के नए परिप्रेक्ष्य पर बात करते हुए हम उक्त कविता की इन्हीं गौण प्रवृत्तियों की आलोचनात्मक परख को खोजने का प्रयत्न करेंगे।

6.4.1 हिंदी आलोचना के कुछ भिन्न स्वर

इकाई के इस भाग में अब हम हिंदी आलोचना परम्परा की कुछ गौण प्रवृतियों का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

जैसा कि विद्यार्थी ने अभी तक जाना कि सामाजिक प्रवृत्ति की तरह साहित्य में भी मुख्य धारा के अतिरिक्त एकाधिक (एक से ज्यादा) गौण (अन्य या सहायक या छोटी) धाराएँ भी अपने-अपने स्तर पर चलती रहती हैं। रीतिकालीन कविता की हिंदी आलोचना परम्परा द्वारा तय की गई मुख्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ गौण धाराएं भी लक्षित की जा सकती हैं। इन्हीं गौण धाराओं को हमने '**हिंदी आलोचना के कुछ भिन्न स्वर**' का नाम दिया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल से पूर्व हिंदो साहित्य के इतिहास में **मिश्रबंधुओं** का नाम शामिल है। **श्री गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र (1873-1947) एवं शुकदेव बिहारी मिश्र (1878-1951)** इन तीन भाईयों को संयुक्त रूप से **'मिश्रबंधु'** के नाम से जाना जाता है। इन्हीं मिश्रबंधुओं ने **सन् 1900 में नागरी प्रचारिणी सभा** द्वारा संचालित 'हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज परियोजना' के आधार पर **सन् 1913 में तीन खण्डों में 'मिश्रबंधु विनोद'** नामक एक विशाल ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में उन्होंने रीतिकाल को **'अंलकृत काल'** जैसी सकारात्मक संज्ञा से चिन्हित किया है। **'हिंदी नवरत्न' एवं 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'** नामक अपने ग्रथों में मिश्रबंधुओं ने रीतिकालीन कविता को निरंतर एवं स्पष्ट रूप से उच्च स्तरीय काव्य प्रकृति के रूप में ही रेखांकित किया है।

इसी क्रम में **लाला भगवान दीन(1866-1930)**, **जगन्नाथ दास रत्नाकर (1866-1932)**, और **श्री पद्म सिंह शर्मा (1876 – 1932)** की रीतिकालीन सम्बधी पुस्तकों को देखकर भी विद्यार्थी हिंदी आलोचना की रीतिकाल सम्बंधी अवधारणा की इस गौण धारा को पहचान सकते हैं। यहाँ यह कह देना भी सही होगा कि रीतिकालीन कविता के समर्थक इन आचार्यों की आलोचना भले ही आधुनिक युग की साहित्य आलोचना के समक्ष थोड़ी निस्तेज होकर भी रीतिकालीन कविता के काव्य सौंदर्य को विश्लेषित करने के कारण अपना स्वयं का महत्त्व रखती है।

इन्हीं के साथ हिंदी साहित्य के एक सुप्रतिष्ठित रचनाकार **पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865-1947)** का नाम भी लिया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के पश्चात् कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों ने भी हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास किया। इनमें **बाबू श्याम सुन्दर दास (1875-1945)** लिखित **'हिंदी भाषा और साहित्य' (1930)** तथा पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखित **'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' (1934)** विशेष उल्लेखनीय है।

हिंदी आलोचना की मुख्य धारा से अलग होकर अपने इतिहास ग्रंथ में प. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' रीतिकालीन कविता को सम्मान और प्रोत्साहन के भाव से देखते हैं। मध्यकाल के अंतिम भाग को आचार्य शुक्ल ने 'रीतिकाल' के नाम से अंकित किया था उसे 'उत्तर-काल' नाम से रेखांकित करते हुए 'हरीऔध' लिखते हैं , "**उस समय ब्रजभाषा श्रृंगार कितना उत्तम और मनमोहक**

हुआ और किस प्रकार ब्रजभाषा सुंदर और ललित पदों का भंडार बन गई। जिन-जिन सुकवियों और महाकवियों की रचनाओं ने ब्रजभाषा में उस समय कल्पना राज्य का विस्तार किया था उनमें से कुछ विशिष्ट नाम ये हैं :-

1. सेनापति 2. बिहारी लाल 3. चिंतामणि 4. मतिराम5. कुलपति मि श्र6. जसवंतसिंह7. बनवारी 8. गोपाल चंद्र मिश्र 9. बेनी और 10. सुखदेव मिश्र"।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक तरफ हिंदी आलोचकों का एक समर्थ समूह जहां रीतिकालीन कविता को काव्य की लगभग 'क्षयी(बीमार,विकृत) और कुण्ठित' प्रवृत्ति की उपज मान रहा था वहीं हिंदी आलाचकों का एक गौण समूह उसी रीतिकालीन ऊँचे स्तर की कविता धारा मानने का प्रबल पक्षपाती था।

6.4.1हिंदी का सार्वजनिक क्षेत्र

यूरोपीय समाज का अध्ययन करते हुए जर्मन दार्शनिक **(Jurgen Habermas) जुर्गेन हैबरमास (जं-1929) पब्लिक स्पेयर (Public Sphere)** का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। हिंदी में पब्लिक स्पेयर के लिए अध्ययन कर्ताओं ने **'सार्वजनिक क्षेत्र'** और **'लोकवृत्त'** जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। **हैबरमास ने 1962 में The Structural Tarts formation of the Public Sphere** नामक अपनी पुस्तक में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। हैबरमास का कहना है कि पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, शिक्षण संस्थानों और लोक तांत्रिक सामाजिक संगठनों के माध्यम से आधुनिक समाज अपने सभी घटकों के मध्य सार्वजनिक विचार-विमर्श के माध्यम से एक - सर्वसामान्य सार्वजनिक राय का विकास करता है। कहना न होगा कि यह सार्वजनिक राय जनता के पक्ष में सकारात्मक रूप से सभी आंतरिक इकाईयों के विकास के लिए होती है और उस समय की सत्ता चाहे वो लोकतान्त्रिक हो या अधिनायकवादी के जनविरोधी कार्यों की आलोचना करती है। हैबरमास के इसी सिद्धान्त के आधार पर **फ्रेंचेस्का ओरसेनी** में 'The Hindi Public Sphere 1920-1940 नाम पुस्तक का लेखन किया। इस पुस्तक का प्रकाशन अंग्रेजी में सन् 2002 में नीलाभ द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद सन 2011 में प्रकाशित हुआ।

इस पुस्तक में हिंदी प्रदेश के भीतर क्रमशः, विकसित होते हुए सार्वजनिक संसार के विकास क्रम का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यदि प्रस्तुत इकाई की विषयवस्तु को ध्यान में रखा जाए तो कहना न होगा कि रीतिकालीन कविता के हिंदी आलोचना की मुख्य धारा के किए गए एकांगी अध्ययन के बाद नए विचारकों/आलोचकों ने रीतिकालीन कविता के लिए नए पाठ का आरम्भ किया। उसमें उपस्थित रीतिकालीन स्त्री की छवि को खोजने और पाठकों/अध्ययनकर्ताओं के सामने प्रस्तुत करने में हिंदी के क्रमशः विकसित होते हुए 'सार्वजनिक क्षेत्र' की महत्वपूर्ण भूमिका है। **हिंदी क्षेत्र में क्रमशः विकसित होते हुए 'सार्वजनिक क्षेत्र'(Public Sphere) ने हिंदी समाज के उन वर्गों को जो समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी (अभिजातीय घटक की एकपक्षीय और पक्षपातपूर्ण दृष्टि के चलते हाशिए पर रखे गए थे) अपनी महत्ता और अस्मिता को पहचानने एवं सबसे सामने रखने का अवसर प्राप्त हुआ। आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़े, जातीय विभाजन में पीछे माने गए तबको, दलित वर्ग, आदिवासी अथवा मूल जन तथा स्त्रियां इसी हाशियागत वर्ग में मानी गई है।**

'रीतिकालीन कविता' की नई अवधारणा को प्रस्तुत करने वाली नई आलोचना दृष्टि ने रीतिकालीन कविता में स्त्री की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपस्थिति को ही अपनी आलोचना का सबसे ताकतवर आधार बनाया है। आधुनिक विचारकों/ आलोचकों द्वारा रीतिकालीन कविता में स्त्री की महत्वपूर्ण स्थिति को रेखांकित करना हिंदी के क्रमशः विकसित होते 'सार्वजनिक क्षेत्र' के कारण ही संभव हुआ है। यहाँ विद्यार्थियों का यह जानना भी बहुत आवश्यक है कि रीतिकालीन कविता का यह नया परिप्रेक्ष्य अपनी स्वयं की एक सीमा रखता है जिसे जानने के लिए आपको इधर की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का विस्तृत अध्ययन करना होगा। इस पुस्तकों की जानकारी आपको इकाई के भीतर ही प्रदान की जाएगी

6.4.2. हिंदी साहित्य और 'स्त्री विमर्श'

हिंदी साहित्य और 'स्त्री विमर्श' के इस छोटे से परिचयात्मक अंश को लिखने का कारण मात्र यह है कि विद्यार्थी हिंदी के सार्वजनिक संसार के बदलते हुए मिजाज को जान सके। तथा रीतिकालीन हिंदी कविता की आलोचना के नए परिप्रेक्ष्य को समझने से पहले यह समझे कि यह परिप्रेक्ष्य आखिर किस दबाव में बदला।

किसी भी सार्वजनकि क्षेत्र में 'स्त्री' बहुत महत्त्वपूर्ण घटक है। बिना स्त्री के किसी भी पुरा-प्रचीन, आधुनिक या उत्तर आधुनिक यूरोपीय, अमेरिकी या एशियाई किसी भी तरह का समान स्वयं का विकास नहीं कर सकता। कहना न होगा कि समाज के भौतिक विकास की ही तरह समाज के आंतरिक विकास भी स्त्री के बिना असंभव है। ठीक यही बात सामाजिक विमर्श पर भी लागू होती है। साहित्य उसी सामाजिक विमर्श में शामिल है। हिंदी साहित्य यह सकारात्मक पक्ष है कि उसमे अपने उद्भव काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री रचनाकारों की उपस्थिति रही है। संख्या के आधार पर कम होते हुए भी कलात्मकता या सृजनात्मकता के आधार पर स्त्री रचनाकारों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। परन्तु प्राचीन एवं नवीन आलोचकों ने सदैव ही इन स्त्री रचनाकारों को कम महत्त्वपूर्ण और दूसरे दर्ज का माना। विद्यार्थियों को यह जानना महत्त्वपूर्ण है हिन्दी के सार्वजनिक संसार के विकास के साथ-साथ हिंदी में स्त्री की मानसिकता, उसके तनाव, दबाव, उसकी समस्याएं , उसकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति, समाज में स्त्री की उपस्थिति जैसे विषयों पर निरंतर ध्यान आकर्षित हुआ। इसी नई मानसिकता को सामूहिक तौर पर **'स्त्री विमर्श'** कहा जाता है।

6.5 रीतिकालीन कविता की आलोचना के नवीन परिप्रेक्ष्य

जैसा कि अब तक पढ़ा कि हिंदी की मुख्यधारा वाली आलोचना ने रीतिकालीन कविता की आलोचना को लगभग एक पक्ष के आधार पर विश्लेषित किया। परन्तु फिर आपने यह भी जाना कि आधुनिक होते समाज की मानसिकता में बदलाव हुआ और हिंदी के क्रमश: विकसित हेाते समाज ने नए –नए विचारों और विमर्शों के कारण अपने साहित्य के विश्लेषण में धीरे-धीरे परिवर्तन किया। **इन्हीं परिवर्तनों के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास की रीतिकालीन कविता की आलोचना में भी एक नया पक्ष उभर कर आया जिसका सीधा संबंध हिंदी के लोकवृत्त /सार्वजनिक क्षेत्र में उभर रहे 'स्त्री विमर्श' से है।**

विद्यार्थी देख रहे होगें कि रीतिकालीन कविता के नए परिप्रेक्ष्य पर बात करते हुए प्रस्तुत इकाई बार-बार 'स्त्री विमर्श' पर आपका ध्यान आकर्षित कर रही है। आप जानना चाहेंगे कि ऐसा क्यों है ?ऐसा इसलिए है क्योंकि रीतिकालीन कविता के जिस नए परिप्रेक्ष्य की हम बात करे रहे हैं उसका संबंध ने केवल रीतिकालीन कविता में स्त्री की अत्यधिक उपस्थिति से है बल्कि मध्यकाल में विशेषकर उत्तर मध्यकाल में स्त्री रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति से भी है।

कुछ उदाहरणों से विद्यार्थियों के समक्ष स्थिति स्पष्ट हो जाएगी, क्योंकि वर्तमान समय में स्त्री अध्ययन और हिंदी साहित्य के अलग अलग काल खण्डों में 'स्त्री तत्व' की उपस्थिति तथा साथ ही स्त्री रचनाकारों की उपस्थिति पर बहुर ढेर सामग्री (शोध लेख/पुस्तकें) उपलब्ध हैं। अत: हम विद्यार्थियों की सुविधानुसार कुछ का उल्लेख कर रहे हैं।

सन् 2003 में सुमन राजे की पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास', सन् 2011 में एलिसन बुश (Allison Busch) की पुस्तक Poetry of Kings, सन् 2011 में जगदीश्वर चतुर्वेदी और सुधा सिंह की पुस्तक 'स्त्री –काव्यधारा तथा सन् 2013 मं प्रकाशित सुधीश पचौरी की पुस्तक 'रीतिकाल: सेक्सुअलिटी का समारोह' उन कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में है जो हिंदी साहित्य के भीतर व्याप्त एकांगी मानसिकता के खिलाफ एक दूसरा पक्ष प्रस्तुत करती हैं तथा पाठकों के सामने (विद्यार्थियों के सामने भी) हिंदी साहित्य के अंतर्गत रीतिकालीन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष भी उद्घाटित करती है।

यदि विद्यार्थियों के लिए केवल रीतिकालीन कविता के नए परिप्रेक्ष्य को समझाना है तो कहना न होगा कि 'स्त्री काव्य धारा' और 'रीतिकाल: सेक्सुअलिटी का समारोह' बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। **मध्यकालीन कवि रचनाकारों की आंतरिक प्रवृत्ति को विश्लेषित करते हुए 'स्त्री काव्यधारा' के सम्पादक लिखते हैं कि मध्यकालीन स्त्री रचनाकार ऐसी है 'जो वस्तुओं के मोह से मुक्त है। उसे राम**

आकर्षित करते हैं। कृष्ण आकर्षित करते हैं। गोपियाँ आकर्षित करती हैं। कुंज, घाट, मंदिर आदि आकर्षित करते हैं। यह मूलतः परिवार के बाहर की जिंदगी है, जो उसे आनंदित करती है, सृजनात्मक बनाती है।मध्यकालीन कवयित्रियाँ अपने घर नहीं लौटतीं।' (स्त्रीकाव्य धारा, पृष्ठ – 11) विद्यार्थी देखेंगे कि हिंदी आलोचना की मुख्य धारा से अलग उपर उद्धत पक्तिंयों में रीतिकालीन स्त्री रचनाकारों के एक नवीन परिप्रेक्ष्य को सामने रखा गया है।

इसी क्रम में श्री सुधीश पचौरी रीतिकालीन हिंदी कविता को बिल्कुल नया परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं। एक तरफ जहां पुराने आचार्य रीतिकालीन कविता में स्त्री की कामुक छवि और उन्मुक्त काम विलास की कविता से आक्रांत थे वहीं सुधीश पर्चारी उसी सेक्सुअलिटी को रीतिकालीन कविता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अनछुआ पहलु कह कर विश्लेषित करते हैं। **सुधीश रीतिकाल का एक नवीन नामकरण 'यौनता के निर्माण का काल' या 'यौन शिक्षा का काल' करते हैं।** सुधीश की इस किताब का विश्लेषण करते हुए हम देखते हैं कि इस किताब में सुधीश रीतिकालीन कविता के एक बिल्कुल नए संसार को उद्घाटित करते हैं। वे ऐसे सवालों को उठाते हैं जिनका संबंध रीतिकालीन कविता के मूल पाठ से है तथा वे रीतिकालीन काव्य के भीतर स्त्री के वस्तु के रूप में उपस्थिति तथा साथ ही रीतिकालीन स्त्री कवियों की रचनाओं के आधार पर रीतिकालीन कविता के इस एक नए परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं ।

हिंदी आलोचना की मुख्यधारा से एकदम अलग हटकर रीतिकालीन कविता के नए परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करते हुए सुधीश लिखते हैं कि "**हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के विमर्श के रूपों को पढ़ते हुए एक सवाल का उत्तर कभी नहीं मिलता। वह सवाल रीतिकाल में स्त्री देह और उसकी उत्कट यौनमूलकता की विकट उपस्थिति से संबंधित है। दरबारों में रानियों और वेश्याओं के साहित्यिक सांस्कृतिक शिक्षण-दीक्षण के हेतु बनाए इस पाठ्यक्रम –साहित्य को 'रीति साहित्य' का नाम दिया गया। इस समय की रचना में स्त्री की इस कदर उपस्थिति और दृश्यमानता ने इतिहास के सामने कुछ नए और तंग करने वाले सवाल तब नहीं खड़े किए, जब तक की स्त्रीवादी विमर्श की धमक हिंदी में नहीं आ गई"**।

सुधीश की पुस्तक की समीक्षा करते हुए आलोचक डॉ रामकुमार ने ठीक ही लिखा, '**आधुनिकता प्रसूत औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी विमर्श के चुंगल से बाहर आए बिना साहित्य कला संबंधी देशज भारतीय कला दृष्टि का अनुसंधान संभव नहीं है। कहना न होगा कि सुधीश पचौरी की यह पुस्तक रीतिकालीन श्रृंगारिक साहित्य के अध्ययन की दिशा में एक नया प्रस्थान रचती है'**। (प्रतिमान – 10, पृष्ठ 206)

प्रस्तुत कुछ एक उदाहरणों से विद्यार्थी परम्परागत हिंदी आलोचना की प्रमुख धारा की एकांगी दृष्टि को देख सकेंगे तथा इधर हाल के वर्षों में हिंदी तथा अंग्रेजी में हुए नवीन शोध अध्ययनों के विश्लेषण से वे रीतिकालीन कविता के नए परिप्रेक्ष्यों को भी समझने में समर्थ होंगे।

रीतिकालीन कविता की इधर हाल के वर्षों में हुई पुनर्समीक्षा से यह बात स्पष्ट समझ में आती है कि रीतिकालीन कविता में पहले खोजे गए दरबारीपन 'अतिशय श्रृंगार' बं'धी बंधाई लीक पर ही कविता लिखते रहने की प्रवृत्ति' के साथ–साथ उसमें स्त्री की उपस्थिति उसकी छिपी हुई आकांक्षाओं तथा अतिशय श्रांगरिकता के भीतर छिपी प्रेम की अभिव्यंजना का भी विश्लेषण करना होगा। इसके साथ ही साथ रीतिकालीन कविता के कुछ और नए परिप्रेक्ष्य भी खोजने होंगे। यही नवीन आलोचना और शोध की सार्थकता होगी।

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी

- रीतिकालीन कविता और आरम्भिक हिंदी आलोचना के अन्तरसंबंधी को जान चुके होंगे।

- हिंदी आलोचना की एकांगी प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- 'स्त्री विमर्श' और सार्वजिनक क्षेत्र (Public Sphere) की अवधारणा को जान चुके होंगे।

6.7 शब्दावली

- प्ररिप्रेक्ष्य – Perspective – स्वरूप , दृष्टिकोण, संदर्भ
- प्रथम दृष्टया – पहली नजर में
- परवर्ती – बाद के
- गौण – कम महत्त्वपूर्ण
- आधुनिकता प्रसूत – आधुनिकता से जन्मी
- औपनिवेशक – उपनिवेश से संबंधित

6.8 संदर्भ ग्रंथ –

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल – 1929/2009 – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास – अनु. किशोरीलाल गुप्त, हिंदी प्रचारक, वाराणसी, 1961।
3. हिंदी साहित्य का रेखांकन – अनु. डॉ. किशोरीलाल , हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद।
4. स्त्री काव्य धारा – सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी/सुधा सिंह, अनामिका प्रकाशन , नई दिल्ली , 2006
5. प्रतिमान अंक 10, जुलाई सितम्बर 2017 सी एस डी एस, दिल्ली
6. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली चौथा सं. 2011
7. हिंदी का लोकवृत्त – फ्रेंचेस्का ओरसेनी/ अनु. नीलम, वाणी प्रकाशन, 2011
8. हिंदी आलोचना का विकास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1981

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिंदी रीतिकालीन कविता का परिचय देते हुए हिंदी आलोचना की प्रवृत्ति पर एक निबंध लिखिए।
2. हिंदी रीतिकालीन कविता के नए परिप्रेक्ष्यों पर एक सारगर्भित निबंध लिखिए।

इकाई – 7 रीतिकालीन उर्दू का प्ररिप्रेक्ष्य

7. प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7 .3 रीतिकालीन उर्दू के प्रमुख कवि
7.4 सारांश
7.5 शब्दवाली
7.6 अभ्यास प्रश्न और उनके उत्तर
7.7 उपयोगी पुस्तकें
7.8 निबंधात्मक प्रश्न

7. प्रस्तावना

हिन्दी की उर्दू शैली की कविता की शुरुआत रीतिकाल में हुई। पर उस समय हिन्दी कविता ब्रजभाषा में लिखी जा रही थी तो उर्दू कविता खड़ी बोली में। रीति के मूल तत्त्व तो इस कविता में भी थे किन्तु बहुत कम। इसका परिवेश ब्रजभाषा-काव्य के परिवेश से भिन्न था। ब्रजभाषा की कविता दिल्ली और लखनऊ दरबार से दूर थी। लेकिन उर्दू की कविता दोनों दरबारों की वीरानगी में साँस ले रही थी। दिल्ली पर बार-बार आक्रमण हुए। कभी नादिरशाह ने लूटा तो कभी अहमदशाह अब्दाली ने। औरंगजेब के बाद मुगल सल्तनत उत्तराधिकार के युद्ध की लपटों में जलने लगी। मराठों, सिक्खों और जाटों की लूट ने इसे और भी जर्जर बना दिया था। सन् 1804 में दिल्ली पर ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार हो गया। मुगल बादशाह कठपुतली होकर रह गये। तत्कालीन उर्दू काव्य में इस माहौल की झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त जिन्दगी की अन्य समस्याओं, मानवीय मूल्यों और फलसफे की भी अभिव्यक्ति होती रही। इन कविताओं में वह युग अपने अन्तर्विरोधों में उजागर हो उठा है। सन् 1700 ई. में औरंगाबाद (दक्षिण) से उर्दू के कवि समझे जानेवाले, वली दिल्ली आये। इसके पहले उनका दीवान दिल्ली पहुँच गया था। यह रेख्ता में लिखा गया था। उसकी लोकप्रिय शैली का प्रभाव दिल्ली के कवियों पर पड़ा। उनकी दूसरी दिल्ली-यात्रा सन् 1722 में हुई। दिल्ली की भाषा का प्रभाव वली पर पड़ा और दिल्ली का कवि-मंडल वली से प्रभावित हुआ। दिल्ली भी वली को भा गयी। उनका मशहूर शेर है-

दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन
जा कहो कोई मुहम्मदशाह सूँ।

यद्यपि वली दक्षिण से आये थे फिर भी उनकी कविता पर कुतुबशाही और

आदिलशाही कवियों की अपेक्षा दकनीपन कम है। दक्षिणी प्रभाव के कारण वे 'से' को हूँ, से, सेंती; 'को' को 'कूँ'; 'तुम' को 'तुमन'; 'हम' को 'हमन' लिखते थे। इससे भाषा में मिठास घोलते थे। सन् 1719 में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह गद्दी पर बैठा। यह पहला मुगल बादशाह था जो उर्दू में कविता लिखता था। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के दरबारों में फारसी और संस्कृत के कवियों का सम्मान था। मुगल शासन के कमजोर पड़ने पर क्लासिकल भाषा का प्रभाव कम हो गया और देशभाषा ने उसका स्थान ले लिया। फ़ाइज़, आबरू, हातिम, यकरंग, जानेजाँ, फुगाँ, ताबाँ आदि इस जमाने के कवि थे। ये लोग फारसी के विद्वान थे, उससे प्रेरणा लेते थे पर उनकी रचनाओं में भारतीयता भरी पड़ी थी। इस भाषा का प्रयोग उनकी कविता में होता था, उसे 'रेख्ता' कहते थे। रेख्ता का अर्थ है मिला-जुला, गिरा-पड़ा। उनकी रचनाओं के कुछ नमूने देखिए-

फिरते थे दश्त दश्त दिवाने किधर गये।
वे आशिकी के हाए ज़माने किधर गये।।

- आबरू

ये हसरत रह गयी क्या-क्या मज़े में ज़िन्दगी करते।
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बागबाँ अपना।।

- यकीन

हर एक नार सूरज सी शोभा धरे।
खड़ी हो सूरज की तपस्या करे।।

- फाइज़

ज़ख़्मे दिल तो सिया नहीं जाता।
बिन सिये भी जिया नहीं जाता।।

- फुगाँ

दर्द, सौदा और मीर आदि ने उर्दू ग़ज़ल को विशिष्ट ऊँचाई पर पहुँचा दिया। इनमें मीर अपने कथ्य और रूप-विन्यास के कारण सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। दरअसल इस पूरे काल को तीन कवियों की रचनाओं के माध्यम से जाना जा सकता है-मीर, नज़ीर अकबराबादी और मिर्ज़ा ग़ालिब। इनमें मीर और ग़ालिब दरबारी कवि थे। नज़ीर अकबराबादी हर तरह से स्वतंत्र थे। मीर में अहंकार की मात्रा अधिक थी। ग़ालिब समझौतावादी थे। नज़ीर अपने जमाने के आगे थे। वे कविता के भविष्य थे। ग़ालिब के अंतिम समय तक उर्दू कविता अपनी चरम ऊँचाई पर जा पहुँची। उसी के साथ मुगल साम्राज्य का भी अंत हो गया। कविता से जमाने की पहचान तो की जा सकती है पर जमाने के उत्थान-पतन से समानान्तर कविता का उत्थान-पतन नहीं होता। प्रायः संकटकाल की कविताएँ अधिक संवेदनशील हो उठती हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य रीतिकालीन कविता के साथ चल रही उर्दू धारा की कविताओं पर विस्तार से परिचर्चा करते हुए विद्याथियों को उर्दू भषा के रीतिकालीन परिदृश्य परिचित करवाना है। जिससे विद्यार्थी उर्दू भाषा के कवियों शायरों को भी समझ सकेंगे।साथ ही यह भी समझने में आसानी होगी कि दोनों कविता धाराओं की विषय वस्तु , अन्तर्विरोध और तत्कालीन प्रभाव क्या थे

7 .3 रीतिकालीन उर्दू के प्रमुख कवि

मीर तकी "मीर" - इनका जन्म 1723 आगरा में और मृत्यु 20 सितम्बर 1810 लखनऊ में हुयी मीर उर्दू एवं फ़ारसी भाषा के महान शायर थे। मीर को उर्दू के उस प्रचलन के लिए याद किया जाता है जिसमें फ़ारसी और हिन्दुस्तानी के शब्दों का अच्छा मिश्रण और सामंजस्य हो। अहमद शाह अब्दाली और नादिरशाह के हमलों से कटी-फटी दिल्ली को मीर तक़ी मीर ने अपनी आँखों से देखा था। इस त्रासदी की व्यथा उनकी रचनाओं मे दिखती है। अपनी ग़ज़लों के बारे में एक जगह उन्होने कहा था-

हमको शायर न कहो मीर कि साहिब हमने
दर्दो ग़म कितने किए जमा तो दीवान किया

देख तो दिल के जाँ से उठता है।
ये धुँआ सा कहाँ से उठता है।।

उनका बचपन अपने पिता की देखरेख मे बीता। उनके प्यार और करुणा के जीवन में महत्त्व के प्रति नजरिये का मीर के जीवन पे गहरा प्रभाव पड़ा जिसकी झलक उनके शेरो मे भी देखने को मिलती है | पिता के मरणोपरांत, ग्यारह की वय मे, इनके उपर तीन सौ रुपयों का कर्ज था और पैतृक सम्पत्ति के नाम पर कुछ किताबें । सत्रह साल की उम्र में मीर दिल्ली आ गए । बादशाह के दरबार में एक रुपया वजीफ़ा मुकर्रर हुआ । इसको लेने के बाद वे वापस आगरा आ गए । 1739 में फ़ारस के नादिरशाह के भारत पर आक्रमण के दौरान समसामुद्दौला मारे गए और इनका वजीफ़ा बंद हो गया । इन्हें आगरा भी छोड़ना पड़ा और वापस दिल्ली आए । अब दिल्ली उजाड़ थी और कहा जाता है कि नादिर शाह ने अपने मरने की झूठी अफ़वाह पैलाने के बदले में दिल्ली में एक ही दिन में बीस - बाईस हजार लोगों को मार दिया था और भयानक लूट मचाई थी । उस समय शाही दरबार में फ़ारसी शायरी को अधिक महत्व दिया जाता था । मीर तक़ी मीर को उर्दू में शेर कहने का प्रोत्साहन अमरोहा के सैयद सआदत अली ने दिया। पच्चीस -छब्बीस साल की उम्र तक ये एक दीवाने शायर के रूप में ख्यात हो गए थे । 1748 में इन्हें मालवा के सूबेदार के बेटे का मुसाहिब बना दिया गया। लेकिन 1761 में एक बार फ़िर भारत पर आक्रमण हुआ। इस बारबारी थी अफ़गान सरगना अहमद शाह अब्दाली (दुर्रानी) की। वह नादिर शाह का ही सेनापति था। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठे हार गए। दिल्ली को फिर बरबादी के दिन देखने पड़े। लेकिन इस बार बरबाद दिल्ली को भी वे अपने सीने से कई दिनों तक लगाए रहे। अहमद शाह अब्दाली के दिल्ली पर हमले के बाद वह अशफ - उद - दुलाह के दरबार मे लखनऊ चले गये । अपनी जिन्दगी के बाकी दिन उन्होने लखनऊ मे ही गुजारे। यहीं पर इनकी मृत्यु 20 सितम्बर 1810 को हुयी।

सिरहाने मीर के आहिस्ता बोलो
अभी टुक रोते-रोते सो गया है ।

इश्क -ए - खूँबा को मीर ने अपना
क़िबला व कबा व इमाम किया ।

मीर के दीन-ओ-मज़हब को, अब पूछते क्या हो उनने तो,
कश्का खैचा, दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया।

मिर्ज़ा 'सौदा' और ख्वाजा मीर 'दर्द' मीर के समसामयिक थे। 'सौदा' में आत्मसम्मान था, पर दुनियादारी भी कम न थी। उनमें मीर जैसी ऐंठ न थी। वे समझौतावादी थे। नवाबों-रईसों से उनकी अच्छी पटरी बैठती थी। ग़ज़लों में सौदा मीर से कोसों पीछे थे। सौदा की ख्याति उनके कुसीदों और हज़्चों (निंदात्मक पद्य) के लिए है। उनके हज़्वों के बारे में सरदार जाफरी ने लिखा है- "हज़्व पढ़ते समय मालूम होता है कि पश्चिम उत्तरप्रदेश के देहात की होली देख रहे हैं जिसमें चारों ओर से कीचड़, गोबर, कालिख बल्कि भीगे जूतों की वर्षा हो रही है।" 'दर्द' सूफी-वंश में पैदा हुए थे। वे निन्दा-स्तुति से ऊपर थे। दर्द की भाषा मीर और सौदा की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है- तुहमते चन्द अपने जिम्मे घर चले, जिस लिए आये थे हम सो कर चले।

इनकी कविताओं के सम्बन्ध में एहतेशाम हुसेन लिखते हैं-
"यद्यपि यह कवि पतनोन्मुख युग के कड़वेपन और नैराश्य के प्रतीक थे परंतु मानव जाति के गौरव और अभिमान का पता भी इनकी कविता से चलता है। सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि मिलती है, परन्तु वह सामाजिक चेतना नहीं है, जो उन्हें बेहतर रास्ता दिखा सकती। वह लोग नास्तिक नहीं थे, परन्तु उनकी विचार-स्वतंत्रता उन्हें संकीर्णता और साम्प्रदायिकता के निकट भी नहीं आने देती थी।" इंशा, नासिख आदि लखनऊ के कवि हैं। इन कवियों की भाषा में लखनऊ की नफासत तो आई पर उसका उथलापन भी आया। इन कवियों में गंभीरता का अभाव है। उस कमी की पूर्ति फालतू शब्दों और अलंकारों से की गयी। जीवन की समस्याओं से लखनऊ के नवाबों की तरह ये लोग कटे-कटे रहे।

नज़ीर अकबराबादी (1735-1830) नज़ीर अकबराबादी (1740–1830) 18 वीं शदी के भारतीय शायर थे जिन्हें "नज़्म का पिता" कहा जाता है। उन्होंने कई ग़ज़लें लिखी, उनकी सबसे प्रसिद्ध व्यंग्यात्मक नज़्म बंजारानामा है। नज़ीर आम लोगों के कवि थे। उन्होंने आम जीवन, ऋतुओं, त्योहारों, फलों, सब्जियों आदि विषयों पर लिखा। वह धर्म-निरपेक्षता के ज्वलंत उदाहरण हैं। कहा जाता है कि उन्होंने लगभग दो लाख रचनायें लिखीं। परन्तु उनकी छह हज़ार के करीब रचनायें मिलती हैं और इन में से 600 के करीब ग़ज़लें हैं। उन्होने अपनी तमाम उम्र आगरा में बिताई जो उस वक़्त अकबराबाद के नाम से जाना जाता था।

जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की
और दफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की
परियों के रंग दमकते हों तब देख बहारें होली की
ख़ुम, शीशे, जाम, झलकते हों तब देख बहारें होली की
महबूब नशे में छकते हों तब देख बहारें होली की

है दुनिया जिस का नाँव मियाँ ये और तरह की बस्ती है
जो मंहगों को ये महँगी है और सस्तों को ये सस्ती है

हैं इस हवा में क्या क्या बरसात की बहारें
सब्ज़ों की लहलहाहट बाग़ात की बहारें
बूंदों की झमझमावट क़तरात की बहारें
हर बात के तमाशे हर घात की बहारें
क्या क्या मची हैं यारो बरसात की बहारें

मिर्ज़ा असदुल्लाह बेग ख़ान, जो अपने तख़ल्लुस ग़ालिब से जाने जाते हैं, उर्दू एवं फ़ारसी भाषा के एक महान शायर थे। इनको उर्दू भाषा का सर्वकालिक महान शायर माना जाता है और फ़ारसी कविता के प्रवाह को हिन्दुस्तानी जबान में लोकप्रिय करवाने का श्रेय भी इनको दिया जाता है। यद्पि इससे पहले के वर्षो में मीर तक़ी "मीर" भी इसी वजह से जाने जाता है। ग़ालिब के लिखे पत्र, जो उस समय प्रकाशित नहीं हुए थे, को भी उर्दू लेखन का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ माना जाता है। ग़ालिब को भारत और पाकिस्तान में एक महत्वपूर्ण कवि के रूप में जाना जाता है। उन्हे दबीर-उल-मुल्क और नज़्म-उद-दौला का ख़िताब मिला। ग़ालिब (और असद) तख़ल्लुस से लिखने वाले मिर्ज़ा मुग़ल काल के आख़िरी शासक बहादुर शाह ज़फ़र के दरबारी कवि भी रहे थे। आगरा, दिल्ली और कलकत्ता में अपनी ज़िन्दगी गुजारने वाले ग़ालिब को मुख्यतः उनकी उर्दू ग़ज़लों को लिए याद किया जाता है। उन्होने अपने बारे में स्वयं लिखा था कि दुनिया में यूं तो बहुत से अच्छे शायर हैं, लेकिन उनकी शैली सबसे निराली है:

हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि 'ग़ालिब' का है अंदाज़-ए-बयाँ और

ग़ालिब का जन्म आगरा में एक सैनिक पृष्ठभूमि वाले परिवार में हुआ था। उन्होने अपने पिता और चाचा को बचपन में ही खो दिया था, ग़ालिब का जीवनयापन मूलत: अपने चाचा के मरणोपरांत मिलने वाले पेंशन से होता था (वो ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी में सैन्य अधिकारी थे)। ग़ालिब की पृष्ठभूमि एक तुर्क परिवार से थी और इनके दादा मध्य एशिया के समरक़न्द से सन् 1750 के आसपास भारत आए थे। उनके दादा मिर्ज़ा क़ोबान बेग ख़ान अहमद शाह के शासन काल में समरकंद से भारत आये। जब ग़ालिब छोटे थे तो एक नव-मुस्लिम-वर्तित ईरान से दिल्ली आए थे और उनके सान्निध्य में रहकर ग़ालिब ने फ़ारसी सीखी। उन्होने दिल्ली, लाहौर व जयपुर में काम किया और अन्ततः आगरा में बस गये। 13 वर्ष की आयु में उनका विवाह नवाब ईलाही बख्श की बेटी उमराव बेगम

से हो गया था। विवाह के बाद वह दिल्ली आ गये थे जहाँ उनकी तमाम उम्र बीती। अपने पेंशन के सिलसिले में उन्हें कोलकाता कि लम्बी यात्रा भी करनी पड़ी थी, जिसका ज़िक्र उनकी ग़ज़लों में जगह–जगह पर मिलता है। उनके दो पुत्र व तीन पुत्रियां थी । मिर्ज़ा अब्दुल्ला बेग ख़ान व मिर्ज़ा नसरुल्ला बेग ख़ान उनके दो पुत्र थे । मिर्ज़ा अब्दुल्ला बेग (ग़ालिब के पिता) ने इज़्ज़त-उत-निसा बेगम से निकाह किया और अपने ससुर के घर में रहने लगे। उन्होने पहले लखनऊ के नवाब और बाद में हैदराबाद के निज़ाम के यहाँ काम किया। 1802 में अलवर में एक युद्ध में उनकी मृत्यु के समय ग़ालिब मात्र 5 वर्ष के थे। 1850 में शहंशाह बहादुर शाह ज़फ़र द्वितीय ने मिर्ज़ा ग़ालिब को दबीर-उल-मुल्क और नज़्म-उद-दौला के ख़िताब से नवाज़ा। बाद में उन्हे मिर्ज़ा नोशा का ख़िताब भी मिला। वे शहंशाह के दरबार में एक महत्वपूर्ण दरबारी थे। उन्हे बहादुर शाह द्वितीय के पुत्र मिर्ज़ा फ़ख़रु का शिक्षक भी नियुक्त किया गया। वे एक समय में मुग़ल दरबार के शाही इतिहासविद भी थे।
ग़ालिब के कुछ प्रमुख शेर यहाँ प्रस्तुत है

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ाइल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है

इशरत-ए-क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना

न था कुछ तो ख़ुदा था कुछ न होता तो ख़ुदा होता
डुबोया मुझ को होने ने न होता मैं तो क्या होता

रंज से ख़ूगर हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं

आह को चाहिए इक उम्र असर होते तक
कौन जीता है तिरी ज़ुल्फ़ के सर होते तक

रेख़्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'
कहते हैं अगले ज़माने में कोई 'मीर' भी था

बस-कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इंसाँ होना

बाज़ीचा-ए-अतफ़ाल है दुनिया मिरे आगे
होता है शब-ओ-रोज़ तमाशा मिरे आगे

काबा किस मुँह से जाओगे 'ग़ालिब'
शर्म तुम को मगर नहीं आती

दर्द मिन्नत-कश-ए-दवा न हुआ
मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ

कोई मेरे दिल से पूछे तिरे तीर-ए-नीम-कश को
ये ख़लिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता

कहाँ मय-ख़ाने का दरवाज़ा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज़
पर इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले

क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ
रंग लावेगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन

7.4 सारांश

बच्चन सिंह का कथन है कि रीतिकालीन उर्दू परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए इस काल को तीन कवियों की रचनाओं के माध्यम से जाना जा सकता है-मीर, नज़ीर अकबराबादी और मिर्ज़ा ग़ालिब। इनमें मीर और ग़ालिब दरबारी कवि थे। नज़ीर अकबराबादी हर तरह से स्वतंत्र थे। मीर में अहंकार की मात्रा अधिक थी। ग़ालिब समझौतावादी थे। नज़ीर अपने जमाने के आगे थे। वे कविता के भविष्य थे। ग़ालिब के अंतिम समय तक उर्दू कविता अपनी चरम ऊँचाई पर जा पहुँची। उसी के साथ मुगल साम्राज्य का भी अंत हो गया। कविता से जमाने की पहचान तो की जा सकती है पर जमाने के उत्थान-पतन से समानान्तर कविता का उत्थान-पतन नहीं होता। प्रायः संकटकाल की कविताएँ अधिक संवेदनशील हो उठती हैं।

7.5 शब्दवाली

दश्त- जंगल
टुक – जरा
दैर – मन्दिर
कश्का – टीका, चन्दन
सुख़नवर- कवि, शायर
अंदाज़-ए-बयाँ- बोलने का तरीका
इशरत-ए-क़तरा- गिरने का सुख

7.6 अभ्यास प्रश्न और उनके उत्तर

अ . रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ाइल
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है, यह पंक्तियाँ किसकी है ?

क . ग़ालिब
ख. सौदा
ग . नजीर
घ . मीर

उत्तर . क (ग़ालिब)

आ. जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की

और दफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की, यह पंक्तियाँ किसकी है?

क . ग़ालिब

ख. सौदा

ग . नजीर

घ . मीर

उत्तर . ग. (नजीर)

इ . तुहमते चन्द अपने जिम्मे घर चले, जिस लिए आये थे हम सो कर चले।
यह पंक्तियाँ किसकी है ?

क . ग़ालिब

ख. सौदा

ग . नजीर

घ . मीर

उत्तर . ख (सौदा)

ई . देख तो दिल के जाँ से उठता है।
ये धुँआ सा कहाँ से उठता है। यह पंक्तियाँ किसकी है ?

क . ग़ालिब

ख. सौदा

ग . नजीर

घ . मीर

उत्तर . घ (मीर)

7.7 उपयोगी पुस्तकें

1- **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास . बच्चन सिंह राधा कृष्ण प्रकाशन**
2- https://www.rekhta.org/?lang=hi **(बेवसाइट)**

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

क . रीतिकालीन काव्य के उर्दू परिदृश्य पर विस्तार से निबन्ध लिखिए

ख. रीतिकालीन काव्य के अंतर्गत उर्दू के प्रमुख कवियों पर विस्तार से निबन्ध लिखें

इकाई- 8 - रीतिकाल गद्य: परिप्रेक्ष्य

8.1- प्रस्तावना
8.2- उद्देश्य
8.3- रीतिकालन गद्य: स्वरूप एवं साहित्य
    8.3.1- रीतिकाल गद्य का स्वरूप
    8.3.2- रीतिकालीन गद्य का सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
    8.3.3 - रीतिकालीन गद्य का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य
8.4- रीतिकाल गद्य का विकास एवं विधाएं
    8.4.1- ब्रजभाषा गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ
    8.4.2- खड़ी बोली गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ
    8.4.3- दक्खिनी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ
    8.4.4- राजस्थानी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ
    8.4.5- भोजपुरी और अवधी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ
8.5- सारांश
8.6- बोधात्मक प्रश्न-उत्तर
8.7 - निबन्धात्मक प्रश्न
8.8- संदर्भ ग्रंथ सूची
8.9 - सहायक ग्रंथ-सूची

8.1:- प्रस्तावना

इस प्रस्तावना के माध्यम से हम रीतिकाल के गद्य साहित्य का स्वरूप एवं महत्वपूर्ण विशेषताओं, उसकी भाषा, शैली और उद्देश्य की समीक्षा करेंगे। साथ ही, हम उस युग के प्रमुख गद्य लेखकों और उनकी रचनाओं पर भी प्रकाश डालेंगे। रीतिकाल का गद्य साहित्य हमें उस समय की समाजिक और सांस्कृतिक धारणाओं को समझने में सहायता करता है। रीतिकाल एक महत्वपूर्ण युग है, जिसे विशेष रूप से काव्य रचनाओं के लिए जाना जाता है। रीतिकाल में हिंदी साहित्य में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और इस काल को मुख्य रूप से कवियों के लिए जाना जाता है जिन्होंने शृंगार रस की कविताओं की रचना की। कवियों ने प्रेम, सौंदर्य, और नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। इस काल की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है और भाषा में माधुर्य और सरसता है। हालांकि, इस अवधि में गद्य साहित्य का भी विकास हुआ। रीतिकालीन गद्य को समझने के लिए हमें उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य को जानना आवश्यक है।

8.2- उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप-

- रीतिकालीन गद्य के सामाजिक और सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न गद्य साहित्यिक भाषाओं की रचनाओं को समझ सकेगें। इस दौरान ब्रजभाषा और अवधी भाषा का व्यापक प्रयोग हुआ।
- गद्य विकास में प्रमुख रीतिकालीन गद्य लेखकों और उनकी कृतियों को जान सकेंगे।

8.3- रीतिकालन गद्य: स्वरूप एवं साहित्य

हालांकि रीतिकाल को मुख्य रूप से कविता का काल माना जाता है, इस काल में भी कुछ गद्य रचनाएं मिलती हैं। रीतिकाल के गद्य साहित्य में प्रमुख रूप से निम्नलिखित बिंदु देखने को मिलते हैं:

1. **गद्य की सीमितता**: इस काल में गद्य साहित्य की तुलना में काव्य रचना अधिक महत्वपूर्ण रही। गद्य रचनाएं कम हैं और वे भी मुख्य रूप से धार्मिक या नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाली होती थीं।
2. **साहित्यिक संरचना**: गद्य रचनाएं साधारण भाषा में लिखी गई और इनमें अलंकारों का प्रयोग कम हुआ। ये रचनाएं धार्मिक ग्रंथों, कथा साहित्य, और नैतिक उपदेशों पर आधारित होती थीं।
3. **धार्मिक और नैतिक विषयवस्तु**: रीतिकाल के गद्य में धार्मिक कथाओं और नैतिक उपदेशों की प्रधानता है। इस काल में तुलसीदास की 'रामचरितमानस' जैसी धार्मिक रचनाएं महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।
4. **भाषा और शैली**: गद्य की भाषा में सरलता और स्पष्टता थी, ताकि सामान्य जनता इसे आसानी से समझ सके। इस दौरान ब्रज भाषा और अवधी भाषा का प्रयोग मुख्य रूप से हुआ।

8.3.1- रीतिकाल गद्य का स्वरूप

रीतिकाल का गद्य साहित्य प्रमुख रूप से धार्मिक, नैतिक और सामाजिक उद्देश्यों के लिए लिखा गया है जिससे समाज को शिक्षित और संस्कारित किया जा सके। गद्य साहित्य का उद्देश्य उस समय की धार्मिक और नैतिक शिक्षा को प्रचारित करना था। यह साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक ग्रंथों, नैतिक कथाओं और उपदेशों पर आधारित था। तुलसीदास की 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' जैसी रचनाएं इस काल की प्रमुख गद्य रचनाओं में शामिल हैं। इन रचनाओं ने न केवल धार्मिक शिक्षा दी, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों को भी मजबूत किया। रीतिकाल के गद्य साहित्य की भाषा सरल और स्पष्ट थी, ताकि इसे सामान्य जनता आसानी से समझ सके। इस काल में ब्रज भाषा और अवधी भाषा का व्यापक उपयोग हुआ। गद्य रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग कम हुआ, और इन्हें सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा में लिखा गया। इन रचनाओं का उद्देश्य धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करना और समाज में नैतिकता को बढ़ावा देना था।

8.3.2- रीतिकालीन गद्य का सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

रीतिकाल का गद्य साहित्य समाज और संस्कृति के संदर्भों को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करता है। इसमें सामाजिक सुधार, नैतिक उपदेश, और सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण प्रमुखता से दिखाई देता है। गद्य साहित्य में समाज की समस्याओं और उनकी समाधान की दिशा में भी रचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त गद्य साहित्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना भी था। धार्मिक कथाओं और नैतिक उपदेशों के माध्यम से समाज को शिक्षित करना इस साहित्य का प्रमुख लक्ष्य था। इससे न केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी गई, बल्कि समाज को सही दिशा में मार्गदर्शन भी मिला।

8.3.3 - रीतिकालीन गद्य का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

1- **कथात्मक शैली-** रीतिकाल का गद्य साहित्य कथात्मक शैली में लिखा गया था। यह शैली पाठकों को कहानी के माध्यम से नैतिक और धार्मिक संदेश देने में प्रभावी सिद्ध होती थी। कथाओं में पात्रों का चरित्र चित्रण और घटनाओं का वर्णन प्रमुख था। यह शैली पाठकों को आकर्षित करने और उन्हें शिक्षित करने में सहायक होती थी।
2- **भाषा की सरलता और स्पष्टता-** रीतिकाल के गद्य साहित्य की भाषा सरल और स्पष्ट है। ताकि सामान्य जनता इसे आसानी से समझ सके। इस काल में ब्रज भाषा और अवधी भाषा का व्यापक प्रयोग हुआ।
3- **अलंकारों का सीमित प्रयोग-** गद्य साहित्य में अलंकारों का प्रयोग सीमित था। जबकि कविता में अलंकारों का व्यापक प्रयोग होता था, गद्य साहित्य में भाषा को साधारण और प्रवाहमयी रखने का प्रयास किया गया। इससे पाठकों को मुख्य संदेश पर ध्यान केंद्रित करने में आसानी होती थी।
4- **विषय-वस्तु**: रीतिकालीन गद्य की विषय-वस्तु मुख्यतः श्रृंगारिक और वीरता प्रधान होती थी। इसमें नायिका-भेद, प्रेम, राजाओं की वीरता, और उनके महान कार्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

8.4- रीतिकाल गद्य का विकास एवं उसकी विधाएं

रीतिकालीन गद्य ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी और काव्यात्मकता, अलंकार, और विषय-वस्तु की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस युग के गद्य में हमें तत्कालीन समाज, संस्कृति, और साहित्यिक रुझानों का स्पष्ट प्रतिबिंब देखने को मिलता है। भक्तिकाल की तुलना में रीतिकाल में गद्य-निर्माण अधिक हुआ। इस युग में रचित ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य का विकास अधिक समृद्ध, प्रौढ़, प्रचुर और बहुमुखी है। खड़ीबोली, दक्खिनी, मैथिली आदि भाषाओं में गद्य लेखन की प्रवृत्ति भक्तिकाल की अपेक्षा अधिक सक्रिय रही। इस काल में टीकात्मक अनूदित रचनाओं की संख्या अधिक है, परंतु मौलिक ललित गद्य का भी लेखन हुआ है। इस समय की प्रमुख गद्य-विधाएं हैं- कथा-कहानी, वार्ता, वात, वर्णन, चरित्र, वचनिका, दवावैत, सलोका, वचनामृत (प्रवचन), गोस्ट, जनमसाखी, परचीओ, जीवनी, नाटक, ख्यात, पीढ़ी, विगत, वंशावली, पट्टावली, पत्र (मौलिक रूप) और बालावबोध, टीका, टिप्पण, भाषा, परमारथ, भाव, भावना, वार्तिक (व्याख्यानुवाद)। पुस्तक- परिचय, निबंधात्मक रचनाएं और जीवनीशैली की रचनाएं भी लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त शिलालेखों, भित्ति-प्रशस्तियों और कागज पत्रों के रूप में भी गद्य नमूने प्राप्त होते है। इसके अलावा उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण से पाठ्य पुस्तकों और समाचारपत्रों का प्रारंभ हुआ। इस समय के गद्य में प्रतिपादित विषय हैं- धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, शकुनशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, सामुद्रिक, गणित और व्याकरण। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से विज्ञानविषयक पाठ्य पुस्तकें भी लिखी गयी। धार्मिक ग्रंथों और काव्यग्रंथों की टीकाओं के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और फ़ारसी की कथात्मक कृतियों तथा योग, वेदांत, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयों की रचनाओं के अनुवाद भी रीतिकाल में हुए।

-8.4.1ब्रजभाषा गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ

रीतिकाल में ब्रजभाषा-गद्य विकसित और समृद्ध है। ब्रजभाषा में टीकाएं भी काफ़ी संख्या में निर्मित हुईं। इस समय के ब्रजभाषा-गद्य के रूप हैं कथा, वार्ता, जीवनी, वर्णन, पत्र, आत्मचरित, संवाद, वचनिका (मौलिक) और टीका, टिप्पण, वातिक, भाव, भावना, अनुवाद, छायानुवाद। मौलिक-अमौलिक, ललित-अललित, सानुप्रास-अनुप्रास-रहित सभी प्रकार का गद्य इस काल में ब्रजभाषा में लिखा गया है। गद्य-ग्रंथों में वात, वचनिका, चर्चा, वार्ता अथवा किसी अन्य शीर्षक से यत्र-तत्र टिप्पणीपरक गद्य भी इस युग में पर्याप्तः लिखा गया।

रीतिकाल में वल्लभ-संप्रदाय में 'वार्ता' नाम से प्रचुर गद्यवाङ्मय की सर्जना हुई। वार्ताओं केवैष्णव जनों के पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने, उनके जीवन-प्रसंगों और आचार्य जी की महिमा के अतिरंजनात्मक विवरण हैं। प्रधानतः वार्ता-साहित्य धार्मिक सांप्रदायिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है। इस साहित्य में कालक्रम और महत्त्व की दृष्टि से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' 1640 ई. और 'दो सौ बातन वैष्णवन की वार्ता' महत्वपूर्ण हैं। 'चौरासी वार्ता' में वल्लभाचार्य जी के शिष्यों और 'दो सौ बावन वार्ता' में विठ्ठलनाथ जी

के शिष्यों के जीवनवृत हैं। वल्लभ-संप्रदाय का वार्ता-साहित्य गो. विठ्ठलनाथ जी और गो. गोकुलनाथ जी के वचनामृतों पर आधृत है। इन वचनामृतों को लिपिबद्ध करने वालों में श्रीकृष्णभट्ट, कल्याणभट्ट और हरिराय के नाम प्रसिद्ध हैं। हरिराय रीतिकाल के ब्रजभाषा-गद्यकारों में अग्रणी हैं। उन्होंने वचनामृतों का संकलन, संपादन और संवर्धन किया तथा उन पर भाव-भावना संज्ञक टिप्पणियां जोड़ीं। कथात्मक और तथ्य-निरूपक दोनों प्रकार का गद्य हरिराय जी ने लिखा है। कुछ मुख्य वचनामृतों के नाम हैं 'गुसाईं दामोदरदास संवाद', 'नित्यसेवा प्रकार', 'चौरासी बैठक चरित्र', 'वनयात्रा', 'अट्ठाईस बैठक चरित्र', 'श्र गिरिधरदास की बैठकन के चरित्र', 'घरू वार्ता'। हास्य प्रसंग के भी वचनामृत प्राप्त हैं। गोकुलनाथ जी के नाम से लगभग बीस वार्ता-ग्रंथ भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त-

सत्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा-गद्य की रचनाएं निम्नलिखित हैं-

मीनराज प्रधान-'हरतालिका-कथा'(1669), अक्षर अनन्य 'अष्टांग योग' (1693), 'कोककथा' और 'कोकमंजरी', दादूपंथी दामोदरदास-'मार्कण्डेयपुराण' अनुवाद (1648),मेघराज प्रधान 'अध्यात्मरामायण' अनुवाद।

अठारहवीं शताब्दी- वल्लभ-संप्रदाय के श्री हरिराय के नाम से प्रसिद्ध 'भावना' संज्ञक टिप्पणियों वाले 'चौरासी वैष्णवन की भावना वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'द्वादशनिकुंज की भावना', 'भावभावना', 'सात स्वरूपन की भावना', 'महाप्रभु जी की प्राकट्य भावना वार्ता', 'नित्यलीला भावना', 'सेवाभावना', 'निजवार्ता भावना', 'घरू वार्ता भावना' शीर्षक भावना ग्रंथ; हरिराय के नाम से प्रसिद्ध 'नित्य नृत्य', 'पुष्टिदृढ़ाव', 'श्रीकृष्ण प्रेमामृत', 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा', 'बैठक चरित्र', 'मार्ग स्वरूप सिद्धांत', इसी संप्रदाय के श्री ब्रजभूषण द्वारा लिखित 'श्री महाप्रभु जी तथा गुसाईं जी का चरित्र', 'श्री द्वारिकाधीश जी की प्राकट्य वार्ता', 'नित्यविनोद', 'नीतिविनोद', काका वल्लभ-कृत 'बावन वचनामृत', राधावल्लभ-संप्रदाय के अनन्य अली का 'स्वप्न-प्रसंग', प्रियादास का 'सेवक जू कौ चरित्र', दामोदर स्वामी-कृत 'भक्ति-विवेचन', प्राणनाथ कृत 'हस्तामलक', लाडलीदास-कृत 'सुधर्मबोधिनी', निम्बार्क-संप्रदाय के ललितकिशोरी ललितमोहिनी की 'श्री स्वामी जी महाराज की वचनिका' और अज्ञातनाम लेखकों की 'ब्रह्मजिज्ञासा', 'वेदांत निर्णय', 'ईश्वर-पार्वती-संवाद,'नासिकेतोपाख्यान'(1707) आदि

इस युग के प्रमुख ब्रजभाषा गद्यकार हैं- श्री हरिराय, ब्रजभूषण तया द्वारिकेशः राधावल्लभ-संप्रदाय के दामोदर स्वामी, अनन्य अली, प्राणनाथ, प्रियादास; अन्य संप्रदायों के रामहरि, अक्षर अनन्य, धार्मिक संप्रदायों से बाहर के मीनराज प्रधान, गुमानौराय कायस्थ, शिवचंद्र, सुरति मिश्र, लल्लूलाल। इन लेखकों का गद्य पर्याप्त परिष्कृत, पुष्ट और प्रौढ़ है।

रीतिकाल में काव्यशास्त्रीय ग्रंथों, धार्मिक दार्शनिक रचनाओं, अन्य विषयों के ग्रंथों और काव्य ग्रंथों में यत्र-तत्र वात, वचनिका, चर्चा, वार्ता, तिलक, वार्तिक अथवा अन्य शीर्षकों से भी टिप्पणीपरक गद्य का प्रयोग हुआ है। ऐसे ग्रंथ हैं- चिंतामणि 'श्रृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु', कुलपति : 'रसरहस्य', जयगोविंद वाजपेयी 'कवि सर्वस्व', भिखारीदास : 'काव्यनिर्णय' दलपतिराय वंशीधर : 'अलंकाररत्नाकर'; सोमनाथ 'रसपीयूषनिधि'; बेनी कवि : 'अलंकारशिरोमणि': रसिकगोविंद : 'रसिकगोविंदानंदघन' (1801), सुखदेव मिश्र 'पिंगल', रामसहायदास : 'वृत्ततरंगिणी' (1816); करनेस 'बलभद्र प्रकाश' (रसालंकार-विवेचन, 1823), बख्शी समनसिंह : 'पिंगल काव्य विभूषण' (1823), प्रतापसाहि 'व्यंग्यार्थकौमुदी' (1825), 'काव्यविलास' (1829), बलवानसिंह 'चित्रचंद्रिका' ग्वाल 'अलंकारभ्रमभंजन' मनोहरदास निरंजनी : 'संत प्रश्नोत्तरी'; 'षटदर्शनी निर्णय'; नागरीदास 'पदप्रसंगमाला', रामचरणदास: 'अणभौविलास'; जसवंतसिंह 'प्रबोधचंद्रोदय' हरिनाथ गुजराती 'संग्रह कवित्त'; लल्लूलाल : 'माधोविलास'। चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ आदि ने लक्षणों की व्याख्या के लिए गद्य का प्रयोग किया है।

रीतिकाल में टीका-साहित्य भी पर्याप्त परिमाण में निर्मित हुआ। गद्य तथा पद्य-गद्य को बहुत-सी समीचीन व्याख्यायुक्त टीकाएं प्राप्त हैं। 'भागवत' की टीकाएं भी उल्लेखनीय हैं। तुलसी के काव्य पर भी अनेक टीकाएं लिखी गयीं। 'बिहारी-सतसई' पर लिखित टीकाओं की संख्या भी उल्लेखनीय हैं। केशव-कृत 'वैराग्यशतक' की भी टीका की है। बालकृष्णदास और पटनावासी हरिश्चंद्र की टीकाएं। इस समय की कुछ अन्य टीकाएं हैं- रामसनेही पंथ के संस्थापक स्वामी रामचरण के शिष्य रामजन की 'दृष्टांत-सागर' और 'संजुगतिवचनिका' पर सन् 1788 के लगभग लिखित टीकाएं। 'गोपी-विरहवर्णन' टीका, 'इंद्रस्तुति' टीका, गोपाल बख्शी-कृत, 'श्रृंगार

पच्चीसी तिलक' वासुदेव सनाढ्य-रचित 'मुहूर्त संचय टीका" और अज्ञातनाम टीकाकारों की 'उत्सावली' टीका, 'बलभद्र-जन्म-चंपू' टीका, 'नंदोत्सव'-टीका, 'जानकी स्वयंवर' टीका, 'रामचरित्र' टीका आदि।

8.4.2- खड़ी बोली गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ

रीतिकाल का खड़ीबोली-गद्य प्रायः मिश्रित भाषा में है। खड़ीबोली-गद्य उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व नहीं मिलता। इस समय की अनेक रचनाओं पर ब्रजभाषा के साथ पूर्वी हिंदी, राजस्थानी अथवा पंजाबी का प्रभाव है। इस काल में भी ललित गद्य की अपेक्षा धर्म, दर्शन, चिकित्सा, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, सामुद्रिक, शकुन, गणित आदि विषयों पर लिखित शुष्क गद्य का ही प्राधान्य है। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व को ब्रजभाषा, फ़ारसी, पंजाबी आदि से प्रभावित खड़ीबोली-गद्य की महत्त्वपूर्ण मौलिक रचनाएं हैं 'एकादशी-महिमा', 'सीधा रास्ता', (इस्लामविषयक रचना), 'फर्सनामा' (पोथी सलोत्री की), 'बाजनामा', 'सकुनावली', 'हक़ीक़त', 'नरसिंहदास गौड़ की दवावैत', 'जिनसुखसूरि मजलस', 'लखपत दवावैत', 'मंडोवर का वर्णन', 'विश्वातीतविलास नाटक', 'सुरासुर निर्णय' (मुंशी सदासुखराय), 'गोसट गुरु मिहरिबानु' (हरि जी), 'चकत्ता की पातस्याही की परंपरा, 'मोक्षमार्गप्रकाश' (टोडरमल जैन), 'चिद्विलास' (द्वीपचंद जैन)।

इनके अतिरिक्त अन्य रचनाएं हैं' पोथी हरि जी', 'जनमसाध कबीर भगति जी की', 'विवेकसार', 'जनम साषी गुरु नानक जी दी', 'अषवार डेवड़ी का', 'पासा केवली', 'लीलावती अष्ट चंडिका', 'विवेक मार्तंड' खड़ीबोली के विशिष्ट गद्यकार हैं- टोडरमल जैन, द्वीपचंद जैन, शाहजी महाराज, हरिजी, दयाल अनेमी, अड्डनशाह, रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम जैन, टेकचंद जैन और मुंशी सदासुखराय। मुंशी सदासुखराय निसार (नियाज नहीं), जिनके नाम से 'सुखसागर' शीर्षक ग्रंथ का उल्लेख प्रायः सभी इतिहास पुस्तकों में किया गया है, 'सुखसागर' शीर्षक किसी ग्रंथ के रचयिता नहीं हैं अपितु 'सुखसागर' उनका उपनाम था। 'विष्णुपुराण' या 'भागवत' का मुंशी जी ने पद्यानुवाद किया था। उनकी दो अन्य गद्य-रचनाएं 'अवश्य प्राप्त हैं 'सुरासुर-निर्णय' आदि।

अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख अनूदित ग्रंथ हैं 'भाषा उपनिषद्', 'भाषा योगवासिष्ठ', 'भाषा पद्मपुराण', 'आदिपुराण वचनिका', 'मल्लीनाथ चरित्र वचनिका', 'सुदृष्टि तरंगिणी वचनिका' और 'हितोपदेश वचनिका'। 'भाषा उपनिषद्' (1719) तैत्तिरीयोपनिषद् आदि बाईस उपनिषदों के फ़ारसी अनुवाद का हिंदी भाषांतर है। कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह में सुरक्षित इस उपनिषद्-अनुवाद की एक सौ सात बृहत् पत्रों की नागरी प्रति में भाषा ब्रजभाषा मिश्रित और प्रायः अपरिमार्जित है। रामप्रसाद निरंजनी के नाम से प्रसिद्ध 'भाषा योगवासिष्ठ' कर हैं। इनके अतिरिक्त ब्रजभाषा-मिश्रित खड़ीबोली में अनेक टीकाएं भी प्राप्त हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में खड़ीबोली-गद्य में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण हुआ। इस कॉलेज से संबद्ध व्यक्तियों द्वारा लिखित ग्रंथ हैं- 'नासिकेतोपाख्यान 'रामचरित्र', 'प्रेमसागर', 'लालचंद्रिका टीका', 'भाषा क्रायदा', 'सिंहासनबत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' 'भक्तमाल टीका' और 'हातिमताई' का अनुवाद। श्री लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' 'भागवत' के दशम स्कंध के चतुर्भुज मित्र-कृत ब्रजभाषा अनुवाद का खड़ीबोली रूपांतर है। इस काल की अन्य कृतियों में 'भक्तमाल टीका',भक्तमाल की विस्तृत व्याख्या है। गद्य की 'रानी केतकी की कहानी' (1805 ई. के लगभग), रीवा-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह का रामकथा-विषयक 'आनंदरघुनंदन नाटक', जिसमें ब्रजभाषा पद्य के साथ खड़ीबोली-गद्य भी प्रयुक्त है।

8.4.3- दक्खिनी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ

रीतिकाल में दक्खिनी में पूर्व परंपरा के अनुसार सूफ़ी तथा इस्लामी धर्म-ग्रंथों का भाष्य-अनुवाद और धर्म-दर्शन विषयक पुस्तकों का निर्माण अधिक हुआ। कुछ अनूदित कथा-पुस्तकें, इतिहास-विषयक और चिकित्साविषयक कुछ पुस्तकें और पत्रों, हुक्मनामों तथा अर्जियों की एक-दो संग्रह पुस्तकें भी प्राप्त हैं। इस काल की प्रमुख धार्मिक दक्खिनी रचनाएं हैं आबिदशाह अलहसन उलहुसेनी-कृत 'गुलज़ारुस्सालिकीन' तथा 'कंजुल मोमिनीन', मीरां याकूब कृत 'शमायलुल अतकिया' और 'दलायलुल अतकिया' नामक ग्रंथों के अनुवादः शाह बुरहानुद्दीन कादिरी-कृत 'रिसाले वजूदिया', मोहम्मद शरीफ़-रचित 'गंजमखफी', मोहम्मद वलीउल्ला क़ादिरी का किया हुआ 'मारिफतुस्सुलूक' का अनुवाद, सैयद शाह मोहम्मद क़ादिरी का 'रिसाले वजूरिया', सैयद शाहमीर का 'असरारुतौहीद', अब्दुल हमीद का 'रिसाले तसव्वुफ़'। इनमें से अधिकतर पुस्तकें सूफ़ीमत विषयक हैं। इनके अतिरिक्त अज्ञातनामा लेखकों की 'तूतीनामा', 'अनवारे सुहेलो', 'क्रिस्सा ए गुलो हुरमुञ्ज' शीर्षक अनूदित कथात्मक पुस्तकें, 'हैदरनामा', 'तारीख जापान', 'अम्दतुल तारीख', 'तारीख श्रीरंगपट्टन', 'गुलदस्तए हिंद' शीर्षक इतिहासविषयक ग्रंथ और 'मुआलजात ख्वाजा बंदानवाज' तथा

'मजमूआ नुस्खेजात, शीर्षक चिकित्साविषयक रचनाएं और विज्ञान संबंधी कुछ अनूदित रचनायें भी मिलती हैं। इन रचनाओं की भाषा प्रायः उर्दूशैली की है।

8.4.4- राजस्थानी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ

रीतिकालीन राजस्थानी-गद्य ब्रजभाषा-गद्य से भी अधिक समृद्ध हैं। इस समय के राजस्थानी (मारवाड़ी)-गद्य को प्रमुख विधाएं हैं वचनिका (गद्य-पद्य में कथा और वर्णन), वर्णन, दवावैत, मलका पत्र, वंशावली, पट्टावली, विगत, पीढ़ी। कुछ वातों और वार्ताओं में तुकमय गद्य का दर्शन होता है। इस समय गद्य-रूपों में बालावबोध, टीका और 'भाषा' प्रमुख हैं। इनके विषय हैं इतिहास, धर्म, अध्यात्म कोकशास्त्र, शकुन, सामुद्रिक, ज्योतिष, वैद्यक, यंत्र, तंत्र, नीति, गणित। गद्यात्मक वातों के साथ पद्यमय और गद्य-पद्यमय वातें भी प्राप्त होती हैं। विषय की दृष्टि से वातें स्थूलतः छह प्रकार की हैं- प्रेमपरक, वीरतापूर्ण, हास्यमय, धार्मिक, शांतरसपरक स्त्रीचातुर्यविषयक और अद्भुततत्त्वपूर्ण।

कुछ प्रसिद्ध रचनायें हैं 'रतना हमीर री वात', 'राव अमरसिंह री बात', 'सिद्धराज जयसिंह दे री वात', 'राव रिणमल री वात', 'सयणी चारणी री वात', 'ढोला मारवाणी री वात', 'गोराबादल री वात 'वात दूधै जोधावत री', 'राजा भोज खापरा चोर री वात', 'बीरबल री वात'। 'वारता' शीर्षक से भी इस प्रकार की रचनाएं प्राप्त होती हैं।

इस समय की 'वचनिका' संज्ञक रचनाएं दो ही प्राप्त हैं। वर्णनपरक रचनाएं भी पूर्णरूप में पांच ही उपलब्ध हैं 'खीची गंगेव नींबावत रो दोपहरो', 'राजान राउत रो वात वणाव', 'भोजन विच्छित्ति', 'रामदास वैरावत री आखड़ी री वात', 'मुत्कलानुप्रास'।

राजस्थानी की अन्य ललित गद्य रचनाएं हैं 'कुंवर जी श्री संग्रामसिंह री दवावैत', 'रामदेव महाराज रौ सिलौका', 'दलपति-विलास', राजरूपक। 'ऐतिहासिक गद्य रचनाओं में 'नैणसी री ख्यात', 'बीकानेर रो ख्यात', 'उदयपुर री ख्यात', 'बांकीदास री ख्यात', 'सोलंकियां री साख री विगत्', 'खाँचौ वाडारां राठोड़ां री पीढ़ियां', 'कछवाहां री वंसावली', 'सीसोदियां री वंसावली', 'पीढ़ियां' आदि

इसके अतिरिक्त 'बालावबोध', निर्माताओं में विल कीर्ति, विमलरल, हंसराज, कुंवर, विजय, यशोविजय उपाध्याय, सुखसागर, रामविजय आदि कितने ही नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने सैकड़ों बालावबोध टीकाओं की रचना की। टीका ग्रंथों में कुशलधीर- कृत 'रसिकप्रिया टीका' और 'भगवद्गीता टीका' (टीकाकार अज्ञात) उल्लेखनीय हैं। अनुवाद- कार्य भी इस काल में राजस्थानी में हुआ। 'भागवत', 'गरुड़पुराण', 'योगवासिष्ठ', 'पंचतंत्र', 'सिंहासनबत्तीसी', 'बैतालपच्चीसी' आदि कथात्मक रचनाओं के भी अनुवाद-छायानुवाद किये गये ।

8.4.5- भोजपुरी और अवधी गद्य: प्रमुख लेखक एवं कृतियाँ

भोजपुरी में प्राचीन गद्य के नाम पर कुछ पत्र, दस्तावेज, सनद, पंचनामे आदि 'अभिलेख' ही प्राप्त हैं, जो प्रायः अनलंकृत और शुष्क हैं। इस काल में भोजपुरी और अवधी में गद्य-रचनायें भी मिली हैं। भोजपुरी गद्य में कुछ दस्तावेज, सनद, पत्र, अभिलेख तथा पंचनामे हैं। फणीन्द्र मिश्र का 'पंचायता का न्याय पत्र' (सं. 1701) अभिलेख अवधीमिश्रित भोजपुरी गद्य में मिला है। रीतिकाल में अवधी-गद्य की रचनाएं प्राप्त हैं- भानुमिश्र : 'रसविनोद' (पद्य-गद्य, 1793 ई. की प्रति), नित्यनाथ 'उड्डोल' (प्रति 1799 ई., जन्म-मंत्र) रामचरण दास : 'मानस' टीका, गौत्मरिषि 'सगुनावती' (1822), प्रियादास 'व्यवहारपाद' (दायभाग, 1843 ई. के लगभग), महाराज विश्वनाथसिंह 'कबीर-बीजक' टोका तथा 'परमधर्म-निर्णय'उल्लेखनीय हैं। खड़ीबोली का प्रचार-प्रसार बढ़ने के साथ ब्रजभाषा, अवधी और राजस्थानी भी खड़ीबोली से प्रभावित होने लगी थीं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल में गद्य-ग्रंथ का निर्माण अपेक्षाकृत कम ही रहा।

.85 -सारांश

रीतिकाल में हिंदी साहित्य का प्रमुख हिस्सा कविता रहा, लेकिन गद्य साहित्य भी कुछ हद तक प्रचलित रहा। गद्य साहित्य में धार्मिक और नैतिक विषयों की प्रधानता थी और भाषा में सरलता और स्पष्टता का ध्यान रखा गया था। रीतिकाल का यह गद्य साहित्य उस समय की सामाजिक, धार्मिक, और नैतिक धारणाओं को प्रदर्शित करता है। रीतिकालीन ब्रजगद्य-साहित्य अपेक्षाकृत अन्य भाषा गद्य साहित्य से पर्याप्त समृद्ध है जिसमें विविध विषयक गद्य ग्रंथ के साथ पद्य ग्रंथों में टिप्पणीपरक गद्य तथा विभिन्न पद्य ग्रंथों की टीकायें लिखी गयीं है। ब्रजभाषा गद्य प्रौढ़ तथा स्पष्ट है। इसके उत्तरार्ध में गद्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली की प्रतिष्ठा बढ़ गयी थी और इससे ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी आदि के गद्य-ग्रंथों पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्टतः होने लगा था।

खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक निर्माता तथा गद्य चतुष्टय के नाम से विख्यात इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र, सदासुखलाल और लल्लूलाल इसी काल की उपज हैं। इनके बाद क्रमशः खड़ी बोली गद्य का निरन्तर विकास होता गया। आधुनिक काल में खड़ी बोली गद्य की विविध विधाएँ पर्याप्त समृद्ध रूप में विकसित हुई।

8.6- बोधात्मक प्रश्न-उत्तर

1-'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' किस गद्य-विधा की रचना है।

अ- ब्रजभाषा गद्य
ब- खड़ीबोली-गद्य
स- दक्खिनी गद्य
द- राजस्थानी गद्य

उत्तर- 1- अ

2- रामप्रसाद निरंजनी की रचना है।

अ- गोविन्दनाथ राजगुरु
ब- मुंशी सदासुखराय
स- भाषायोग वशिष्ठ
द- कोई नहीं

उत्तर- 2 – स

-3खड़ीबोली गद्य-की रचना है।

अ नीतिशतक -
ब – सौ बावन वैष्णवन की वार्ता',
स –नीतिविनोद
द –नासिकेतोपाख्यान

उत्तर- 3 – द

4 -'तूतीनामा, किस्सा-ए-गुलो किस गद्य-विधा की रचना है।

अ- खड़ीबोली गद्य-
ब - दक्खिनी गद्य
स- राजस्थानी गद्य
द -अवधी गद्य

उत्तर- 4 – ब

8.7- निबन्धात्मक प्रश्न

1-रीतिकाल के गद्य-साहित्य को संक्षिप्त रूप में परिभाषित कीजिए।

2-ब्रजभाषा गद्य और खड़ी बोली गद्य पर टिप्पणी लिखिए।

8.8- संदर्भ ग्रंथ सूची

1-हिन्दी साहित्य का इतिहास- संपादक डॉ नगेंद्र, डॉ हरदयाल,मयूर पैपरबैक्स नोयडा,प्रथम संस्करण.1973, 1991,2014

2-हिन्दी साहित्य का अतीत–आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, संस्करण 2000
3-हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास-डॉ कुसुम राय, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,पंचम संस्करण 2019

8.9 - सहायक ग्रंथ-सूची

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद,संस्करण 2009
2 -हिन्दी साहित्य का अतीत –आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, संस्करण 2000
3- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास-डॉ बच्चन सिंह,राधाकृष्ण नयी दिल्ली, संस्करण 2009

इकाई-9 की रुपरेखा

9.00 भूषण: परिचय, पाठ एवं आलोचना
9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भूषण: परिचय
9.3.1 भूषण: परिचय
9.3.2 भूषण: प्रमुख रचनाएं
9.4 भूषण की कविता: कुछ प्रमुख पाठ
9.5 भूषण की कविता: विशेषता व प्रदेय
4.5.1 भूषण की कविता: विशेषता
9.5.2 भूषण का साहित्य: प्रदेय
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक /उपयोगी सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 भूषण: प्रस्तावना

भूषण रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि हैं | भूषण को रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत रखा गया है| किन्तु भूषण की ख्याति का आधार उनकी वीर रस की रचनाएं हैं| आपने पढ़ा कि रस की दृष्टि से रीतिकाल में श्रृंगार रस की बहुलता रही है| भूषण को इस दृष्टि से विशेष महत्त्व दिया गया कि जब सारे कवि श्रृंगारिक रचनाएं लिख रहे थे और अपनी काव्य प्रतिभा को नायिका भेद के चित्रण में व्यर्थ कर रहे थे, तब भूषण ने वीर रस की रचनाएं लिखीँ| लेकिन भूषण का महत्व केवल यह नहीं है कि उन्होंने वीर रस की रचनाएं लिखीँ, अपितु उन्होंने रीतिकालीन दरबारी मनोवृत्ति के बीच, झूठी प्रशंसा अपने आश्रयदाता की नहीं की है| भूषण भी दरबारी कवि थे| चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने भूषण को 'कविभूषण' की उपाधि दी थी| राजा रूद्र के अतिरिक्त भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल का आश्रय भी लिया था|

कवि भूषण की कविता दो दृष्टियों से उल्लेख्य है| एक, तो रीति निरुण की दृष्टि से और दूसरे अपने वीरता पूर्ण कथ्य की दृष्टि से| भूषण की कविता अपने कथ्य में राष्ट्रीय रूप कैसे धारण कर लेती है, यह देखना भी दिलचस्प हो सकता है| प्रस्तुत इकाई में हम भूषण की कविता के प्रमुख बिंदुओं का अध्ययन करेंगे|

9.2 उद्देश्य

रीतिकाल सम्बन्धी पाठय पुस्तक की यह 9 वीं इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

* महाकवि भूषण के जीवन से परिचित हो सकेंगे|
* कवि भूषण की रचनाओं का परिचय पा सकेंगे |
* भूषण की कविता की अंतरवस्तु से परिचित हो सकेंगे|
* भूषण की काव्यगत विशेषताओं को समझ सकेंगे|
* भूषण के प्रदेय को जान सकेंगे|

9.3 भूषण: परिचय

9.3.1 भूषण: परिचय

भूषण रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि व आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हैं| भूषण रीतिकाल के ही प्रसिद्ध कवि व आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी व मतिराम के भाई थे| चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने भूषण को 'कविभूषण' की उपाधि प्रदान की थी| भूषण का जन्म 1613 ई में तथा मृत्यु लगभग 1717 ई में हुई|
भूषण अनेक राजाओं के दरबार में रहे, किन्तु इनका चित्त महाराज शिवाजी और छत्रसाल के दरबार में ही रमा|

9.3.2 भूषण: प्रमुख रचनाएं

महाकवि भूषण के रचे हुए मुख्यतः तीन ग्रन्थ मिलते हैं| शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक इनके मुख्य ग्रन्थ हैं| इसके अतिरिक्त भूषणउल्लास, दूषणउल्लास एवं भूषणहज़ारा भी भूषण द्वारा रचित ही माने जाते हैं|

अभ्यास प्रश्न)1

सही/ गलत का चुनाव कीजिये|

1. भूषण रीतिकालीन प्रसिद्द कवि मतिराम के भाई थे|
2. भूषण को कविभूषण की उपाधि सोलंकी राजा रूद्र ने दी थी|
3. भूषण का जन्म 1613 ई में हुआ था|
4. भूषण महाराज शिवाजी और राजा छत्रसाल के दरबार में थे|
5. भूषण कवि और रीतिनिरूपक दोनों भूमिकाओं में सफल रहे हैं|

9.4 भूषण की कविता: कुछ प्रमुख पाठ

भूषण की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर,
रावन सर्दभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन बारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर,
भूषण बितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,

त्यों मलेच्छ बंस पर सेन सिवराज हैं।

* * **********

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जसहद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धक धक,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी, बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की ॥

****

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों ना सलाम, न बचन बोले सियरे ॥
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पात साही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भयो,
स्याह मुख नौरंग, सिपाह मुख पियरे ॥

****

दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुबे की,
बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवाल को।
मठ विश्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत हैं साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को ॥

****

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है।
बिलखि बदन बिलखत बिजैपुर पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है।
थर थर काँपत कुतुब साहि गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती धरकति है।

****

जिहि फन फूतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगौ।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो ॥
कीन्हो जिहि पान पयपान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलंद्दल निगलिगो ॥

****

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत हैं।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के
नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल फैल खेल मैल खलक में गैल गैल
गजन की ठेलपेल सैल उसलत हैं।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगति, जिमि
धारा पर पारा पारावार यों हलत हैं॥

****

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के
नाही ठहराने राव राने देस देस के|
भहराने ग्राम नगर पराने सुनि
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के।

****

पावक-तुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को;
आनँद भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को।
भूतल माहिं बली सिवराज भो, 'भूषन' भाषत सत्र सुधा को;
बंदन तेज त्यों चंदनि कीरति, साधे सिंगार वधू-वसुधा को ।॥
****

कामिनि कंत सनि चंद सों, दामिनि पावस-मेघ घटा सों;
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों।
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नत्र पूपन-देव-प्रभा सों;
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुआन खुमान सिवा सों ।।
****

जै जयति, 'जै आदि-सकति जै कालि, कपर्दिनि;
जै मधुकैटभ छलनि, देवि, जै महिषविमर्दिनी ।
जै चमुंडि जै चंड मुंड भंडासुर खंडिनी; जै सुरक्त
जै रक्तबीज विड्डाल- बिहंडिनि ।
जै जै निसुंभ-सुंभद्दलनि, भनि 'भूपन' जै-जै भननि;
सरजा समत्थ सिवराज कहँ देहि बिजै, जै जग-जननि ॥

****

चंदन मैं नाग, मद-भर्यो इन्द्र-नाग विष
भरो सेस दाग, कहै उपमा अवस को;
चोर ठहरात, न कपूर बहरात, मेघ,
सरद उड़ात, बात लागे दिसि दल को।
सुंभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन 'भूषन' सरस को;
बीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक, याते,
रूप एक टंक ये लहैं न तुव जस को ॥

****

साहि तनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है;
'भूषन' भनत जाके एक एक सिखर ते,
केते धौं नदी-नद की रेल उतरति है।
जोन्ह को हँसति जोति हहरा-मनि-मंदिरन,
कंदरन मैं छबि कुहूकी उछरति है;

ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को, जामैं,
नखतावली सों बहस दिपावली करति है ॥
****

जेते हैं पहार, भुव माहिं पारावार, तिन,
सुनिकै अपार कृपा गहे सुख फल है;
'भूषन' भनत साहि-तनै सरजा के पास,
आइवे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है।
किरबान बज्र सों विपच्छ करिबे के डर,
आनि कै कितेक आए सरन की गैल है;
मघवा मही मैं तेजवान सिवराज बीर
, कोटि-करि सकल सपच्छ किए सैल है ॥
****

कबि करें करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्धो इमि श्रेय है;
कड़त थरेस सब धराधर सेस, ऐसो
और धराधरन को मेख्यो अहमेव है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज, तेरो
राज काज देखि कोऊ पायत न भेव है;
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है ॥

****

चमकतीं चपला न फेरय फिरंगै भट,
इंद्र को न प्याप रूप बैरख समाज को;
धाए धुरवा न छाए धूरि के पटल, मेघ,
गाजियो न बाजियों है कुंदुभी दराज को।
भौंसिला के बरन ४रानी रिपु-रानी, कई
पिय मजौ देखि उदौ, पावस के साज को;
धन की घटान गज घटनि सनाह साजे,
'भूपन' भनत आयो सैन सिवराज को ॥

****

दानव आयो दगा करि जावली, दीह भयारो महामद भार्यो;
'भूषन' बाहुबली सरजा, तेहि मेटिये को निरसंक पधारयो ।
बीयू के धाय गिरे यफनल्लहि ऊपर ही सिवारान निहार्यो;

दावि यों बैठो नरिंद भारिंदहि, मानो मर्यर गबद पछारयो ॥

****

मद जलधरन दुरद बल राजत,
बहु जल धरन जलद बुबि साजै;
पुहुमिधरन फनि नाथ लसत अति,
तेज धरन ग्रीषस रबि छाजे
खरग धरन सोभा तहँ राजत,
रुचि 'भूषन' गुनधरन समाजै;
विश्जी - वहान, दक्खिन दिसि थंभन,
ऐंड़ धरन सिवराज बिराजै ॥
****

श्रीसरजा सिष, तो जस सेत सों, होत हैं वैरिन के मुँह कारे
; 'भूषन' तेरे भरुन प्रताप, सपेद लखे कुनबा नृप सारे।
साहि-तनै, तब फोप- कृषातु ते बैरि गरे सब पानिपवारे;
एक अचंभव होत बड़ौ, तिन ओठ गहे अरि जात न जारे
****

ता दिन अखिल खलमलै खल खलक मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं;
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत, न बार परखेत हैं।
छूटे बार-बार, छूटे बारन ते लाल देखि, '
भूषन' सुकषि बरतन हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुंडन में,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं ॥
****

ऐसे वाजिराज देत महाराज सिबराम
'भूषन' जे बाज की सभा निदरत हैं,
पौन-पायहीन, दृग-घूँघट मैं लीन, मौन
जल में विलीन क्यों बराबरी करत हैं।
सबते चलाक चित तेऊ कुल आलम के,
रहे उत अंतर में धीर न धरत हैं,
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर, तीर
एब भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं ॥।

9.5 भूषण की कविता: विशेषता व प्रदेय

9.5.1 भूषण की कविता: विशेषता

भूषण की कविता पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है -" रीतिकाल के भीतर श्रृंगाररस की प्रधानता रही। कुछ कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में उनके प्रताप आदि के प्रसंग में उनकी वीरता का भी थोड़ा बहुत वर्णन अवश्य किया है पर वह शुष्क प्रथापालन के रूप में ही होने के कारण ध्यान देने योग्य नहीं है। ऐसे वर्णनों के साथ जनता की हार्दिक सहानुभूति कभी नहीं हो सकती थी। पर भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्यायदमन में तत्पर, हिंदू धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिंदू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीररस के उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुए। भूषण की कविता कविकीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्ति तब तक बराबर बनी रहेगी, जब तक स्वीकृति बनी रहेगी। क्या संस्कृत साहित्य में, क्या हिंदी साहित्य में, सहस्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में ग्रंथ रचे जिनका आज पता तक नहीं है। शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है उसी की व्यंजना भूषण ने की है। वे हिंदू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं"। स्पष्ट तौर पर आचार्य शुक्ल भूषण को हिंदी जाति का गौरव कहते हैं| आचार्य शुक्ल ने भूषण को हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि कहा है, किन्तु एक सच्चा कवि हिन्दू या मुस्लिम नहीं होता; वह जनता का कवि होता है| भूषण को भी जनता के कवि के रूप में हमें स्मरण करना चाहिए| डॉ बच्चन सिंह ने भी टिप्पणी करते हुए लिखा है -" इस काल में(रीतिकाल में) वीर रस की कवितायेँ तो अन्य लोगों ने भी लिखी पर श्रृंगार या नायिका भेद का मुख वीररस की ओर मोड़ने का श्रेय भूषण को ही है"|

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कथ्य की दृष्टि से तो भूषण की कविता की प्रशंसा की, किन्तु भाषा व व्याकरण की त्रुटियों को देखकर आलोचना भी की| आचार्य शुक्ल ने लिखा है - "भूषण की भाषा में ओज की मात्रा तो पूरी है पर वह अधिकतर अव्यवस्थित है| व्याकरण का उल्लंघन प्राय: है और वाक्य रचना भी कहीं-कहीं गड़बड़ है| इसके अतिरिक्त शब्दों के रूप भी बहुत बिगाड़े गए हैं| और कहीं -कहीं तो गढ़न्त के शब्द रख दिए गए हैं"| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्पष्ट रूप से भूषण की भाषा की कमियों की ओर हमारा ध्यान खींचा है| किन्तु डॉ बच्चन सिंह ने भूषण की भाषा के सकारात्मक पहलू की ओर संकेत किया है| उन्होंने लिखा है- " वीररस की कविता में द्वितवर्णों और संयुक्ताक्षरों के प्रयोग की जो परिपाटी चली आ रही थी, भूषण ने उसी का अनुसरण किया। उनकी कविता में अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द भी उस काल के अन्य कवियों की रचनाओं की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं। मुगलों से बराबर युद्ध करते हुए मराठों की अपनी भाषा में विदेशी शब्दों का आना स्वाभाविक था। भूषण को अपनी रचनाओं के माध्यम से शिवाजी के शौर्य को शत्रुओं तक संप्रेषित भी करना था। अतः इसे संप्रेषणीयता का तकाजा भी समझना चाहिए। जहाँ कहीं औरंगजेब और उसके मुसाहिबों का प्रसंग आया है वहाँ कवि खड़ी बोली की छौंक डाल देता है-'सिवाजी की बढ़ाई औ, हमारी लघुताई क्यों कहत गरौ परिवे को पातसाह गरजा।' मुसलमानों ने इस बोली को आगे बढ़ाने में विशेष योग दिया है, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता"|

9.5.2 भूषण का साहित्य: प्रदेय

भूषण को राष्ट्रीय कवि के रूप में मूल्यांकित किया गया है| राष्ट्रीय कवि होने का तात्पर्य यह है कि ऐसा कवि अपनी कविता को राष्ट्रीय आकांक्षाओं से जोड़ता है| भूषण का समय दरबारी कविता का समय था| भूषण स्वयं दरबारी कवि थे| लेकिन इनकी कविता में राजा छत्रसाल और महाराज शिवाजी की चाटुकारिता भर नहीं है| ये दोनों राजा अपने समय में अन्याय का प्रतिकार करने वाले राजा के रूप में मान्य रहे हैं| कुछ लोगों ने भूषण को हिन्दू जाति के कवि रूप में देखने का प्रस्ताव भी दिया है, लेकिन यह दृष्टि भी

उचित नहीं| भूषण की शिवाजी और छत्रसाल की प्रशंसा में वीरता का तत्व ही केंद्रीय रूप में उपस्थित रहा है, न कि मात्र हिन्दू होना| रीतिकाल में जब कवि श्रृंगार की रचनाओं में डूबे हुए थे, तब भूषण राष्ट्रीयता की कविता रच रहे थे, यह अपने आप में बड़ी बात थी|

भूषण वीर रस के कवि हैं| उनकी कविता ओज गुण प्रधान है | हिंदी कविता को ओज गुण देने का प्रारंभिक कार्य विद्यापति के बाद किसी ने किया है तो वे भूषण ही हैं|

भूषण का एक बड़ा योगदान काव्य लक्षण ग्रंथों के निर्माण से जुड़ा हुआ है| वे आचार्य परम्परा में भी रीतिकाल में अपना ऊँचा स्थान रखते हैं|

अभ्यास प्रश्न) 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये|

1. भूषण .....रस के कवि हैं|
2. भूषण रीतिकाल के .....धारा के कवि माने जाते हैं|
3. ..... भूषण का रीति निरूपण का ग्रन्थ है|
4. भूषण को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने .....कवि के रूप में स्मरण किया है|
5. दूषण उल्लास के रचयिता ..... हैं|

9.6 सारांश

भूषण पर केंद्रित 9 वीं इकाई का आपने अध्ययन किया इसलिए इकाई के अध्ययन के उपरांत आपने जाना कि-
* भूषण रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं| भूषण की श्रेष्ठता का आधार उनका वीर रस का कवित्व है |
* भूषण राष्ट्रीय बोध के रीतिकालीन आचार्य कवि हैं |
* भूषण एक उच्च कोटि के आचार्य हैं |
* भूषण की भाषा समर्थ भाषा है|
* भूषण की कविता में मध्यकाल का समाज, विशेष कर युद्ध भूमि और राजाओं की अहंकारप्रियता और झूठी शान का चित्रण हुआ है|

9.7 शब्दावली

नायिका भेद – स्त्रियों की शारीरिक व मानसिक स्थिति के आधार पर किया गया शास्त्रीय विभाजन
प्रतिनिधि – मुख्य
हिंदी जाति- हिंदी प्रदेश की जातीय चेतना
राष्ट्रीय कवि – राष्ट्र की आकांक्षा को मूर्त रूप देने वाला कवि
दरबारी कविता - राजदबार के हितार्थ रची गयी कविता

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) 1. सही 2. सही 3. सही 4. सही 5. सही
2) 1. वीर 2. रीतिमुक्त 3. शिवराज भूषण 4. हिन्दू जाति के प्रतिनिधि 5. कवि भूषण

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ बच्चन सिंह

9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रीतिकाव्य की भूमिका-डॉ नगेन्द्र

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'भूषण राष्ट्रीय कवि हैं' कथन की विवेचना कीजिये
2. वीर रस की कविता को भूषण की कविता के सापेक्ष विश्लेषित कीजिये

इकाई 10 बिहारी : परिचय,पाठ एवं आलोचना इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10 .2 उद्देश्य
10 .3 जीवन परिचय
10.3.1 युग परिवेश और समाज
10.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व
10.3.3 रीतिसिद्ध कवि
10.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई
10.4 श्रृंगारिक काव्य
12.4.1 संयोग श्रृंगार
12.4.2 वियोग श्रृंगार
10.5 भक्ति एवं नीति काव्य
10 .6 संरचना शिल्प
10.6.1 काव्य रूप
10.6.2 काव्य भाषा
10.6.3 अलंकार
10.6.4 छंद
10.7 संदर्भ सहित व्याख्या
10 .8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10 .11 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10 .13 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि रीतिकाव्य के तीन प्रमुख भेद हैं- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। बिहारी रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'बिहारी सतसई' है, जो बिहारी की अक्षय कीर्ति का आधार है। अधिकांश रीति कवि दरबारी थे। बिहारी रीतिकाव्यधारा के एक प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इस इकाई में हम बिहारी के काव्य पर चर्चा करेंगे। इनके काव्य में श्रृंगार की अतिशयता, विलासी वातावरण की उपज थी। बिहारी ने भी इसी दरबारी काव्य परम्परा को अपनाते हुए अपने काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को अत्यधिक महत्व दिया है।

रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण 'सुमिरन को बहानों' कहके श्रृंगार के साथ भक्ति को स्थान दिया है। बिहारी ने भी भक्ति के साथ नीतिमूलक दोहों की रचना की है। इस इकाई में आप देखेंगे कि कैसे उनकी कृष्ण भक्ति पर भी सामंती व्यवहार की छाप है और नीति से परिपूर्ण दोहों में जीवन का ठोस अनुभव बिखरा पड़ा है।

'बिहारी सतसई' श्रृंगारपरक सतसई परम्परा में तो सर्वश्रेष्ठ है, मुक्तक काव्य परम्परा भी एक अपूर्व मिसाल है। जिसमें नपे-तुले शब्दों में भावों को व्यक्त करने की अनूठी क्षमता है, जिसे पढ़कर आप स्वयं समझ जायेंगे कि बिहारी के दोहों के लिए 'नावक

के तीर' क्यों कहा जाता है। बिहारी की इस समास शैली, व्यवस्थित भाषा, वाक्य रचना को देख-पढ़कर आप कवि के अभिव्यक्ति पक्ष की कलात्मक विशिष्टताओं को समझ पायेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बिहारी का जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी सतसई की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीति काव्य परंपरा को समझ सकेंगे।
- रीति सिद्ध परंपरा क्या है? और बिहारी को रीति सिद्ध कवि क्यों कहा जाता है ? यह जान सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के आधार पर रीतिकाव्य की विशेषताएँ स्पष्ट तौर पर समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को रेखांकित कर सकेंगे।
- बिहारी काव्य की भक्ति व नीति काव्य सम्बन्धी विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के कला पक्षीय महत्वपूर्ण घटकों को रेखांकित कर सकेंगे।

10.3 जीवन परिचय

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी का जन्म सन् 1595 में ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनकी शिक्षा-दीक्षा पितृगुरु महन्त नरहरिदास की देखरेख में हुई। इनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में बीता। मथुरा में किसी ब्राह्मण परिवार में विवाह होने के पश्चात् ये यहीं बस गए। इन्होंने फारसी काव्य का भी अभ्यास किया और शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर शीघ्र ही उनके कृपापात्र बन गए। सम्राट के कृपापात्र बनते ही बिहारी वृत्ति हेतु अनेक राज्यों में आने-जाने लगे, वृत्ति का दायरा बढ़ता गया। सन् 1645 के आसपास बिहारी वृत्ति लेने जयपुर पहुँचे। कहा जाता है कि उस समय जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महाराजा जयसिंह) अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि उन्हें राजकाज से कोई मतलब न था। प्रजा और सामन्तों की सलाह से बिहारी ने निम्न दोहा लिखकर महाराज जयसिंह को पहुँचाया -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हलाल॥

इस दोहे का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। राजा और रानी दोनों प्रसन्न हुए। उन्होंने बिहारी को केवल सम्मानित ही नहीं किया अपितु प्रत्येक दोहे पर एक अशरफी देने का भी संकल्प किया। तभी से बिहारी का मान अधिक बढ़ गया। तदुपरान्त बिहारी राजकवि के रूप में जयपुर में रहने लगे और यहीं रहकर उन्होंने अपनी 'बिहारी सतसई' की रचना की। सतसई की ख्याति के पश्चात् ये पुनः मथुरा लौट आए और सन् 1664 ई. में यहीं इनका निधन हुआ।

10.3.1 युग परिवेश और समाज

युग विशेष के साहित्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना बहुत आवश्यक है क्योंकि जहाँ किसी युग का वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है वहीं दूसरी ओर वह इनके निर्माण में भी योगदान देता है। बिहारी के रचना-कर्म को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक आधारों को दृष्टिपथ पर रखना जरूरी होगा क्योंकि इसी परिवेश ने बिहारी की रचनात्मकता को गति दी है। रीतिकाल मुगल शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके पश्चात् क्रमशः ह्रास-पतन तथा विनाश का काल भी है। बिहारी का समय अकबर के शासन काल का उत्तरार्द्ध और औरंगजेब के राज्याभिषेक के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक का है। उन्होंने जहाँगीर-शाहजहाँ और औरंगजेब तीन मुगल शासकों के शासन और उनकी नीतियों को देखा था। जहाँगीर-शाहजहाँ का काल उनके राज्य विस्तार और शांति और सम्पन्नता

वैभव-विलास का काल था। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। उच्च वर्ग जहाँ आमोद-प्रमोद में मस्त था वहीं सामान्य जनता उपेक्षित और शोषित थी।

बिहारी को फारसी काव्य का अच्छा अभ्यास था जिससे शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर वे शीघ्र ही उसके कृपा पात्र बन गए। बिहारी सन् 1645 के आसपास जयपुर के महाराजा जयसिंह के दरबार में राजकवि के रूप में रहते थे। महाराज जयसिंह मुगल सम्राट औरंगजेब से मित्रता का हाथ बढ़ा लिये जाने के पश्चात् भोग-विलास में रत हो गया था। उत्तराधिकार का प्रश्न हो, चाहे राजपूतों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें मुगलों की अधीनता स्वीकार करने हेतु विवश करने का, महाराज जयसिंह ने सदैव औरंगजेब का साथ दिया। बिहारी इस बात से दुखी थे, अतः उन्होंने एक दोहे में अन्योक्ति द्वारा राजा की भर्त्सना की -

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तू पच्छीन न मारि॥

सम्राट और उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों के दोहरे शासन से सामान्य जनता त्रस्त थी। इस गलत प्रशासनिक नीति की ओर संकेत करने से भी बिहारी नहीं चूके –

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द्व।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि पावस रवि चन्द॥

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक ओर इत्र-फुलेल में डूबा शासक और शहरी वर्ग था तो दूसरी ओर दयनीय स्थिति में गुजर-बसर कर रहा भोला ग्रामीण शोषित वर्ग। इन दोनों वर्गों का सजीव चित्रण बिहारी के दोहों में देखने को मिलता है।

10.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व

बिहारी जन्मजात प्रतिभा के धनी थे। वे काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। इसके साथ-साथ उन्हें कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शनशास्त्र, राजधर्म, युद्धविद्या, गणित व कर्मकाण्ड आदि शास्त्र विषयों का भी ज्ञान था। मुगलकाल का सामाजिक जीवन सामंतवाद पर आधारित था, जिसका पूरा-पूरा प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा। विलास और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन ने इन्हें रसिक बनाया जिससे इन्होंने जीवन में भी भोग पक्ष को स्वीकृति दी। बिहारी के निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व से शंका, वेदना, अनिश्चीतता, लघुता, आत्महीनता, विवशता आदि संकुचित भावनाएँ बहुत दूर थीं। इसके विपरीत आस्था, विश्वास, उत्साह, साहस और संकल्प जैसे आशावादी गुण उनमें विद्यमान थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह के अनुचित कार्यों पर कटु आक्षेप करने में भी संकोच नहीं किया। (बिहारी अनुशीलन, पृष्ठ 267) इस प्रकार बिहारी के पास एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व था।

कृतित्व - बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है। इसे 'सतसई' या 'सतसैया' नाम से भी जाना जाता है। इस रचना में बिहारी के 713 मुक्तक परम्परा के दोहे तथा सोरठे संगृहीत हैं। हिन्दी में सतसई परम्परा के प्रारम्भ का श्रेय 'बिहारी सतसई' को प्राप्त है। इसके अनुकरण पर सात सौ दोहों के संग्रह को 'सतसई' के रूप में प्रकाशित करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया और एक समृद्ध सतसई परम्परा सामने आई। आधुनिक काल से पूर्व तक सतसई शब्द केवल बिहारी सतसई और उसकी लोकप्रियता का आभास कराता है वहीं दोहों में निहित गूढ़ार्थ और उसके प्रभाव को भी स्पष्ट करता है -

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर। देखन में छोटे लगैं घाव करें गंभीर॥

बिहारी के दोहों के लिए 'गागर में सागर भरने' की उक्ति प्रसिद्ध है। मुक्तक रचनाओं की उत्कृष्टता हेतु रामचन्द्र शुक्ल कल्पना की समाहारशक्ति और भाषा की समास शक्ति को आवश्यक मानते हैं। इन दोनों विशेषताओं का समावेश इस रचना में देखने को मिलता है। बिहारी सतसई श्रृंगार प्रधान रचना है जिसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अनूठी व्यंजना हुई है, तथापि भक्ति नीति आदि अन्यान्य विषयों की अभिव्यक्ति भी इसमें बखूबी देखी जा सकती है।

10.3.3 रीतिसिद्ध कवि

रीतिकालीन साहित्य के रचयिता कवि तीन प्रकार के थे- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध व रीतिमुक्त। बिहारी मुख्यतः रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से काव्य तत्वों का निरूपण नहीं किया और नहीं लक्षण ग्रन्थ की शैली को अपनाया। इस प्रकार विशुद्ध

काव्य का सर्जन करने वाले कलाकार सच्चे अर्थों में रीतिसिद्ध कवि हैं और उनका काव्य रीतिसिद्ध काव्य है। ऐसा नहीं है कि बिहारी रीतिशास्त्र की परम्परा से अनभिज्ञ हैं, काव्य का शास्त्रीय आधार उन्हें ज्ञात नहीं वरन् रीति शास्त्र की परम्परा में वे पूरी तरह सिद्ध हैं और रचनाकर्म में प्रवृत्त होने पर उनकी दृष्टि रस अलंकार, ध्वनि तथा नायिका भेद आदि लक्षणों पर पूरी तरह केन्द्रित रही है। यद्यपि बिहारी ने 'सतसई' की रचना लक्षण गंथ के रूप में नहीं तथापि दोहा बनाते समय बिहारी का ध्यान काव्य लक्षणों पर अवश्य केन्द्रित था। शुक्ल जी का भी मत है कि 'बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है पर 'नखशिख' 'नायिका भेद' षट् ऋतु वर्णन के अन्तर्गत उनके सभी श्रृंगारी दोहे आ जाते हैं।' इस प्रकार वे रीतिशास्त्र की एक बँधी बधाई लीक पर न चलते हुए भी उससे कहीं आगे निकल जाते हैं। बिहारी की इसी विशेषता पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं- 'शास्त्र स्थिति संपादन मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। कहीं तो चमत्कारातिशय के लिए ये उक्तियाँ बाँधते थे और कहीं रसाभिव्यक्ति के लिए। कही इन्होंने रीतिशास्त्रों में गिनाई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे। किसी विशेष नायिका या नायक के स्वरूप के लिए जो शर्तें शास्त्रों में कही हुई हैं वे उप लक्षण मात्र हैं, अर्थात् वे मार्ग निर्देश के लिए हैं। उनके सहारे नई-नई कल्पनाएँ स्वयं कवि कर सकता है और भी बातें वह ला सकता है' (बिहारी की वाग्विभूति पृष्ठ 22)। इस प्रकार बिहारी रीतिसिद्ध काव्य धारा के एक अन्यतम कवि हैं।

इस समय फारसी राजभाषा थी और फारसी कवियों को भी दरबार में राज्याश्रय प्राप्त था। अतः तत्कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर बिहारी ने चमत्कारिक उक्तियों का नवीन प्रयोग अपने दोहों में किया है -

करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़त नीचु। दीने हूँ चसमा चखनु चाहे लहै न मीचु॥

विरह की तीव्रता ने नायिका को इतना क्षीणकाय कर दिया है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूँढ पा रही है। ऐसा अस्वाभाविक किन्तु रोमांचक चित्रण फारसी में ऊहात्मक वर्णन कहा जाता है, जिसका प्रयोग बिहारी ने स्थान-स्थान पर किया है क्योंकि बिहारी को फारसी कवियों का साहचर्य तो प्राप्त था ही साथ ही यह दरबारी परिवेश की माँग भी थी। बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका- भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि का ध्यान रखकर सुन्दर दोहों की रचना कर एक चमत्कारिक स्वतंत्र काव्य सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस काव्य की प्रेरणा का आधार अंतःकरण की स्फूर्ति के प्रभाव से न होकर दरबारी है। जिसके कारण इसकी बराबरी घनानन्द, देव आदि रीतिमुक्त कवियों से नहीं की जा सकती।

10.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई

रचना शैली की दृष्टि से काव्य दो प्रकार का होता है- प्रबन्ध काव्य व मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में जहाँ सर्गों की कथावस्तु का परस्पर सम्बन्ध रहता है वहीं मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद्य स्वयं में स्वतंत्र होता है। (बिहारी ने प्रबन्ध काव्यों की रचना न कर मुक्तकों द्वारा काव्य-शास्त्र का बोध कराना प्रारम्भ किया।) रस की पूर्णता का बोध कराने के लिए जितना अवकाश प्रबन्ध काव्य में होता है उतना मुक्तक काव्य में नहीं। मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य का भेद स्पष्ट करने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथन को उद्धृत किया जा सकता है ''मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 168) इसी से यह सभा समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खंडदृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।

बिहारी में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समाहार शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान थी, जिसकी आवश्यकता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मुक्तक रचनाकार की सफलता के लिए आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि बिहारी एक सफल मुक्तक कार साबित हुए। कल्पना की समाहार शक्ति का एक उदाहरण देखिये-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाय॥

इसी प्रकार भाषा की समाहार शक्ति का उदाहरण देखिये-

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौंन में करत है, नैननु ही सों बात।।

भारतीय साहित्य में मुक्तक पद्यों के संग्रहों को प्रारम्भ में शतक, सप्तशती तथा हजारा के नाम से अभिहीत किया गया है। हिन्दी के रचनाकारों ने 'सतसई' शब्द का प्रयोग अधिक किया। सतसई शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' शब्द का विकृत रूप है। हिन्दी में संस्कृत-प्राकृत को ही आदर्श मानकर 'सतसई' लिखने की परम्परा विद्यमान रही। संस्कृत में भक्ति एवं स्तोत्र सम्बन्धी साहित्य के लिए 'सप्तशती' का प्रयोग होता था। दुर्गाशप्तसती, वैराग्य-शतक, विष्णु सहस्रनाम आदि इस प्रकार के ग्रन्थ हैं किन्तु ये मुक्तक रूप में नहीं हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मानना है कि भारत में आभीर जाति के आगमन के साथ ही उनके स्वच्छन्द और ऐहिकतामूलक जीवन का प्रभाव भारतीयों पर पड़ा और साधारण जीवन में व्याप्त प्रेम-भावनाओं, श्रृंगगार सम्बन्धी चेष्टाओं एवं दैनिक हास-परिहासपूर्ण क्रिया-व्यापारों का वर्णन ही इन 'सप्तशती' का विषय बनने लगा- इसका पहला प्रयास हाल कविकृत 'गाथा सप्तशती' के अन्तर्गत दिखाई देता है। यह प्राकृत भाषा में लिखित 700 आर्या छन्दों का संग्रह है। इसमें प्रणय के मार्मिक चित्र हैं। इसके पश्चात् सतसई साहित्य की परम्परा में भर्तृहरि कृत 'श्रृंगार शतक', अमरूक कृत 'अमरूक शतक', तदन्तर गोवर्द्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' आती हैं। 'आर्या सप्तशती' में श्रृंगार के संयोग-वियोग के चित्र संस्कृत के आर्या छन्द में लिखे गये हैं। संस्कृत साहित्य में सप्तशती ग्रन्थों में श्रृंगार रस की मार्मिक व्यंजना मिलती है। हिन्दी में लिखी गयी 'सतसई' को सूक्ति सतसई और श्रृंगार सतसई दो श्रेणियों में बाँटा जाता है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार सतसई श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी प्रेरणा से हिन्दी में अनेक 'सतसई' और 'हजारा' शीर्षक ग्रन्थ रचे गये। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि रामचरित मानस को छोड़कर इसपर सबसे अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि बिहारी सतसई एक लक्ष्य ग्रन्थ है, लक्षण नहीं। इसका समस्त रचना विधान रीतिबद्ध है। इसमें लगभग सभी प्रमुख अलंकार सहज रूप से समाविष्ट हैं। ध्वन्यात्मकता इसका प्रमुख गुण है। किसी भी दशा, मनोभाव या परिस्थिति का चित्रण करने में बिहारी सिद्धहस्त हैं। प्रत्येक शब्द का रूप, गुण, क्रिया के आधार पर अपना विशिष्ट अर्थ सौन्दर्य होता है। बिहारी शब्दों की इस अर्थवत्ता के प्रति बहुत जागरूक हैं। शब्दों के अनेक पर्याय होते हुए भी वस्तु विशेष के लिए प्रयुक्त वह पर्याय शब्द अत्यन्त सटीक होने से विवक्षित वस्तु को जिस प्रकार से प्रकट करता है उसे वहाँ कोई अन्य शब्द प्रकट नहीं कर सकता। बिहारी ने ऐसे कई शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे भाव वस्तु का बोध आसानी से होता है और भाषा की सामर्थ्य बढ़ जाती है, ऐसे शब्द अपने किसी पर्याय से नहीं बदले जा सकते। उदाहरणार्थ-

पूस-मास सुनि सखिनु पैं साई चलत सवारू।
गहि कर बीन-प्रबीन तिय राग्यौ रागु मलारू।।

पूस मास में नायक के विदेश जाने की बात सुनकर नायिका बीणा लेकर मल्हार राग गाना प्रारम्भ कर देती है ताकि वर्षा हो जाए और नायक का विदेश गमन स्थगित हो जाए। बीणा बजाने में कुशल नायिका के लिए 'प्रवीण' विशेषण महत्वपूर्ण है। इसके स्थान पर कुशल, चतुर आदि शब्दों का प्रयोग सटीक नहीं बैठता। नायिका के भाव, अनुभाव और सौन्दर्य वर्णन में बिहारी अद्वितीय हैं। शुक्ल जी के शब्दों में 'बिहारी की रसव्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है। जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है-'

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय
सौंह करै भौंहनि हँसै, देन कहे नारि जाय

यहाँ पर 'सौंह करना', भौंहों में हँसना, देने के लिए कहना, नट जाना आदि सभी कार्य-व्यापार किसी विशेष उद्देश्य से चेष्टापूर्वक किए गए हैं।

बिहारी सतसई में आए अनेक दोहे 'गाथा सप्तशती', 'अमरूक शतक', 'आर्या सप्तशती' तथा अन्य पूर्ववर्ती कवियों के काव्य पर आधारित हैं, इस प्रकार के दोहों के आधार पर डॉ. गुप्त इन दोहों को अनुवाद कला का प्रमाण मानते हैं न कि काव्य कला का। बिहारी सतसई के आधार पर मतिराम ने 'मतिराम सतसई' बनाई किन्तु अध्ययन की गम्भीरता, चिन्तन की प्रौढ़ता एवं भाषाई अधिकार के क्षेत्र में 'मतिराम सतसई' की बिहारी सतसई से कोई तुलना नहीं। 'बिहारी सतसई' में मानव-मनोवृत्तियों के सहज, मनोरम चित्रों के अंकन के साथ-साथ तत्कालीन जन-जीवन का जीता-जागता चित्र भी उपस्थित है। निःसन्देह 'बिहारी सतसई' को सम्पूर्ण सतसई साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रीति सिद्ध कवि किसे कहते हैं? उत्तर दीजिये।

.....

.....

.....

2. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

क. बिहारी की रचना को .....कहा जाता है- (बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई)

ख. बिहारी .....काव्य धारा के कवि हैं- (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध)

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित रचनाओं में से सतसई परम्परा की सबसे पहली रचना कौन-सी है ? सही विकल्प का चुनाव करें -

(क) आर्या सप्तशती (ख) अमरूक शतक

(ग) गाथा सप्तशती (घ) भर्तृहरि शतक

10.4 श्रृंगारिक काव्य

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'श्रृंगार काल' नाम देते हैं। इस नाम के पीछे उनका आधार यही था कि इस काल में श्रृंगार रस से परिपूर्ण कविताओं की रचना ही अधिक हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी संकेत किया है कि 'वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 223) किन्तु 'श्रृंगार काल' नामकरण में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि इस युग में सिर्फ श्रृंगार रस की ही रचनाएँ नहीं हुई, बल्कि वीर, भक्ति, नीति, हास्य आदि विभिन्न विषयों पर भी काव्य रचनाएँ हुई।

रीतिकालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति श्रृंगार का प्राधान्य है। इस युग में श्रृंगारिकता का जो प्रबल वेग दिखाई देता है, इसके लिए तद्युगीन परिस्थितियाँ तो बहुत हद तक जिम्मेदार हैं, साथ ही संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं से चली आ रही मुक्तक काव्यों की एक ऐसी परम्परा का भी प्रभाव है जिसमें श्रृंगार रस का निर्बाध और स्वच्छन्द चित्रण विद्यमान है। राधा-कृष्ण आदि देवी-देवताओं की प्रणय-लीलाओं के माध्यम से श्रृंगार का खुलकर वर्णन हो रहा था। इस काल के कवियों ने राधा कन्हाई के सुमिरन के बहाने श्रृंगार रस का भरपूर चित्रण किया। बिहारी के अतिरिक्त देव, पद्माकर, भिखारीदास आदि कवियों ने श्रृंगार को समृद्धि दी। सामंतकालीन वातावरण में वैभव विलास की अधिकता थी। सर्वत्र रसिकता विद्यमान.....। ऐसे सामन्ती परिवेश में पालन-पोषण होने के कारण सौन्दर्य के वर्णन में कवियों की दृष्टि 'श्रृंगार को सार किशोर-किशोरी' पर अटक गई। शील एवं सौन्दर्य से सम्पन्न अलौकिक सत्ता रूप-गुण सम्पन्न नारी की काम चेष्टाओं आदि में सिमट गई। बिहारी रचित यह दोहा इस प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है-

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दृति करि अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयागु॥

अर्थात् तीर्थ व्यर्थ है। श्रीकृष्ण और राधा के शरीर की आभा केलि-क्रीड़ाओं में ही प्रयाग है।

तत्कालीन परिवेश और दरबारी संस्कृति से बिहारी गहरे जुड़े हुए थे। श्रृंगार कामुकता का पर्याय बन गया था। ऐसे में विलासी जनों के योग्य कामोद्दीपक एवं मनोरंजक उन कलित, ललित एवं कुसुमित मालती कुंजों का वर्णन कर बिहारी ने तत्कालीन जीवन में व्याप्त विलासिता का जीता-जागता चित्र अंकित किया है-

घाम घरीक निवारियै कलित-ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर-तमाल-तरु, मिलित मालती कुंज॥

फारसी संस्कृति और साहित्य की श्रृंगारिकता का प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा। ऊहात्मक शैली में लिखे गए दोहे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। बिहारी के प्रेम वर्णन का मुख्य आधार शारीरिक सौन्दर्य है। उनके लिए प्रेम जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है, क्रीड़ा मात्र है, जो श्रृंगार के बाहरी पक्ष पर अधिक केन्द्रित है।

10.4.1 संयोग श्रृंगार

साहित्य में श्रृंगार रस को रसराज कहा जाता है। इसका स्थायी भाव रति है। श्रृंगार के दो भेद माने गये हैं- संयोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार या वियोग श्रृंगार बिहारी ने श्रृंगार के संयोग पक्ष का वर्णन करते हुए नायिका का नखशिख वर्णन, प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ, विभिन्न क्रीड़ा-व्यापारों, काम-चेष्टाओं, अठखेलियों, विभिन्न प्रकार की रति-क्रीड़ाओं आदि का मनोयोग से वर्णन किया है। बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिकाओं के अभिसार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में अपने प्रेमी से मिलने जाती नायिका शुक्लाभिसारिका और कृष्णपक्ष की रात्रि में प्रेमी के समीप अभिसार हेतु जाती नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में प्रिय मिलन को जाती नायिका का सुन्दर वर्णन बिहारी ने किया है -

जुवति जोन्ह में मिलि गईं नैंकु न होति लखाइ।
सौंधे कैं डौरैं लगी अली चली संग जाइ॥

गौरवर्ण की नायिका चाँदनी के प्रकाश में एकाकार हो गई, किसी को दिखाई नहीं पड़ी, साथ चलने वाली सखी भी उसकी सुगन्ध के सहारे चल रही है। अभिसार के उपरान्त लौटते हुए मार्ग में चन्द्रमा के प्रकाश से उत्पन्न उसकी घबराहट, भयभीत होने, छिपने आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन निम्नांकित दोहे में देखा जा सकता है-

अरी खरी सरपट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगे मधुपनि लई भागनु गली अंधेरि॥

बिहारी ने संयोग वर्णन में उन बाहरी व्यापारों का भी सुदर वर्णन किया है, जिससे नायक-नायिका परस्पर आनन्दानुभूति पाते हैं। प्रिय की सभी वस्तुएँ व सभी कार्य प्रियतमा के लिए सुखद हैं। प्रिय द्वारा पतंग उड़ाये जाने पर प्रिया पतंग की परछाई छूती हुई, आँगन में पगली-सी दौड़ती-फिरती है-

उड़ति गुड़ी लखी ललन की, अँगना अँगना माँह।
बौरि लौं दौरति फिरति, हुवति छबीली छाँह॥

इस प्रकार बिहारी ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही भावोत्तेजक, मनोरंजक एवं वासनात्मक रूप प्रकट किया है।

10.4.2 विप्रलभ या वियोग श्रृंगार

बिहारी ने वियोग के विभिन्न भेदों एवं विभिन्न काम- दशाओं की बड़ी ही आकर्षक व सजीव अभिव्यक्ति दी है। इनके वियोग वर्णन में फारसी की उहात्मक शैली और सूफी ढंग की प्रेम दशाओं का पूरा-पूरा प्रभाव है। वियोग की सामान्यतः चार दशाएँ मानी गयी हैं-

1. पूर्व राग 2. मान 3. प्रवास और 4. करुण

वियोग से तात्पर्य है- दो प्रेमियों का विछोह। बिहारी ने वियोग की इन सभी दशाओं का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। 'पूर्व राग' से तात्पर्य है- प्रिय मिलन से पहले उसके गुणों को सुनकर या उसका रूप सौन्दर्य देखकर उसके प्रति हृदय में जो प्रेम व आकर्षण होता है परन्तु किसी कारणवश मिलन सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में नायिका की जो स्थिति होती है वह पूर्व राग है। उसका सजीव चित्रण बिहारी द्वारा निम्न रूप में किया गया है -

हरि-छवि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैंन।

भरत, ढरत, बूढ़त, तरत, रहत घरी लौं नैन ॥

अर्थात जब से नायिका के नेत्र प्रिय की छवि रूपी जल में बड़े हैं तब से क्षणभर भी उससे नहीं बिछुड़ते। समय-सूचक कशेरी की भाँति निरन्तर भरते-ढरते, डूबते-उतराते रहते हैं। वियोग के दूसरे भेद 'मान' को दो भागों में बाँटा गया है- प्रणय मान और ईर्ष्या मान। 'प्रणय मान' में नायक-नायिका छोटी-सी बात पर एक-दूसरे से रूठकर विरह की आग में जलते हैं। जबकि 'ईर्ष्या मान' में प्रिय को अन्य सुन्दरियों के प्रति आशक्त देख नायिका के हृदय में नायक के प्रति क्रोध होता है। बिहारी द्वारा अंकित 'प्रणय मान' का सुदर उदाहरण द्रष्टव्य है- जिसमें नायक व नायिका दोनों ही रूप सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं और गर्वित हैं। दोनों ही यह ठान लेते हैं कि देखें पहले कौन मनाता है, कौन मान छोड़ता है और कौन पहले मानता है -

दोऊ अधिकाई भरे एकै गौं गहराई।
कौनु मनावै, को मनै, माने मन ठहराई ॥

'प्रवास' सम्बन्धी विरह का वर्णन बिहारी सत्सई में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस तरह के वर्णन में बिहारी कुशल हैं। जाड़े की रात में नायिका प्रवासी प्रियतम की विरहाग्नि में जल रही है, उसकी सखियाँ स्नेहवश उसके समीप जाने के लिए गीले कपड़ों की ओट लेती हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है-

आड़े दै आलै बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस, सखी सबै ढिंग जाति॥

बिहारी ने नायक के प्रवास से उत्पन्न नायिका के विरह का वर्णन करते हुए उसके अतिशय कष्ट का चित्रण करने के लिए अतिशयोक्तियों का सहारा लिया है। कहीं नायिका विरह में इतनी कृशकाय हो गई है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूंढ पा रही है तो कहीं विरहाग्नि में जलती नायिका के ऊपर गुलाब जल की शीशी उड़ेली जाती है किन्तु वह नायिका के शरीर में गिरने से पहले ही उसकी विरहाग्नि की लपटों से सूख जाता है; उदाहरणार्थ –

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़तु नीचु।
दीने हूँ चसमा चखनु चहै लहै ना मीचु ॥

इसी प्रकार –

औंधाई सीसी सु लखि बिरह-बरति बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छीटौं छुई न गात ॥

बिहारी का विरह-जन्य काम दशाओं का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है। साधारणतया दस काम दशाएँ मानी गई हैं- जिन्हें चिंता, अभिलाषा, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण नाम दिए गए हैं। इन सभी दशाओं का वर्णन बिहारी ने अपने काव्य में किया है।

10.5 भक्ति एवं नीति काव्य

बिहारी का संबंध न किसी भक्ति सम्प्रदाय से था न किसी मतवाद से। फिर भी कुछ विद्वानों द्वारा उन्हें विभिन्न मत-मतान्तरों से जोड़ा गया है; उदाहरणार्थ डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने इन्हें हरिदासी सम्प्रदाय से प्रभावित व निम्बार्क मत का अनुयायी बताया है। हरिदासी सम्प्रदाय में युगलोपासना का भाव बड़ा महत्वपूर्ण है। बिहारी के इस दोहे में यह भाव निरूपित है-

नितप्रति एकत ही रहत वैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥

बिहारी ने कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्व दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में यह विशेषता देखने को मिलती है; उदाहरणार्थ -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

और निम्नलिखित दोहे के आधार पर बिहारी को अद्वैतवादी समझा जाता है -

मैं समुझयौ निराधार यह जग काचों काँच सौं।

इस प्रकार बिहारी पर अनेक मतों का प्रभाव दिखाया जाता है जो उनके किसी एक मत विशेष के अनुयायी न होने को ही बल देता है। वस्तुतः बिहारी को राम-कृष्ण, सगुण-निर्गुण आदि सभी स्वीकार्य थे। बिहारी ने इन सभी को सामान्य भाव में ग्रहण किया है। भक्ति संबंधी दोहों में कहीं बिहारी ने 'मैं समुझयौ निराधार यह जग काँचो काँच सौ' कहकर संसार को कच्चे काँच के समान क्षणभंगुर कहा है, तो ''एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ'' कहकर इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसी अलौकिक रूप की आभा को प्रतिम्बित पाया है। जिस प्रकार सूरदास 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको' कहकर स्वयं को महापापी बताकर श्री कृष्ण भक्ति की चाह रखते हैं। उसी प्रकार बिहारी भी कहते हैं कि हे मुरारि! अब देखना है कि आपका विरद किस प्रकार कायम रहता है क्योंकि आप एक सामान्य पापी गिद्ध को तारकर, मुझ महापापी से आकर उलझे हो। उदाहरणार्थ -

कौन भाँति रहिहै विरदु, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसों आइकै गीधे गीधहिं तारि॥

तुलसी की भाँति दैन्य का अपार सागर भी बिहारी के हृदय में हिलोरें भरता है, जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है –

हरि कीजत विनती यहै तुमसौ बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डयौं रहयौ पयौं यही दरबार॥

बिहारी का ध्यान भक्ति भावना से अधिक उक्ति वैचित्र्य और वाणी कौशल पर दिखाई देता है। भक्ति के साथ मनोरम कवित्व का उदाहरण द्रष्टव्य है –

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल॥

अर्थात् संसार चाहे मेरी कितनी निन्दा करे किन्तु हे दीनदयाल मैं अपनी बुराइयाँ न छोडूंगा क्योंकि आप त्रिभंगी हैं। मेरे सीधे-सरल चित्त में निवास करने में आपको कष्ट होगा, अतः मेरा टेढ़ा (बुरा) रहना ही श्रेयस्कर है। बिहारी सहित सभी रीतिकालीन कवियों के लिए कहावत है-

काल्हि के सुकवि जो पै रीझि है तो कविताई।
न तू राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

बिहारी की श्रृंगारपूर्ण भक्ति के विषय में भी डॉ. नगेन्द्र द्वारा रीतिकालीन कवियों के लिए कही गई ये बात बिहारी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है - ''वास्तव में यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठे होंगे तो राधाकृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरू मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी।'' बिहारी द्वारा भक्तिपरक दोहों के साथ नीति विषयक दोहों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बिहारी सुख-दुख को समान रूप से ग्रहण करने के लिए कहते हैं। सामान्यतः व्यक्ति दुख में गहरी साँसें लेता है और सुख में ईश्वर को भूल जाता है -

दीरघ साँस न लेई दुःख, सुख साईहि न भूल। दई-दई क्यों करत है, दई-दई सु कबूलि॥

बिहारी ऐसे स्वर्ण धन की अधिकता को मनुष्य के लिए हानिकारक मानते हैं, जो उसे घमण्ड से परिपूर्ण करने या पागल बना देने में सहायक होता है -

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय। या खाये बौराय जग, या पाये बौराय॥

बिहारी के काव्य में सामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक दोहे विद्यमान हैं। जो नीति के साथ-साथ चमत्कारपूर्ण भी हैं, और उनमें जीवनानुभव की एक विशाल अमूल्य राशि संचित है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बिहारी के काव्य में मुख्य रूप से .....का वर्णन हुआ है।
2. वियोग श्रृंगार के मुख्य भेद कौन-कौन से हैं ? उचित शब्द छाँटकर लिखिए -
(क) ..... (ख) .....
(ग) .....(घ) .....

10.6 संरचना शिल्प

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। तत्कालीन परिवेशानुकूल बिहारी साहित्य का शिल्प पक्ष बेजोड़ बन पड़ा है। ब्रज भाषा पर असाधारण अधिकार, लघु कलेवर युक्त छंद, शब्दों का सटीक प्रयोग, भाषा की समाहार शक्ति, रसों की अनूठी व्यंजना, भाषा में चमत्कार प्रदर्शन, उक्ति वैचित्र्य ये सब विशेषताएँ बिहारी की कलागत उत्कृष्टता को ही दर्शाती हैं। इन्हीं सब आधारों पर बात करते हुए आप बिहारी के संरचना शिल्प को निम्नांकित रूप में समझ सकते हैं -

10.6.1 काव्य रूप

बिहारी अपने सरस मुक्तकों के कारण प्रसिद्ध हैं। अपने वक्तव्य को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बिहारी ने तत्कालीन दरबारी परिवेश में प्रबन्ध रूप में रचना न कर मुक्तक शैली को अपनाया। आचार्य शुक्ल ने भी मुक्तकों को सभा-समाज में लिए अधिक उपयुक्त बताया है। सवैय्या, घनाक्षरी छंद का प्रयोग न करके बिहारी ने दोहा छंद का प्रयोग अपनी रचना में किया है। दोहा, छंद को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि दोहा अर्द्ध सम छंद है। इसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके चारों चरणों में अड़तालीस मात्राएँ होती हैं।

मुक्तक में पूर्वापर किसी छंद से लगाव न होकर भी वह पूर्ण रूपेण स्वतंत्र होकर अपना अर्थ व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसीलिए बिहारी ने श्रृंगार रस की जितनी भी अवस्थाएँ हो सकती हैं उनका वर्णन दोहों के माध्यम से किया है। जिनके द्वारा अनुभावों की चमत्कृत कर देने वाली योजना दृष्टव्य है -

भौंहनि त्रासति, मुँह नरति, आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करू कूँची आगैं आवति जाति॥

यहाँ पर अनुभावों की सुन्दर व्यंजना है। बिहारी के मुक्तक काव्य की कुछ और विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं -

1. मुक्तक काव्य में बिहारी ने भाषा और कल्पना की समाहार शक्ति के प्रयोग से बड़े भावों को उत्कर्ष प्रदान किया गया है -

घर घर डोलत दीन हैं, जन-जन जाचतु जाइ।
दियै लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥

लोभ रूपी चश्मे की कल्पना से इस दोहे में भावों की उत्कृष्टता द्रष्टव्य है।

2. बिहारी के मुक्तक काव्य में पग-पग पर काव्य सौन्दर्य परिलक्षित होता है। बिहारी की वाणी अलंकारमय और वक्रता से मंडित है।
3. यथा स्थान सूक्तियों का अनुपम प्रयोग बिहारी मुक्तक काव्य की विशेषता है –

'मुनि गुनि सबकें कहें निगुनि गुनी न होतु।'

क. वह चितवनी कहु और जिहि बस होतु सुजान।
ख. बड़े न दूजै गुननू बिनु बिरद-बड़ाई पाइ
ग. संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध

4. ऊहात्मक शैली में लिखे गये मुक्तक काव्य ने अत्यधिक लोकप्रिय बनाया है –

'आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ कि राति, इत आवत चली जात उत चली छसातक हाथ,
साहसु ककै, सनेह बस सखी सबै ढिंग जाति'

5. सामन्ती समाज और उसकी विलासप्रियता तथा तत्कालीन जन जीवन को बिहारी के मुक्तकों द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहिं काल।
अली कली ही सों बिन्ध्यो,आगे कौन हवाल॥

इसी प्रकार -

दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुख-द्वंद्व।
अधिक अधेरो जग करत, मिलु पावस रवि चन्दु॥

संक्षेप में कहा जा सकता है कि छोटे-छोटे मुक्तक छंद में बिहारी ने जितने भाव भरे हैं वैसी भाव संयोजना अन्यत्र दुर्लभ है।

10.6.2 काव्य भाषा

बिहारी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है। यह इस काल की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। ब्रज भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। बिहारी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, 'उनको शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। शब्द और वर्ण उनके दोहों में नगों के समान जड़े हैं और रत्नों की आभा बिखेरते हैं। शब्द को माँजने, चमकाने, मोड़ने और सँवारने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी रचना में ब्रजभाषा अपनी प्रौढ़ता और भाव सम्पन्नता में इठलाती हुई चलती है। वह लय और गति, संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है।' इसका उदाहरण निम्नांकित दोहों में देखा जा सकता है-

अंग-अंग नग जगगति, दीप सिखा-सी देह।
दीया बुझाए हूँ रहै, बड़ो उजेरो गेय॥

इसी प्रकार

रस सिंगार मंजन किये, कंजन मंजन दैन।
अंजन रंजन हूँ बिना, खंजन, गंजन नैन॥

उपर्युक्त दोहों से स्पष्ट है कि भाव, अनुभूति और चेतना को बिहारी किस प्रकार मार्मिक शब्दों और प्रभावशाली बिम्बों में प्रकट करने की क्षमता रखते हैं।

बिहारी ध्वनि के मर्मज्ञ थे, इसलिए उनकी भाषा में व्यंजना के एक से एक उदाहरण मिलते हैं। लक्षणा व्यंजना का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

कत सकुचत निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैन।
कहा करौ जो जाय ये, लगैं लगौंहैं नैन॥

प्रस्तुत दोहे का लक्ष्यार्थ यह है कि तुम स्वयं दोषी हो तुम्हें न भय है, न संकोच। नेत्रों का कुछ भी दोष नहीं अर्थात् तुम बड़े बेहया हो।

बिहारी की रचनाओं में कई भाषाओं और बोलियों के शब्द पाए जाते हैं। शब्दों का यह वैविध्य उनकी भाषा समृद्धि और गतिशीलता का परिचायक है ही, उनके विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का भी सूचक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उनमें हिन्दी की अनेक बोलियों, कई प्रादेशिक भाषाओं और अरबी, फारसी के असंख्य शब्द स्वाभाविकता के साथ समाहित हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने उनकी भाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

10.6.3 अलंकार विधान

बिहारी काव्य की अलंकार योजना अनुपम है। उन्होंने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। 'भूषण बिनु न बिराजहिं, कविता बनिता मित्त' सिर्फ सिद्धान्त वाक्य न होकर प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों द्वारा व्यवहार में लाया गया। चमत्कार-प्रदर्शन एवं वाणी कौशल दिखाने की प्रबल प्रवृत्ति के वशीभूत बिहारी ने भी अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग कर प्रस्तुत-अप्रस्तुत भावों की अनूठी व्यंजना की है। श्लेष बिहारी का प्रिय अलंकार है। काव्य में जहाँ पर शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है, किन्तु कवि प्रयुक्त शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर अर्थ का चमत्कार समाप्त हो जाता है। निम्नांकित दोहे में झाँई, स्यामु, हरित दुति शब्दों के तीन-तीन अर्थ निकलते हैं, सिर्फ 'स्याम' शब्द के स्थान पर भी यदि कृष्ण या मुरारी शब्द रख दें तो पूरे दोहे का चमत्कार खत्म हो जाता है-

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरिक सोई।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होई॥

शब्दालंकारों का प्रयोग बिहारी ने खूब किया है। उनके दोहों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा आदि अलंकारों के प्रसंगानुकूल सुन्दर चित्रण से काव्य सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

विरह वेदना के अधिक्य के वर्णन में बिहारी ने अतिशयोक्ति अलंकार की सुन्दर व्यंजना की है। जैसे- विरह-विदग्ध नायिका के ऊपर गुलाब-जल की शीशी उड़ेलने पर उसके बीच में ही सूख जाने से नायिका के ऊपर न पड़ने या ऐसी ही अन्य विरहिणियों के शीत में भी गरमी का अनुभव करने को बिहारी ने अतिशयमूलक अलंकारों के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। जैसे-

औंधाई सीसी सु लाखि बिरह-बरति बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छीटौं हुई न गात॥

बिहारी का प्रत्येक दोहा अलंकारों के अप्रतिम विधान से ओत-प्रोत है। नायिका के अंग-प्रत्यंग के सादृश्य पर अलंकारों की व्यापक योजना की है। कहीं नायिका के नेत्रों से हिरनी के नेत्रों की समता की है। फिर हिरनी के नेत्रों से नायिका के नेत्रों को श्रेष्ठ कहकर व्यतिरेक अलंकार की सृष्टि कर डाली है-

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ए नैन॥

उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे भी बिहारी ने बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। नायिका की सफेद साड़ी से ढका उसके कानों में हिलता हुआ कर्णभूषण उत्प्रेक्षा की है कि मानो प्रभात में सूर्य का प्रतिबिम्ब गंगा जी के हिलते हुए जल में पड़ रहा हो-

लसतु सेत सारी-ढप्यौ, तरह तर्यौना कान।
पर्यौ मनौ सुरसरि-सलिल, रवि प्रतिबिंबु विहान॥

इस प्रकार अनेक दोहे ऐसे हैं जिनसे बिहारी की गूढ़ दृष्टि और कल्पना की ऊँचाइयों का परिचय मिलता है। अलंकार योजना में कहीं-कहीं बिहारी की चमत्कारप्रियता व कल्पनाधिक्य अवश्य देखने को मिलता है किन्तु वास्तव में बिहारी की अलंकार शास्त्र पर गहरी पैठ है, जिससे अलंकारों का प्रयोग अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी भावाभिव्यंजना में पूर्णतः सफल है और काव्य में सरसता और प्रभावोत्पादकता बराबर बनी रहती है।

10.6.4 छंद विधान

छन्द भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टि रूप प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है- जिसमें अक्षरों की संख्या में वर्णों की सत्ता निहित होती है, वह छन्द कहलाता है। यह काव्य में गति और लय की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बिहारी का सम्पूर्ण काव्य दरबारी मनोवृत्ति पर आधारित है। मुक्तक काव्य शैली में प्रत्येक पद्य अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। बिहारी ने कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि में से दोहा छंद को काव्याभिव्यक्ति के लिए चुना। यद्यपि इसमें सवैया, कुंडलिया आदि छंदों के समान विषय-विस्तार की संभावना नहीं होती तथापि अपनी भाषा की सामासिकता और कल्पना की समाहार शक्ति तथा उक्ति वैचित्र्य की क्षमता को परख कर बिहारी ने दोहा छंद चुना जो थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने व शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता रखता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. बिहारी ने अपनी रचना में कौन-सा काव्य रूप अपनाया है ?

(क) प्रबंध(ख) मुक्तक

(ग) कथा (घ) चम्पू

2. 'दोहा' छंद की दो विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

10.7 संदर्भ सहित व्याख्या

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय॥

शब्दार्थ- भवबाधा = सांसारिक बाधाएँ। सोय = वही। झाईं = 1. परछाई 2. झलक 3. ध्यान 4. चर्मरोग। स्याम = 1. कृष्ण 2. ताप, बुराई, दुःख आदि। 3. साँवला। हरित दुति = 1. हरा रंग या कांति 2. हरा-भरा अर्थात् प्रसन्न 3. तेज - रहित।

प्रसंग- सतसई की निर्विघ्न समाप्ति के लिए बिहारी ने राधा का स्मरण मंगलाचरण में किया है। इस दोहे से बिहारी के राधाबल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने का संकेत मिलता है।

व्याख्या प्रथम: जिसके शरीर की छाया पड़ने से कृष्ण हरी कांति वाले हो जाते हैं, वही चतुर राधा; मेरी संसार की अड़चनों को अर्थात् शारीरिक, दैवी और धनादि सम्बन्धी विघ्नों को दूर करें। राधा का रंग गौर वर्ण है, जो काले (श्याम) वर्ण वाले कृष्ण के शरीर के रंग से मिलकर हरा रंग होने का (पीला+नीला= हरा रंग) आभास देता है।

द्वितीय: वह नागरी राधा, जिसके शरीर की झलक पड़ने से कृष्ण तेजरहित हो जाते हैं, मेरी दरिद्रता, दीनता, हीनता आदि का निवारण करें। यहाँ पर कवि का आशय राधा की अपार महिमा बताना है। राधा के सामने कृष्ण की प्रतिभा फीकी पड़ जाती है।

तृतीय: वह राधा नागरी, जिसके शरीर का ध्यान करने से पाप, बुराई, दुःख आदि समस्त क्लेश दूर होकर पुण्य, अच्छाई, सुख इत्यादि उदय होते हैं, मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें। भाव यह है कि काव्य-परिपाटी के अनुसार पाप, बुराई आदि का रंग काला और पुण्य आदि का रंग उज्ज्वल माना गया है।

विशेष: 1. अलंकार- 'झाईं', 'स्यामु' और 'हरित' शब्द अनेक अर्थ देते हैं, अतः श्लेष अलंकार है। 'हरित-दुति' में 'हरी है द्युति जिसकी' अर्थ लेने पर युक्ति द्वारा अर्थ का समर्थन होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

2. 'हरित दुति' (हरा होना) मुहावरे का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है।

3. बिहारी की काव्य-प्रतिभा एवं भाषा और भाषाधिकार का परिचय इस दोहे में मिल जाता है। समग्र रूप में यह दोहा कविवर बिहारीलाल की उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है।

अजौं तरौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतन के संग॥

शब्दार्थ: अजौं = आज भी। तरौना = कान का आभूषण, इसे कर्णफूल भी कहते हैं। (अथवा तरौ नाही = तरा नहीं, संसार के कष्टों से छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं की) स्रुति = कान, वेद। सेवत = वेद पाठ करते हुए, कानों के पास रहते हुए। इक अंग = निरन्तर, एकरस होकर। नाक = नासिका, स्वर्ण। बेसरि = साधारण पुरुष, नाक का आभूषण बुलाक, जिसमें मोती लगा रहता है। लह्यौ = ¬प्राप्त कर लिया। मुकतन = मोतियों का, मुक्त पुरुषों का।

प्रसंग: निरन्तर वेद-पाठ करने की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक अच्छा है। इस तथ्य को तरौना (त्रयौना) तथा बेसर (बुलाक) के उदाहरण द्वारा समझाते हुए रीति सिद्ध कवि बिहारीलाल कहते हैं -

व्याख्या: इस दोहे में अत्यन्त सुन्दर श्लेष चमत्कार होने से इसकी दो व्याख्याएँ हैं-

प्रथम (तरौना, कर्ण-आभूषण): तरौना अथवा तर्यौना (कान का आभूषण- कर्णफूल या तरकी) कान का निरन्तर सेवन करने पर आज भी तर्यौना ही रहा। कानों में नीचे ही पड़ा रहा, ऊपर नहीं आ सका। नाक आगे और कान पीछे हैं। किन्तु बेसरि (नाक का आभूषण बुलाक जिसमें मोती लटका रहता है) ने मोतियों के साथ रहने से आगे का स्थान प्राप्त कर लिया अर्थात् उन्नति कर ली, आगे आ गया।

द्वितीय (सत्संग के पक्ष में): एकरस होकर निरन्तर वेद का पाठ करने वाला व्यक्ति संसार सागर से अपना उद्धार नहीं कर सका अथवा स्वर्ग प्राप्त करने में असफल रहा, किन्तु साधारण मनुष्य ने मुक्त (जीवन-मुक्त, जो जीवित रहते हुए भी संसार के आकर्षण से मुक्त रहते हैं) पुरुषों का सत्संग प्राप्त करके स्वर्ग का निवास प्राप्त कर लिया।

विशेष: 1. अलंकार: 'स्रुति-सेवत, वास-बेसरि-बसि' में अनुप्रास तथा 'तरौना ही, स्रुति, नाक, मुकतन' में श्लेष अलंकार है।

2. वेद-पाठ की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक लाभदायक है। वेद-पाठ चाहे जीवन-पर्यन्त करता रहे, तब भी मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता और सत्संग चाहे थोड़े समय का ही हो, वह भी अत्यधिक लाभदायक है।

3. इस दोहे से प्रतीत होता है कि वैष्णव-काल के अन्य कवियों की तरह बिहारीलाल सत्संगति के प्रभाव को सर्वोच्च मानते हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं-

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥

4. बेसरि: नाक का आभूषण विशेष, जैसे लोंग, बुलाक, नथ आदि। दूसरा अर्थ है- महाअधम मनुष्य।

5. तरौना: कान का आभूषण विशेष, जैसे- कर्णफूल, कुण्डल, बुन्दे आदि। दूसरा अर्थ है- उद्धार नहीं हुआ।

कहत, नटत, रीझत, मिलत खिझत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात॥

शब्दार्थ: कहत = कहते हैं। नटत = मना करते हैं। रीझत = प्रसन्न होते हैं। खीझत = रुष्ट होते हैं। मिलत = मिलते हैं। खिलत = हर्षोत्फुल्ल होते हैं। लजियात = लज्जा का अनुभव करते हैं। भरे = गुरुजन या पूज्य नर-नारियों से भरे। भौन = भवन।

प्रसंग: किसी समारोह के अवसर पर घर में स्त्री-पुरुषों की भीड़ होने पर भी नायक-नायिका परस्पर बातें कर रहे हैं। परन्तु ये बातें वचन से नहीं, नयनों के संकेतों से हो रही है। हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कराने का वर्णन इस दोहे में सुन्दरता के साथ व्यक्त हुआ है -

व्याख्या: नायक कहता है अर्थात् अभिसार के लिए नायिका से प्रस्ताव करता है। यह प्रस्ताव आँख के इशारे से होता है। नयन के संकेत से ही नायिका इसे ठुकरा देती है। नायिका की यह अस्वीकृत मुद्रा भी नायक के मन को भा गयी है और वह रीझ उठता है। उसके इस भाव पर नायिका खीझती है। परन्तु जब दोनों के नेत्र मिलते हैं तो वे हर्ष से खिल उठते हैं। पुनः गुरुजन की उपस्थिति का

स्मरण होने पर उन्हें लाज आती है कि यदि किसी ने उनकी यह सांकेतिक प्रेम-लीला देख ली होगी तो वे लोग क्या सोचेंगे? इस प्रकार नायक नायक और नायिका भीड़ भरे घर में भी आँखों ही आँखों में सारी बातें कर लेते हैं!

विशेष: 1. अलंकार- 'नैनों से बात करने' में विभावना तथा 'भरे-भौन' में अनुप्रास अलंकार है।

2. ऐसे ही दोहों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। एक साथ सारी क्रियाओं- कहना, अस्वीकार कर देना, रीझना, खीझना, नेत्र मिलना, हर्षित होना तथा लजाना आदि का समावेश सचमुच ही बिहारी के कौशल का द्योतक है।

3. व्यंजना शब्द-शक्ति का समावेश है। अनुभाव दृष्टव्य हैं।

4. भावसाम्य:

''व्रतो निषेध तश्चैव कुप्यतस्था।''
नयनैरेव कुरुतो वार्ता तौ दम्पती रसात्।। (यशवन्तराय- यशोभूषण)

जब-जब वै सुधि कीजियै, तब-तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहै, आँखों लागति नाहिं।।

शब्दार्थ: वै = वे, नायक (श्रीकृष्ण), सुधि कीजियै = स्मरण किये जाते हैं, उनकी स्मृति होती है। सुधि = चेतना, होश, बुद्धि। जाहिं = चली जाती हैं, खो जाती हैं। आँखिन = उनके नेत्रों के ध्यान में। आँखि लगी रहै = मेरी आँखें तल्लीन रहती हैं। मन में उनका ही ध्यान लगा रहता है। आँखों लागति नाहिं = आँखें भी नहीं लगतीं, नींद भी नहीं आती।

प्रसंग: राधा कृष्ण के वियोग में उनके सुन्दर नेत्रों का स्मरण किया करती हैं। अपनी स्मृति दशा का वर्णन करती हुई राधा सखी से कहती है-

व्याख्या: जब-जब उनकी (श्रीकृष्ण) की या उनकी आँखों की सुधि आती है तब-तब (स्मरण-शक्तिजनित तन्मयता के कारण) हृदय की सुध-बुध (चेतना) जाती रहती है। उनकी आँखों के ध्यान में मेरे हृदय की आँखें भी लगी रहती हैं, अर्थात् नींद नहीं आती, किन्तु वे बाहरी आखें नहीं लगती।

भाव यह है कि हे सखि। जब-जब मैं प्यारे के सुन्दर नेत्रों का स्मरण करती हूँ, तब-तब मेरी स्मृति जाती रहती है। मेरी आँखें उन्हीं आँखों से लगकर रह जाती हैं, ऐसी दशा हो जाती है कि नींद भी नहीं आती।

विशेष: 1. अलंकार- 'सब-सुधि' में अनुप्रास, 'जब-जब, तब-तब' में वीप्सा, 'आँखिन-आँखि' में सभंगपदयमक तथा 'आँखिन नाहिं' में विरोधाभास अलंकार है। 'जब-जब, तब-तब' में ध्वनिसाम्य है।

कब कौ टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नायक जग-बाइ।।

शब्दार्थ: टेरत = पुकार रहा हूँ। सहाइ = सहायक। जग बाइ = संसार की हवा।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में भगवान को उलाहना या उपालम्भ देते हुए भक्त कहता है-

व्याख्या: मैं कब से (बहुत समय से) दीन होकर आपकी विनती कर रहा हूँ, किन्तु हे स्याम! आप मेरी सहायता नहीं करते (यह बात आपके प्रचलित चरित्र के विरुद्ध है। आप तो भक्त की पुकार पर तुरन्त नंगे पैर दौड़ आते थे)। ऐसा लगता है कि हे जगत के स्वामी और जगत के गुरु, भगवान कृष्ण ! तुम्हें भी संसार की हवा लग गयी है अर्थात् बदलते हुए समय के साथ तुमने भी अपना आचरण बदल लिया है।

विशेष: 1. अलंकार: द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा एवं 'स्याम-सहाय' 'जगत-जग' में अनुप्रास तथा 'तुमहूँ लागी'.... जग-बाइ' में लोकोक्ति अलंकार है।

2. यह दोहा बिहारी के समसामयिक राजा-रईसों और नवाब-बादशाहों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। उस समय दीन-दरिद्र आज के समान ही सहायता के लिए पुकारते होंगे, पर वे बिलकुल ध्यान नहीं देते होंगे।

तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।

शब्दार्थ- तन्त्रीनाद = वीणा आदि के मधुर स्वर, संगीत से आनन्द की अनुभूति। कवित्त-रस = काव्य रस। सरस राग = रस युक्त अनुराग। अनबूड़े = बहुत कम ज्ञान रखने वाले। जे बूड़े सब अंग = पूरी तरह डूब गये अर्थात् पूर्ण ज्ञान रखने वाले।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में काव्य आदि ललित कलाओं के प्रति कवि की निष्ठा का कथन है।

व्याख्या: वीणा की झनकार, कविता का रस, मधुर राग और प्रीति के रस में जो सर्वांग डूब गये वे ही सफल हुए। जो पूर्णरूप से मग्न नहीं हुए वे असफल रहे।

कहने का भाव यह है कि जो इसमें डूब गये, रस लेने लगे अर्थात् जिनको आनन्द आने लगा वे तो ठीक हैं, नही तो इनके पास नहीं आना चाहिए, इनमें यत्किंचित प्रवृत्त होते हैं, वे असफल रहते हैं, किन्तु जो पूर्णतः मग्न होते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

विशेष: 1. अलंकार- 'राग-रति-रंग' में अनुप्रास, 'अनबूड़े-बूड़े', 'रस-सरस' में सभंगपद यमक, 'अनबूड़े..... सब अंग' में विरोधाभास तथा 'बड़े-बूड़े' में वीप्सा अलंकार है। बिना डूबने वाला डूब गया और सब अंग से डूबने वाला पार हो गया- यह अर्थ करने पर विरोध है। वास्तविक अर्थ है जो पूर्ण रूप से तन्मय नहीं हुए, वे असफल हो गये। जो सम्पूर्ण रूप से तन्मय हुए, उन्हें सफलता मिली। यह अर्थ होने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

2. ललित कलाओं का आनन्द अद्वितीय है। वह ब्रह्मानन्द से भी महान् है।

3. भावसाम्य: ललित कलाओं से हीन व्यक्ति का जीवन पशु समान है। एक संस्कृत विद्वान ने लिखा है-

साहित्य-संगीत-कला विहीनाः।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनाः।।

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी के वियोग श्रृंगार वर्णन की विशेषताएँ 5-6 पंक्तियों में लिखिए।

.....
.....
.....

2. बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचारों को अपने शब्दों में लिखिए।

.....
.....
.....

10.8 सारांश

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि और रीतिसिद्ध परम्परा के अग्रगण्य रचनाकाल हैं। बिहारी की प्रसिद्धि का आधार उनका एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' है, जो 'गाथा सप्तशती', 'आर्या शप्तशती' व 'अमरूक शप्तशती' आदि ग्रंथों की प्रेरणा से हिन्दी में निर्मित एक उत्कृष्ट मुक्तक काव्य है। बिहारी सतसई को विश्व में एक अद्वितीय ग्रंथ मानते हुए ग्रियसर्न ने कहा है, 'यूरोप की किसी भी भाषा में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है।'

'दोहा' छंद अपनाकर बिहारी ने कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की सामासिकता अर्थात् मुक्तक काव्य की विशेषताओं को कुशलता से अपने काव्य का विषय बनाया है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार रस का अपूर्व ग्रंथ है। संयोग-वियोग के सभी पक्षों पर

बिहारी की नजर है। संयोग के अन्तर्गत जहाँ आलम्बन के रूप, उसकी चेष्टाओं तथा हावों के सुंदर चित्र उकेरे गए हैं, वहीं वियोग के अन्तर्गत उसकी सभी स्थितियों का ऊहात्मक एवं संवेदनात्मक दोनों शैलियों में चित्रण हुआ है।

अर्थ-रमणीयता के साथ-साथ भाव-रमणीयता में बिहारी सिद्धहस्त हैं। 'गागर में सागर' व 'नावक के तीर' विशेषणों से युक्त उनके दोहे अर्थगाम्भीय व उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। बिहारी की रचना का कलापक्षीय सौन्दर्य अनुपम है। प्रस्तुत के साथ-साथ अप्रस्तुत विधान, ब्रजभाषा के परिनिष्ठत - परिष्कृत रूप, भाषा में व्यंजना, शब्दों के वैविध्य तथा मुहावरों - लोकोक्तियों के प्रयोग ने ब्रजभाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

10.9 शब्दावली

अनुप्रास - यह एक शब्दालंकार है। जब काव्य की किसी एक पंक्ति में एक ही वर्ण दो या दो से अधिक बार प्रयुक्त होता है तो उसे अनुप्रास कहते हैं।

उक्ति वैचित्र्य- जब किसी कथन में विचित्रता होती है, उसे उक्ति वैचित्र्य कहते हैं।

काव्य भाषा- कवि अपने भावों और विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह काव्यभाषा होती है।

दोहा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले व तीसरे चरण में 13-13 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-11 मात्राएं होती हैं।

सोरठा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके चार चरण होते हैं। इसके प्रथम व तीसरे चरण में 11-11 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-13 मात्राएं होती हैं।

अनुभाव - आश्रय की चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं। अनुभाव दो प्रकार का होता है- 1. सात्विक या अयत्नज अनुभाव, 2. कायिक या यत्नज अनुभाव।

श्रृंगार रस-श्रृंगार रस का स्थाई भाव रति है। विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ 'रति' नामक स्थाई भाव श्रृंगार रस को जन्म देता है। यह दो प्रकार का होता है- 1. संयोग श्रृंगार 2. वियोग श्रृंगार।

श्रृंगारिक -श्रृंगार से परिपूर्ण, अर्थात् कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि से पूर्ण।

सतसई - सात सौ दोहे के समूह को दर्शाने वाली रचना।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. जो कवि लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखते पर इन ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हैं वे रीतिसिद्ध कवि कहलाते हैं।

2. (क) बिहारी सतसई
   (ख) रीतिसिद्ध

अभ्यास प्रश्न 2

(क) समाहार शक्ति, समास शक्ति (ख) श्रृंगारिकता

अभ्यास प्रश्न 3

1. श्रृंगार
2. (क) पूर्व राग (ख) मान (ग) प्रवास (घ) करुणा

अभ्यास प्रश्न 4

1. (ख)
2. (क) थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की क्षमता
   (ख) शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी ने वियोग श्रृंगार वर्णन में मानव मन की सूक्ष्म दशाओं का सजीव चित्रण किया है। विरहजन्य कामदशाओं के अन्तर्गत बिहारी ने मुख्यतः व्याधि, मरण, जड़ता का वर्णन अधिक किया है। नायिका के अतिशय विरह का चित्रण करने के लिए बिहारी ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है। बिहारी की नायिकाएँ वियोग में इतनी दुर्बल हो गई हैं कि उन्हें देखने के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु को चश्मा लगाना पड़ता है, वह साँस लेने पर सात हाथ आगे और साँस छोड़ने पर सात हाथ पीछे आती है। इस वियोग वर्णन पर फारसी परम्परा के विरह का प्रभाव दृष्टव्य है।

2. बिहारी ने नीतिपरक दोहों में जीवन में आने वाले सुख दुख को समान भाव से ग्रहण करने की बात कही है। साथ ही मानव की विभिन्न स्वभावगत विशेषताओं का वर्णन भी किया है। मनुष्य से स्वर्ण अथवा धन का लालच कभी न करने को कहा है क्योंकि उससे मनुष्य का नाश हो सकता है। वे कुसंगति से बचने को कहते हैं। बिहारी के ये विचार लोकानुभव पर आधारित हैं।

10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नगेन्द्र, डॉ0; रीतिकाव्य की भूमिका; (1983); नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. सक्सेना, द्वारिका प्रसाद; (85-86); हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि; विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. शुक्ल, रामचन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।
4. गुप्त, गणपति चन्द्र;हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।

10.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. रत्नाकर,जगन्नाथदास, बिहारी रत्नाकर साहित्यागार, जयपुर।
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद, बिहारी की वाग्विभूति, वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी।
4. त्रिपाठी, रामसागर, मुक्तक परंपरा और बिहारी, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
5. सिंह,बच्चन, बिहारी का नया मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिद्ध कीजिये की बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं तथा बिहारी सतसई की भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. 'एक सफल मुक्तकार के मुक्तक रचना करने में कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की समास शक्ति वांछनीय है।' इस आधार पर बिहारी के काव्य की समीक्षा कीजिये।

इकाई- 11 केशवदास : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व
11.3.1 केशव का महाकाव्यत्व
11.3.2 केशव का आचार्यत्व
11.4 केशव की काव्यगत विशेषताएं
11.4.1 भाव पक्ष
11.4.2. संरचना शिल्प
11.5 संदर्भ सहित व्याख्या
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम केशव के काव्य पर चर्चा करेंगे। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवि के अन्तर को समझ गए होंगे। आपने पढ़ा कि जिन कवियों ने अपनी रचनाओं में रस, छन्द, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण-उदाहरण लिखे, वे रीतिबद्ध कवि कहलाए। केशव भी रीतिबद्ध परम्परा के कवि हैं। केशव से पूर्व कई आचार्य कवियों ने हिन्दी में काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया परन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय केशवदास को है, जिससे वे रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य कहलाते हैं। केशव ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न विषयवस्तु से पूर्ण रचनाएं की हैं। आप देखेंगे कि दरबारी परिवेश और पांडित्य प्रदर्शन की आन्तरिक इच्छा होने से केशव की कविता में कथ्य की अपेक्षा शिल्प पक्ष अधिक प्रबल है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि केशव के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ-साथ केशव का परिचय, काव्य-वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी। इस इकाई को आद्योपरान्त पढ़ने के पश्चात् आप-

- रीतिकालीन साहित्य में केशव के काव्य का महत्व समझ पायेंगे।
- केशव प्रथम प्रवर्तक आचार्य क्यों है यह आप जान सकेंगे।
- केशव को कठिन काव्य का प्रेत क्यों कहा जाता है, जान पायेंगे।
- केशव के संवाद-सौष्ठव के महत्व को समझ पायेंगे।
- केशव के काव्य की कलापक्षीय एवं भावपक्षीय विशेषताएँ जान पायेंगे।

11.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व

केशव के जन्म के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। केशव की रचनाओं के आधार पर उनकी जन्मतिथि सं0 1612 मानी गई है। पं0 रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 रामकुमार वर्मा आदि उच्चकोटि के साहित्यकारों ने केशव का जन्म वि. सम्वत् 1612 ही माना है।

केशव की रचना 'रसिक प्रिया' के आधार पर उनका जन्म ओरछा राज्य में बेतवा के तट पर ओरछा नगर में हुआ था। 'रामचन्द्रिका' के आधार पर उनका जन्म एक सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ तथा मामा का नाम कृष्णदत्त शुक्ल था। केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र गहरबार महाराज प्रताप रूद्र के आश्रित थे। उनके एक पुत्र काशीनाथ हुए जो प्रकाण्ड विद्वान थे। महाराजा प्रताप रुद्र के पुत्र मधुकर शाह उनका बड़ा आदर करते थे। काशीनाथ के तीन पुत्र- बलभद्र, केशवदास और कल्याण हुए। केशवदास मधुकर साह के पुत्र इंद्रजीत के आश्रित थे। इन्द्रजीतसिंह स्वयं एक अच्छे कवि थे और केशव का बहुत मान करते थे। केशवदास इन्द्रजीतसिंह के पश्चात् वीरसिंह देव राजा के आश्रय में भी रहे।

कृतित्व -

केशवदास ने निम्नांकित ग्रन्थों की रचनाएं की-

1. रसिक प्रिया, 2. नखशिख, 3. कविप्रिया, 4. रामचन्द्रिका, 5. वीरसिंह देव चरित,
   6. रतन बावनी, 7. विज्ञान गीता, 8. जहांगीर-जस चंद्रिका, 9. बारहमासा, 10. छन्दमाला।

उपर्युक्त रचनाओं में से रसिकप्रिया, नखशिख, कविप्रिया, बारहमासा और छन्दमाला ग्रथों में काव्य शास्त्र अथवा लक्षण ग्रन्थों की चर्चा है। 'रामचन्द्रिका' भक्तिपरक कम पाण्डित्य प्रदर्शन का काव्य अधिक है। 'विज्ञान-गीता' भक्तिपरक रचना है, वहीं 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी' और 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखे गये प्रशस्ति काव्य हैं। विषय वैविध्यपूर्ण इन रचनाओं को पढ़कर आप देखेंगे कि केशव ने तद्युगीन सभी काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है। केशव दास द्वारा अधिकांश ग्रन्थों में उसके रचनाकाल का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है।

11.3.1 केशव का महाकाव्यत्व

धार्मिक महापुरुषों के चरित्र को लेकर प्रबन्धकाव्य लिखने की परम्परा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्य से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। संस्कृत में बाल्मीकि कृत 'रामायण', अश्वघोष विरचित 'बुद्धचरित' और फिर प्राकृत-अपभ्रंश में रचित 'पउम चरिउ' (विमल सूरि) स्वयंभू कृत 'पउम चरिउ' आदि उल्लेखनीय हैं। जैन कवियों द्वारा रचित यही धार्मिक चरित परम्परा धीरे-धीरे हिन्दी तक पहुँची।

प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य दो शब्दों के योग से बना है। महत् का अर्थ है- उत्कृष्ट, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि महाकाव्य जीवन के महत् का विवेचन होता है। भारतीय आचार्यों में भामह पहले आचार्य हैं, जिन्होंने महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किया। केशवदास ने दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की- 1. वीरसिंह देव चरित और 2. रामचन्द्रिका। 'वीरसिंह देव चरित' एक स्तुति काव्य है, जिसमें केशव ने महाराज वीरसिंह के चरित्र पर प्रकाश डालने के बाद उनके दान, लोभ आदि से सम्बन्धित संवाद लिखे हैं। दूसरी रचना 'रामचन्द्रिका' है, जो संस्कृत साहित्य शास्त्र में वर्णित महाकाव्यात्मक लक्षणों की दृष्टि से लिखी गयी है। रामचन्द्रिका में 39 सर्ग हैं, जिन्हें 'प्रकाश' नाम दिया गया है। रामचन्द्रिका में केशव ने रामकथा को लेकर 'रामचन्द्रिका' की रचना की है जिससे इसकी गणना राम सम्बन्धी प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में होती है। इस काव्य के नायक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। जो अत्यन्त धैर्यवान और उदात्त हैं। इसके पूर्वार्द्ध में रामजन्म से रावणवध तक की और उत्तरार्द्ध में राम के वन से वापस आने से लेकर सीता वनवास और अश्वमेध यज्ञ तक की कथा का वर्णन है। इसकी कथा में महाकाव्य का विस्तार है। जिसमें जनक आदि अनेक राजाओं का वर्णन है। विभिन्न स्थलों का चित्रोपम वर्णन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' में श्रृंगार रस के साथ-साथ वीर एवं शान्त रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। विविध छन्दों के सुन्दर प्रयोग ने जहां काव्य को चारुता प्रदान की है वहीं चमत्कारपूर्ण एवं अलंकृत रचना शैली के माध्यम से काव्य को भव्यता प्राप्त हुई है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर 'रामचन्द्रिका' की गणना महाकाव्यों में होती है। कुछ विद्वान इसे महाकाव्य नहीं मानते। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- 'संबंध निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है। उस कथा के अन्दर जो मार्मिक स्थल हैं उनकी ओर केशव का ध्यान बहुत कम गया है। दृश्यों की स्थानगत विशेषता केशव की रचनाओं में ढूंढ़ना व्यर्थ है।' (हि.सा.का. इतिहास, पृ. 142)।

यह सही है कि केशव की रामचन्द्रिका में 'बाल्मिकि रामायण' और 'रामचरितमानस' जैसी श्रेष्ठ रचनाओं की तरह का कथा-प्रवाह नहीं है। इसमें गणेश और सरस्वती की वन्दना से काव्य का आरम्भ कर राम की वन्दना की गई है। राम के बाल्यावस्था के वर्णन को छोड़कर राम के विश्वामित्र के साथ वन गमन, ताड़कावध, धनुष यज्ञ, राम विवाह तक तथा राम के वन-गमन से लेकर

रावण वध-सीता मिलन तत्पश्चात् अयोध्या आगमन के पश्चात् राम-भरत मिलाप, राजतिलक, राम-राज्य वर्णन, सीता-वनवास पुन: राम-सीता मिलन तक का वर्णन राम-कथा से ही सम्बद्ध है। जहां तक मार्मिक प्रसंगों की ओर केशव की दृष्टि नहीं जाने का आरोप है, यह जरुर है कि 'रामचरित मानस' में जिन मार्मिक स्थलों का वर्णन तुलसी ने किया है, उनका वर्णन केशव ने नहीं किया। दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं की नगण्यता के संबंध में कहा जा सकता है कि केशव ने रामचंद्रिका में वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, सरोवर आदि के वर्णन में प्रकृति का कहीं आलम्बन तो कहीं उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। प्रात:कालीन सूर्य की आभा हो या चन्द्रमा की शोभा दोनों का सुंदर वर्णन रामचंद्रिका में मिलता है। इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं इस वर्णन में पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण चमत्कारप्रियता के दर्शन भी होते हैं।

केशव के संबंध में डा. विजयपाल सिंह लिखते हैं, "केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तनभूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है।" (केशव और उनका साहित्य, पृ. 119)। रामचंद्रिका में लोक पक्ष समन्वित भक्ति-भावना के साथ-साथ लोककल्याण विषयक भावना के दर्शन भी होते हैं। रामचरितमानस का सा जीवन वैविध्य भले ही केशव की रचना में न हो किन्तु केशव जीवन की अन्त:-बाह्य स्थितियों से सर्वथा परिचित थे। रसवत्ता व भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी वीर, श्रृंगार व शान्त रस का सुंदर चित्रण रामचंद्रिका में दिखाई देता है। इस प्रकार रामचंद्रिका केशव की एक महाकाव्यात्मक रचना है।

11.3.2. केशव का आचार्यत्व

इससे पूर्व की इकाई में आपने पढ़ा होगा कि संस्कृत में लक्षण ग्रन्थ लिखे गये अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जिनमें रस, अलंकार, नायिका भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे ग्रन्थों को साहित्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र नाम से जाना जाता है। यही परंपरा हिन्दी में रीतिकाव्य धारा कहलाई। हिन्दी की इस काव्य धारा और संस्कृत के साहित्यशास्त्र का मूल अंतर यही है कि इनके प्रणेताओं ने लक्षण और उदाहरणों को स्वयं लिखा जबकि संस्कृत में काव्यशास्त्र के रचनाकारों ने लक्षण स्वयं लिखे और उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से दिए। केशव से पूर्व हिन्दी में आचार्य-कवि सम्बन्धी रीतिकाव्य धारा में प्रथम कवि 'पुष्य' को माना जाता है, किन्तु इनका अलंकार ग्रन्थ अप्राप्य है। इस धारा में पहला प्राप्त ग्रन्थ कृपाराम रचित 'हिततरंगिणी' है। जिसमें काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी पद्धति पर लिखे गये गोप कवि के 'राम भूषण', मोहन लाल की 'रामचन्द्रिका' आदि ग्रन्थ अप्राप्य हैं। अन्य कई कवियों ने रीतिग्रन्थ लिखे किन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का श्रेय सर्वप्रथम केशवदास को ही प्राप्त है। इस आधार पर केशव को हिन्दी में रीतिकाव्य के प्रथम प्रतिनिधि आचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

केशव को आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले उनके दो ग्रन्थ निम्नांकित हैं- 1. रसिक प्रिया 2. कविप्रिया। 'रसिक प्रिया' की रचना काव्य प्रेमियों को दृष्टि में रखकर हुई है। इसमें मुख्यत: श्रृंगार और उसके विभिन्न अंगों के अतिरिक्त काव्य-दोषों का वर्णन है, अन्य रसों का वर्णन संक्षिप्त है। 'रसिकप्रिया' की रचना का आधार संस्कृत के विविध ग्रन्थ हैं। इसमें नायिका-भेद का वर्णन मुख्यत: संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों के आधार पर ही है। परन्तु यत्र-तत्र कवि की मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ- जाति के आधार पर नायिकाओं का विभाजन तथा नायक-नायिका के मिलन स्थलों या अवसरों पर नवीन प्रसंगों की योजना। 'कविप्रिया' रचना का उद्देश्य पाठकों को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना है। इसमें सोलह प्रभाव हैं। जिनमें कवि शिक्षा, काव्य दोष और अलंकार निरूपण पर विशेष ध्यान दिया गया है। अलंकार निरूपण के अन्तर्गत उनका वर्गीकरण और लक्षण-निरूपण हुआ है। 'छन्दमाला' नामक ग्रन्थ में कवि ने विभिन्न मात्रिक व वर्णिक छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। केशव के आचार्यत्व पर प्रो. वासुदेव सिंह कहते हैं, "जहां तक उनके आचार्य पक्ष का सम्बन्ध है, उसमें एक शिक्षक और रीति निरूपक के गुण विद्यमान हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से वह अलंकारवादी थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वह सर्वांग निरूपक आचार्य हैं।" (हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ 216)।

केशव ने विभिन्न काव्यांगों का निरूपण करते हुए भाषा का कार्य, कवि योग्यता, कविता का स्वरूप, कविता का उद्देश्य, कवियों के भेद, काव्य रचना के ढंग, काव्य विषय, काव्य दोष, अलंकार, रस, छंद, विविध वृत्तियों आदि पर सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लिखा है। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने केशव को ही रीतिकाव्य धारा का संस्थापक कवि माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केशव के स्थान पर चिन्तामणि को प्रथम सर्वांग निरूपक आचार्य मानते हैं। उनका मानना है कि रीति-ग्रन्थों की अविछिन्न परम्परा

'कविप्रिया' के लगभग पचास वर्ष बाद चली और इस परम्परा के कवियों ने केशव को अपना आदर्श भी नहीं माना। कुछ भी हो शास्त्रीय परिपाटी को जन्म देने तथा अन्य कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने वाले केशव आचार्य रूप में ही हिन्दी जगत में सम्मानित हैं। वस्तुत: केशव ही रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

सही विकल्प का चुनाव कीजिए -

1. केशव दास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' है-
   अ. खण्डकाव्य
   ब. महाकाव्य
   स. मुक्तक काव्य
2. रामचन्द्रिका में .....सर्ग हैं, जिन्हें.....नाम दिया गया है।
3. 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह जान पड़ती है। किसने कहा-
   अ. डॉ. श्यामसुन्दर दास ने
   ब. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने
   स. डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने
   द. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रन्थ किसे कहते हैं? (उत्तर निम्नांकित तीन पंक्तियों में दीजिये)।
   .....
   .....
   .....
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी रीति ग्रन्थों में सर्वांग निरूपक प्रथम आचार्य किसे मानते हैं-
   अ. केशव दास को
   ब. चिन्तामणि को
   स. कृपाराम को
   द. पुष्य को
3. 'कविप्रिया' अलंकार निरूपक ग्रन्थ है या रस विवेचक?

11.4 केशव की काव्यगत विशेषताएँ

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम केशव की काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि काव्य के दो पक्ष होते हैं। 1. **भाव पक्ष**, जिसे कथ्य या विषय वस्तु भी कहा जाता है। (अर्थात् कवि जो कहता है, वह भाव पक्ष है) 2. **कला पक्ष**, जिसे संरचना शिल्प या शैली भी कहा जाता है। (अर्थात् जिस ढंग से कहा जाता है या कहने का तरीका)। चलिए केशव की कविता के इन दोनों पक्षों पर विचार करते हैं।

11.4.1 भाव पक्ष

भावाभिव्यंजना हेतु कवि का सहृदय होना आवश्यक है। तभी वह सरस काव्य का सफल रचनाकार हो सकता है। केशव रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। जिस परम्परा में वे पले-बढ़े वह पूरी तरह रीतिकालीन श्रृंगारिकता से परिपूर्ण थी। केशव को पांडित्य और आचार्यत्व को प्रदर्शित व प्रमाणित करने में भी विशेष रुचि थी। अलंकार उन्हें अत्यधिक प्रिय थे। केशव के 'रसिक प्रिया' में रस विवेचन व 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थों में अलंकारों का विशद वर्णन है, इन्हें अलंकारवादी कवि भी कहा जाता है। 'भूषन बिनु न बिराजहिं कविता बनिता मित्त" कहने वाले केशव अपने अधिकांश वर्णनों में अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार की

सृष्टि करना चाहते हैं, जिससे उनके काव्य में अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गये। जिससे काव्य का क्लिष्ट हो जाना स्वाभाविक है। इससे केशव पर कठिन काव्य का प्रेत या हृदयहीनता के आक्षेप लगते हैं किन्तु उनके काव्य का आद्योपान्त अध्ययन करने पर अनेक स्थलों पर उनकी सरसता व सहृदयता का परिचय मिलता है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने श्रृंगार के विविध चित्र उपस्थित किये हैं। साथ ही अन्य कारुणिक प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। श्रृंगारपरक अनुभावों का कवि ने सहज स्वाभाविक और उत्कृष्ट वर्णन किया है। श्रीराम व सीता के संयोग के विभिन्न अवसरों पर केशव की सहृदयता दृष्टव्य है-

संयोग पक्ष

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खेंचो हाथ।

इसी प्रकार वियोग पक्ष-

फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिनु।
दूरि करि माला ब्याल सी लगती है।।

केशव कृत भक्ति वर्णन में भी सहृदयता देखने को मिलती है। गणेश स्तुति का एक वर्णन दृष्टव्य है-

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल।
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को ।।

वीर गाथात्मक काव्य के अन्तर्गत केशव की तीन रचनाएं मिलती हैं। रतनबावनी, वीरसिंह देवचरित, जहांगीर-जस-चन्द्रिका। **'रतन बावनी'** बावन छंदों की लघु रचना है। इसमें इन्द्रजीत सिंह के बड़े भाई रतन सिंह के शौर्य का वर्णन किया गया है। वे अकबर की ओर से बंगाल के विद्रोहियों का दमन करने गये थे, वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। कवि ने उनके पराक्रम का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया है। **वीर सिंह देव चरित** में केशव ने वीरसिंह बुन्दोला का जीवन चरित लिखा है। उनके शौर्य-पराक्रम और राज्य प्राप्ति का वर्णन विशेष रूप से किया है। *संवाद सौष्ठव* केशव के काव्य का प्राण है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत केशव संवादों के लिए प्रसिद्ध हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जहाँ उनके आचार्यत्व और कवित्व पर आक्षेप किए है। वहीं रामचंन्द्रिका में संवादों की सुन्दर योजना पर मुक्तकंठ से केशव की प्रशंसा भी की है- 'रामचंन्द्रिका में केशव को सबसे अधिक सफलता मिली है संवादों में।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास) किसी भी काव्य में संवादों की योजना के निम्नांकित तीन महत उद्देश्य होते हैं-

1. कथानक को आगे बढ़ाने के लिए।
2. चरित्र-चित्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए।
3. काव्य में रोचकता उत्पन्न करने के लिए।

केशव के काव्य संवादों द्वारा ये सभी उद्देश्य पूर्ण होते हैं। कहना न होगा कि जहाँ संवादों ने उनके काव्य को गति प्रदान की है, वहीं चरित्र-चित्रण हेतु अभिनयात्मक प्रणाली में संवाद ही मुख्य भूमिका निभाते हैं, जो केशव के काव्य के संवादों ने निभाई है और काव्य को पढ़ते-पढ़ते ऊब जाने की स्थिति से बचने के लिए संवादों ने रोचक्ता उत्पन्न कर रामचन्द्रिका को सरस बनाया है।

'रामचंद्रिका' में नौ संवाद मिलते हैं- सुमति-विमति संवाद, राम-जानकी संवाद, राम-लक्ष्मण संवाद, सीता-हनुमान संवाद, राम-परशुराम संवाद, राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर संवाद। इनमें राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद और सीता-हनुमान संवाद छोटे होते हुए भी प्रभावशाली और सुन्दर हैं किन्तु रावण-बाणासुर संवाद, राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद अपेक्षाकृत बड़े होते हुए भी कम रोचक नहीं हैं। इन संवादों की विशेषताओं को आप निम्नांकित रूप में देख सकते हैं- इन संवादों में **पात्रानुकूलता** देखने को मिलती है। रावण और बाणासुर दोनों ही अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हैं, दोनों को स्वयं पर गर्व है, दोनों एक-दूसरे से अपने पराक्रम का वर्णन करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेते हैं। रंगशाला में रखे हुए धनुष को तोड़ने के लिये प्रवेश करते ही रावण कहता है-

शंभु कोदण्ड दै राजपुत्री कितै।

टूक द्वै तीन कै, जाहुँ लंकाहि लै ॥

उपर्युक्त संवाद रावण की शक्ति और उसको अपनी शक्ति पर होने वाले अहंकार को दर्शा रहा है। इसके प्रत्युत्तर में बाणासुर का व्यंग्य देखिये-

जुपै जिय जोर, तजौ सब सोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख-कोरि ॥

तब रावण अपने शौर्य, पराक्रम की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हुए कहता है-
केशव कोदण्ड विषदंड ऐसो खंडै अब।
तेरे भुजदंड की बड़ी है विडम्बना ॥

वाणासुर चुटकी लेता है-
बहुत बदन जाके, विविध वचन ताके ॥

उपर्युक्त संवाद अत्यन्त पराक्रमी योद्धाओं रावण और बाणासुर के सर्वथा अनुकूल हैं। पात्रानुकूलता अन्य सभी संवादों में दर्शनीय है। केशव के संवादों में **शिष्टाचार** दर्शनीय है, इनमें सामाजिक मर्यादा का पूर्णत: ध्यान रखा गया है, सभी पात्रों के संवाद शिष्टाचारपूर्ण हैं। 'हनुमान-सीता' संवाद को ही लें तो उसमें हनुमान ने सीता के लिये 'जननि', राम के लिए 'दशरथ-नन्दन' या रघुनाथ, दशरथ के लिए अज-तनय-चन्द आदि शब्दों का प्रयोग कर संवादों की गरिमा को बनाए रखा है। केशव के संवाद **कूटनीति** से पूर्ण है, उनमें राजनीति में प्रयोग होने वाले सभी उपायों को भी सम्मिलित किया गया है। कूटनीति, भेद नीति आदि का सहारा लेकर केशव ने संवादों को जीवन्त व प्रभावशाली बना दिया है, रामचन्द्रिका का अंगद-रावण संवाद इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इस प्रकार ये सभी संवाद राजनीति के सभी दांवपेचों से युक्त हैं।

केशव के संवाद **नाटकीय** सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। पात्रों द्वारा बोले गए संवादों के आगे उनका नाम उल्लिखित है, जिससे काव्य में नाटकीयता आ जाने से रोचकता बढ़ गई है, जैसे-

रावण- कौन हो पठये सो, कौने, हयाँ तुम्हें कहा काम है ?
अंगद- जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है।

केशव के संवादों में सामान्यत: **बोलचाल की भाषा** का ही प्रयोग हुआ है। जिससे स्वाभाविकता और सरलता में वृद्धि हुई है। मुहावरे और लोकोक्तियों के साथ-साथ व्यंग्यात्मकता भी इन संवादों की विशिष्टता है। छोटे-छोटे वाक्य गंभीर अर्थ से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि रामचंद्रिका के संवादों में संक्षिप्तता, सरलता, काव्य में नाटकीय सौन्दर्य, भाषा की व्यावहारिकता, पात्रानुकूलता, शिष्टता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो पल-पल कौतूहल को बढ़ाती हैं, रामचन्द्रिका का संवाद सौष्ठव निश्चय ही अप्रतिम है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. कथ्य किसे कहते हैं ? निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।
   .....
   .....
2. केशव की दो वीरगाथात्मक रचनाओं के नाम लिखिए।
3. केशव के संवादों की तीन विशेषताएं लिखिए।

केशव का प्राकृतिक चित्रण

केशवदास काव्य और प्रकृति के बीच अटूट संबंध मानते हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति वर्णन हेतु अतिरिक्त अवसर जुटाने के प्रयास भी किए हैं। प्रकृति वर्णन हेतु केशव ने परम्परागत सभी विधियों को अपनाया है, जिसमें प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में प्रकृति का आलंबन, आलंकारिक, बिम्ब-प्रतिबिम्ब और परिगणनात्मक रूप में भी वर्णन मिलता है।

सीता से वियुक्त होने के पश्चात् राम की विरहावस्था का वर्णन करते हुए केशव ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है, जो द्रष्टव्य है-

हिमांसु सूर सो लगै सो बात वज्र-सी बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों, बिलेप अंग को दहै॥
विसेस कालराति सों, करालराति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिए।

विरही राम को इस समय शीतल चन्द्रमा सूर्य के समान दाहक, मलय वायु वज्र के समान कठोर लगती है, सारी दिशाएँ जलाने लगती हैं, चंदन आदि उबटन भी शरीर को जला रहे हैं। साधारण रात्रि कालरात्रि के समान प्रतीत हो रही है। प्रकृति के ये सभी उपादान विरही राम के दुख को और बढ़ा रहे हैं।

केशव ने प्रकृति को **आलम्बन** रूप में भी चित्रित किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति को निम्नांकित दो रूपों में चित्रित किया जाता है— प्रकृति के विविध पदार्थों के नामों की गणना करके, इसे नाम परिगणन प्रणाली कहा जाता है। दूसरा, प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों का अंकन करके बिम्ब प्रस्तुत करना, इसे 'बिम्ब ग्रहण प्रणाली' कहा जाता है। केशव ने नाम परिगणन प्रणाली का प्रयोग अधिक किया है। जैसे-

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेरवर॥

केशव कहीं-कहीं बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करते हुए भी दिखते हैं, जो केशव की प्रकृति का शाब्दिक चित्र खींचने की क्षमता दर्शाता है किन्तु यत्र-तत्र चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से प्रकृति वर्णन थोड़ा दबा-दबा सा प्रतीत होता है। केशव ने प्रकृति के **मानवीकृत** रूप में सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी प्रकृति मानवीय क्रिया-व्यापारों में लिप्त-सी दिखाई देती है। यही कारण है कि कहीं केशव को अयोध्या के भवनों पर सुशोभित पताकाएँ दण्डधारण करने वाली संन्यासिनी के समान जान पड़ती हैं, कहीं वर्षा ऋतु अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के समान कार्य करती हुई जान पड़ती है तो कभी महाकाली के समान किलकारी भरती-सी दृष्टिगत होती है। केशव के काव्य में वर्षा ऋतु के मानवीकरण का सुन्दर रूप दृष्टव्य है —

तरूनी यह अत्रि रिषीस्वर की-सी ,
उर में हिम चन्द्रप्रभा सम दीसी।
वरषा न सुनो किलकै किल काली ,
सब जानत हैं महिमा अहिमाली।

इस प्रकार आप देखेंगे कि केशव के काव्य में यत्र-तत्र प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण किया गया है। इस प्रकार केशव की रचनाओं में प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। कहीं वह समाज के लिए एक उपदेशक के रूप में कार्य करती चित्रित है तो मानवीय सुख-दुख की स्थितियों में **संवेदनात्मक** हो जाती है अर्थात् मनुष्य के सुख-दुखानुसार स्वयं भी परिवर्तित हो जाती है। केशव के प्रकृति चित्रण पर पं. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि कई विद्वानों ने आक्षेप किए हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास का कहना है कि "प्रकृति के सन्तुलित सौन्दर्य से प्रभावित होने के लिए जिस भावुकता की आवश्यकता होती है, उसका केशव में सर्वथा अभाव है।" (हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 255)।

केशव अपनी अलंकार-प्रियता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के वशीभूत प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं वे शब्दों से खेल करते से जान पड़ते हैं। प्रात:काल राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के जनकपुरी पहुँचने पर सूर्य के लाल गोले को समय रूपी कापालिक के हाथ लगा रक्त रंजित कपाल बताना, अत्यन्त घृणास्पद प्रतीत होता है —

कै शोणित कलित कपाल यह किलकापालिक काल को,
यह ललित लाल कैसो लसत् दिग् भामिनि के भाल को।

इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर विश्वामित्र द्वारा सूर्य का वर्णन करते हुए 'चढ़्यो गगन तरुधाम, दिनकर बानर अरुण मुख' कहकर उसे बंदर रूप में चित्रित करना आदि अनेक ऐसे वर्णन हैं जहाँ केशव अलंकारों के जाल में फँसे हास्यास्पद नजर आने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. मानवीकरण किसे कहते हैं। निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

2. व्यंग्यार्थ क्या है ?

11.4.2 संरचना शिल्प

केशव के काव्य की भाषा **ब्रज** है, जिसमें बुंदेलखंडी भाषा का प्रभाव भी विद्यमान है, इसलिए अधिकांश विद्वानों ने उनकी भाषा को बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा कहा है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। केशव ने अपनी कविता का माध्यम जनभाषा को बनाया, जिसके लिए स्वयं उन्होंने लिखा है-

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास॥

केशव की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त अवधी, अरबी-फारसी के शब्द भी उनकी कविताओं में यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। केशव की भाषा में अभिधा की प्रधानता होते हुए भी चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग कवि ने खूब किया है और कहीं-कहीं ब्रजभाषा को ही संस्कृतमय बना दिया गया है, जैसे-

शिरचन्द्र की चन्द्रिका छारु हाशे।
महापात की ध्वांत धाम प्रणाशे॥

सृजति, शस्ययुक्ता, समुद्रावधि, स्वलीलया, पतन्ति, चलन्ति आदि कई संस्कृत शब्दों का प्रयोग केशव के काव्य में हुआ है। केशव की भाषा में **बुंदेलखंडी** शब्दों का आधिक्य मिलता है, जैसे- गलसुई, स्यों, छन्दी, मानिबी, जानिबी, चोली, ओली, कीबी, छीवै आदि। **अवधी** शब्दों के अन्तर्गत इहाँ, उहाँ, दिखाउ, दीन, कीन आदि शब्द द्रष्टव्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। दरबारों में **अरबी-फारसी** भाषाओं का बोलबाला था, अत: इन भाषाओं की शब्दावली का पूरा-पूरा प्रयोग केशव ने किया है। केशव के काव्य में बकसीस, सिरताज, सतरंज, बाजी, कसम, शोर, तेग, फरमान, दरबार, महल, गरीब आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। **शैली** की दृष्टि से केशव ने दो प्रकार की शैली अपनाई है - 1. प्रबंध शैली 2. मुक्तक शैली। केशव ने रामचंद्रिका, रतनबावनी, वीरसिंहदेव चरित में प्रबंध शैली अपनाई है तो कविप्रिया, रसिकप्रिया और नख-शिख में मुक्तक शैली को अपनाया है। केशव की शैली में **ओज, माधुर्य** और **प्रसाद** तीनों गुण विद्यमान हैं। इसी गुण के कारण उनके काव्य के विभिन्न वीर-रसात्मक स्थल एवं वाद-विवाद सम्बन्धी प्रसंग सरस और मार्मिक बन पड़े हैं। 'रामचन्द्रिका' में राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर आदि संवाद दपोक्तियों से भरे हैं। बाणासुर की उक्ति को आप उदाहरणार्थ देख सकते हैं –

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी।
देखि फिरौं तब ही तब रावण सातों रसातल के जे विलासी॥
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छिति मंडल छत्र प्रभासी।
जानै को केशव केतिक बार में सेस के सीसन दीन्ह उसासी॥

केशव की **रसिकप्रिया** में **माधुर्य गुण** की प्रधानता देखने को मिलती है। उनके श्रृंगार-पूरित छंदों में माधुर्य गुण का प्रवाह देखिए-

एक रदन गज वदन सदन बुद्धि मदन-करन-सुत।
गौरि-नंद, आनंद-कंद जगवंद चंद-युत॥
सुखदायक दायक सुकीर्ति जगनायक नायक।
खलघायक घायक दरिद्र सब लायक लायक॥

केशव के काव्य में अलंकाराधिक्य के कारण सामान्यत: क्लिष्टता नजर आती है, किन्तु ऐसे पद भी है जो प्रसाद गुण से सम्पन्न हैं-

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि, सुधाधर मंगल मंडि जोन्हाई॥

केशव का शब्द भंडार अनंत था। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित तो थे ही, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, अरबी-फारसी शब्दों का भी विशाल भंडार उनके पास विद्यमान था।

केशव के काव्य में **विविध छंदों** का प्रयोग देखने को मिलता है। केशव ने 'रामचंद्रिका' के प्रारंभ में ही छन्दों के संबंध में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है-

रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहुछन्द।

केशव ने रामचंद्रिका में 24 मात्रिक व 56 वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है। अपने काव्य में भावानुसार छंदों का प्रयोग करने में केशव कुशल हैं। यशोगान में जहाँ उन्होंने कवित्त व सवैया छंद का प्रयोग किया है, वहीं वीर रस परिपूर्ण भाव के लिए छप्पय छंद का प्रयोग किया है। कतिपय विद्वानों ने छंदों के प्रयोगाधिक्य के लिए केशव की रचनाओं पर आक्षेप भी लगाए हैं। पद-पद पर छंदों के परिवर्तन से रचना का प्रबंधत्व बाधित हुआ है, ऐसा केशव की रचना के विषय में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त मानते हैं।

केशव ने अपने काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण और शांत रसों का प्रयोग अधिक किया है। केशव रसिक प्रवृत्ति के थे, अत: उन्हें श्रृंगार रस ने ज्यादा आकृष्ट किया है। कृष्ण प्रेम में लीन राधा का चित्रण द्रष्टव्य है —

केशव चौंकति-सी चितवै, छतिया धरकै तरकै तकि छाँही।

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध और लव-कुश युद्ध में वीर रस का उत्कृष्ट चित्रण देखा जा सकता है —

राघव को दल मत करीश्वर अंकुश दै कुश केसव फेर~यौ।

'रामचन्द्रिका' में वीर रस पूर्ण ऐसे अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। करूणापूरित प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। लव की मूर्च्छा का समाचार सुनकर सीता की व्याकुल स्थिति का चित्रण द्रष्टव्य है —

सीता गति पुत्र की सुनि कै भई अचेत। मनो चित्र की पुत्तिका, मन क्रम वचन समेत॥

इस प्रकार केशव ने अनेकानेक रसों के सुन्दर दृश्यों को अपने काव्य में वर्णित किया है।

केशव के काव्य में अलंकारों का प्रयोगाधिक्य देखने को मिलता है। उनका मानना था कि 'भूषन बिनु न बिराजति, कविता बनिता मित्त' अर्थात् आभूषणों के अभाव में कविता और स्त्री शोभायमान नहीं होती। उनके काव्य में अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक,

उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है। श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि ऐसे अलंकारों का प्रयोग भी केशव ने किया है, जिनके कारण केशव का काव्य सर्वसाधारण के लिए कठिन और दुरूह हो गया है। ऐसे स्थलों पर केशव की हृदयहीनता ही दिखाई देती है। केशव के वर्षा-वर्णन में प्रयुक्त—

भौहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।

आदि कवित्त जिनमें दो-दो अर्थ निकलते हैं। जिन्हें समझने में सामान्यत: सभी को कठिनाई महसूस होती है, उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। संस्कृत शब्दों के प्रयोगाधिक्य के कारण जहाँ केशव के काव्य में दुरूहता आयी वहीं हिन्दी भाषा की समृद्धि एवं शब्द भण्डार की पूर्ति में योगदान भी रहा। हिन्दी भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति आयी और हिन्दी को गौरव प्राप्त हुआ। नि:सन्देह केशव की भाषा शास्त्रीयता से परिपूर्ण और अभिव्यंजना-शक्ति सम्पन्न है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. केशव की रचना में प्रयुक्त हुए अरबी-फारसी शब्दों से पाँच शब्द नीचे लिखिये -

कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द लेकर रिक्त स्थान भरिए -

2. शैली की दृष्टि से केशव ने 'रामचन्द्रिका' में..... व 'रसिकप्रिया' में ..... को अपनाया है। (मुक्तक शैली, प्रबन्ध शैली)

11.5 संदर्भ सहित व्याख्या

इससे पूर्व आपने केशव के काव्य की भावपक्षीय एवं कलापक्षीय विशेषताओं को जाना। अब हम केशव की 'रामचन्द्रिका' से कुछ पद्य खंडों की व्याख्या करेंगे।

बालक मृणालिनी ज्यों तोरि डारै सबै काल, कठिन कराल ज्यों अकाल दीह दुख कों।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम, पंख ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष कों।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम्, राखत है 'केसौदास' दास के वपुष कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तौरै, दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख कों॥

शब्दार्थ: बालक= यहाँ हाथी के बच्चे से अभिप्राय है। मृणालिनी = कमल नाल = कमल की डंडी जो बहुत कोमल होती है। दीह = दीर्घ, बड़ा। कलुष = पाप। वपुष = शरीर। सांकरे = संकट में पड़ा हुआ। सांकरनि = श्रृंखलाओं, बन्धनों को। दसमुख = दसों दिशाएं (दसों दिशाओं के लोग) तथा ब्रह्मा- चार मुख, विष्णु- एक मुख, महादेव = पाँच मुख (ब्रह्मा+विष्णु+महादेव=दसमुख)। गजमुख = गणेश।

प्रसंग:केशव दास जी 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ करते हुए विपत्तियों को नष्ट करने वाले गणेश जी की वन्दना कर रहे हैं। गणेश 'गजवदन' हैं, इसलिए उनके सभी कार्यों को कवि ने हाथी के बच्चे के कार्यों के समान दिखाने की चेष्टा की है। दसों दिशाओं के मनुष्य उनके कृपाकांक्षी रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि इसी तथ्य को प्रकट कर रहा है।

व्याख्या:जैसे हाथी का बच्चा सभी कालों में कमल- नाल को तोड़ डालता है, वैसे ही गणेशजी बड़े-बड़े भयंकर व कठिन दुखों को नष्ट कर देते हैं। विपत्तियों को इस प्रकार दूर कर देते हैं, जिस प्रकार हाथी का बच्चा कमलिनी के पत्ते को सरलता से तोड़ देता है तथा पाप (कलुष) को कीचड़ की तरह दबाकर पाताल में भेज देते हैं। आप दास के शरीर से कलंक का चिन्ह दूर करके उसे शिव के मस्तक के चन्द्रमा के समान (कलंक-रहित) बना देते हैं तथा उसकी (सदा) रक्षा करते हैं। आप सामने आते ही संकट में पड़े भक्त के बन्धनों को तोड़ डालते हैं। दसों दिशाओं के लोग अथवा दस-मुख (त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-ब्रह्मा के चार मुख, विष्णु का एक मुख, शिव के पांच मुख= दस मुख) श्रीगणेश जी का मुख देखते रहते हैं अर्थात् गणेश जी से सहायता की आशा करते रहते हैं।

विशेष: 1. अलंकार : 'बालक मृणलिनी..... दुख को' में उदाहरण, 'कठिन कराल' में 'क' की अनेक बार आवृत्ति, 'दीह दुख' में 'द' की अनेक बार आवृत्ति, 'हरत-हठि' में 'ह' की कई बार आवृत्ति, 'पाताल..... पठवे' में 'प' की एक से अधिक बार आवृत्ति तथा 'सांकरे' .....सन्मुख में 'स' की बहु बार आवृत्ति में वृत्यानुप्रास, 'पद्मिनी के पात सम' तथा 'भव-दीस ससि सम' में उपमा, 'कराल-अकाल', कलंक-अंक में ध्वनिसाम्य और 'गजमुख-मुख' में यमक तथा 'गजमुख' का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार है।

कविकुलविद्याधर सकल कलाधर, राजराज वर वेष बने।
गनपति सुखदायक, पसुपतिलायक, सूर सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन, मंगल गरगन, धर्मराज मन बुद्धि धनी।
बहु, सुभ मनसाकर, करुनामय अरु, सुरतरंगिनी सोभसनी॥

शब्दार्थ :कवि कुल= शुक्राचार्य, कवि। विद्याधर= देवताओं की एक जाति, विद्या को धारण करने वाले, विद्वान। कलाधर= कलाकार, चन्द्रमा। राजराज= कुबेर, राजाओं के राजा। बर= उत्तम। गनपति= गणों के स्वामी, गणेश। पसुपति= शिवजी पशुओं के स्वामी। सूर= शूरवीर। सेनापति= कार्तिकेय, सेना के अध्यक्ष। बुध= विद्वान, बुध नामक ग्रह। गुरु= उपाध्यक्ष तथा गुरु अर्थात् बृहस्पति ग्रह। धर्मराज= परम धर्मात्मा, सुरतरंगनी= देव नदी, सरयू।

प्रसंग: प्रस्तुत छंद में महर्षि विश्वामित्र अयोध्या के नागरिकों का वर्णन करते हुए कहते हैं-

व्याख्या: अयोध्या नगरी देव-सभा से भी बढ़कर है, क्योंकि देव- सभा में तो एक ही कवि (शुक्राचार्य) हैं जबकि यहाँ पर कवियों का समूह है। देव-सभा में विद्याधर नाम की एक देव जाति के लोग हैं, किन्तु यहाँ पर सभी लोग विद्या को धारण करने वाले अर्थात् विद्वान हैं। देव-सभा में कलाधर (चन्द्रमा) एक ही है, किन्तु यहाँ पर सभी कलाकार हैं। देव-सभा में उत्तम वेश धारण करने वाले अनेक व्यक्ति हैं। देव-सभा में देवों को सुख देने वाले केवल एक (गणपति गणेश) हैं, जबकि यहाँ पर पशुओं के स्वामी अनेक हैं। राज-काज में सहायता देने वाले ये शूरवीर इतने हैं कि गिने भी नहीं जा सकते। देव-सभा में सेनापति कार्तिकेय एक ही हैं जबकि यहाँ पर अनेक सेनापति हैं। देव-सभा में एक बुधजन एवं गुरु है, जबकि यहाँ मंगलकारक गुरुओं का समूह है। देव-सभा में अच्छा मन और अच्छी बुद्धि रखने वाले एक ही धर्मराज (यमराज) हैं, जबकि यहाँ पर अनेक धर्मात्मा हैं। देवलोक में एक ही कल्पवृक्ष है जबकि यहाँ पर बहुत से मनोवांछित फल देने वाले वृक्ष हैं। वहाँ एक ही दयापूर्ण विष्णु तथा एक ही सुर-तरंगिनी (देव नदी, आकाश गंगा) है जबकि यहाँ बहुत-से लोग दयापूर्ण हैं और यहाँ परम पावन सरयू नदी है।

विशेष: 1. अलंकार : 'कवि-कुल, कल-कला', राज-राज, वर-वेष बने, पसु-पति, सूर-सहायक, गुरु-गन, सोम-समी में अनुप्रास। लगभग सभी शब्दों में श्लेष तथा मुद्रा अलंकार है, क्योंकि उनका एक अर्थनाम है। दायक-लायक-सहायक, जन-गन-मन में ध्वनिसाम्य है। 2. इस पद में कवि का अलंकार चमत्कार तथा शब्दों का गठन विशेष उल्लेखनीय है। 3. अनेक स्थानों पर मुद्रा अलंकार का प्रयोग है। शब्द शक्ति का वर्णन चमत्कारपूर्ण है। अर्थ सहज बोधगम्य नहीं है। ऐसी ही छन्द-रचना के कारण केशव 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे गये हैं। 4. इस छन्द में प्राय: सभी पद श्लिष्ट हैं। श्लेष अलंकार के चमत्कार के कारण यद्यपि कठिनाई आ गई है, किन्तु देव-सभा की अपेक्षा अयोध्या की जो विशेषता दिखाना कवि को इष्ट है, वह पूरा हो गया है।

पावक, पवन, मनिपन्नग, पतंग, पितृ, जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, तीरथ सहित सिंधु, केसव चराचर जे बेदन बताए हैं।
अजर-अमर अंगी औ-अनंगी सब, बरनि सुनावै ऐसे कौने गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिबे कों, भूपन को रूप धरि विस्वरूप आए हैं॥

शब्दार्थ : मनि पन्नग= मणिधारी सर्प। पतंग= सूर्य। पितृ= पूर्वज। ज्योतिवंत= प्रकाशवान। अंगी= शरीरधारी। अनंगी= अशरीरी। अवलोकिबेकों= देखने के लिए। विस्वरूप= भगवान। अजर= जो कभी वृद्ध न हो।

प्रसंग-महाकवि केशवदास अपने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में सीता के स्वयंवर के अवसर पर मण्डप में उपस्थित सुर-असुर, सिद्ध आदि का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या-ज्योतिषियों ने संसार में अग्नि, वायु, मणिधारी सर्प, सूर्य, पितर आदि जितने तेजस्वी ताये हैं। वेदों ने असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, सागर सहित सभी तीर्थ तथा जितने चर और अचर प्राणियों का वर्णन किया है; सभी अजर-अमर, निराकार और साकार प्राणियों का वर्णन कर सके, ऐसे गुण किसे प्राप्त हुए हैं ? अर्थात् किसी को नहीं। ये सभी सीता के स्वयंवर में उपस्थित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु स्वयं ही राजाओं का रूप बनाकर सीताजी का स्वयंवर देखने को पधारे हैं।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'पावक-पवन, पतंग-पितृ, जेते-ज्योतिवन्त-जग-ज्योतिषिन, सहित-सिन्धु, बेदन-बताये' में अनुप्रास; 'बरनि सुनावै ऐसे कौन गुन पाये हैं' में वक्रोक्ति से पुष्ट सम्बन्धातिशयोक्ति तथा 'भूपन के रूप धरि विस्वरूप आये हैं' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। 'प्रसिद्ध-सिद्ध, अजर-अमर, अंगी-और-अनंगी' में ध्वनिसाम्य है। 2. शांत रस, ब्रजभाषा एवं घनाक्षरी छंद है। 3. शब्द चयन में अत्यन्त लाघव और कौशल का प्रदर्शन है।

केशव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेल बई है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ: सातक आठक सों भवतीनिहू लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोग मई है।

शब्दार्थ-केशव= राम। मिथिलाधिप= मिथिला के राजा जनक। कीरति= यश। बई= बोई। विधानन= कार्यों। अंग छ: = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द, छ: वेदांग। सात अंग= राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग और सेना। आठ अंग= यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि। वेदत्रयी= तीनों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

प्रसंग-रामचन्द्रजी को महर्षि विश्वामित्र राजा जनक के गुणों से अवगत कराते हुए कह रहे हैं।

व्याख्या-हे राम! ये मिथिलापुरी के राजा जनक हैं, जिन्होंने संसार में अपने यश की बेल को बो दिया है अर्थात् इनका यश संसार में सर्वत्र फैल रहा है। इन्होंने दान, तलवार और राजनीति के नियमों के द्वारा समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में कर रखा है। इनको छहो वेदांग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, ज्योतिष और छंद का ज्ञान है तथा ये राज्य के सातों अंगों से युक्त हैं और योग के आठों अंगों से सम्पन्न हैं। शास्त्र के छह अंगों, राज्य के सात अंगों और योग के आठ अंगों द्वारा इन्होंने तीनों लोकों में अपना प्रभाव जमा रखा है। वेदत्रयी तथा राजश्री दोनों की परिपूर्णता का शुभ योग इनमें हुआ है अर्थात् ये वेदों के ज्ञाता और राजा दोनों ही हैं। यह इनकी विशेषता है।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'जग में जिन', 'बेलि-बई' में अनुप्रास तथा दान-कृपान-विधान, सातक-आठक में ध्वनिसाम्य है। 'कीरति-बेलि' में रूपक और 'जोग' में श्लेष अलंकार है। 2. महर्षि विश्वामित्र रामचन्द्रजी को राजा जनक के गुण बताते हुए उन्हें वेद और राजा दोनों को सिद्ध करते हुए उनकी विलक्षणता का प्रदर्शन करते हैं। 3. ब्रजभाषा भाषा और सवैया छंद है। 4. वेद, राज्य और योग के अंगों का संकेत करके केशव ने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

ताड़का संहारी तिय न विचारी, कौन बड़ाई ताहिं हने ?
मारीच हुते संग प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखबारी गुरु सुखकारी, गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो, सीय स्वयंवर मांझ बरी।

शब्दार्थ: तिय= स्त्री। सकल = सब। खल = धूर्त, दुष्ट। क्रतु= यज्ञ। गौतमतीय= गौतम की पत्नी, अहिल्या। हर= शिवजी। मंड्यो= सुशोभित किया।

प्रसंग: प्रस्तुत छन्द परशुराम और वामदेव के संवाद के रुप में है। वामदेव द्वारा राम का परिचय ताड़का-वधकर्ता के रुप में पाकर परशुरामजी बोले-

व्याख्या: परशुरामजी कहते हैं कि राम ने ताड़का राक्षसी का वध किया, परन्तु यह नहीं विचारा कि वह नारी थी और नारी तो अवध्य है। अत: एक नारी का वध करने में कौन-सी बड़ाई की बात है? राम की यह प्रशंसा व्यर्थ है। तब वामदेवजी कहते हैं कि ताड़का अकेली न थी। उसके साथ सब धूर्त राक्षसों में बली मारीच और सुबाहु भी थे। इन सबको किसी ने नहीं गिना। इतना ही नहीं, यज्ञ की रक्षा करके गुरु विश्वामित्र को सुख देने वाले राम ने गौतम की पत्नी अहिल्या को पवित्र करके उसका उद्धार किया और महादेव जी

के धनुष को खण्ड-खण्ड करके संसार को अपने यश से सुशोभित किया। स्वयंवर में सब राजाओं के मध्य में राम ने सीता का वरण किया अर्थात् उनसे विवाह किया। ऐसे शूरवीर जनहितकारी एवं बली राम को आप नहीं जानते, यह आश्चर्य है।

विशेष: 1. **अलंकार-** 'करि-क्रतु', 'सीय-स्वयंवर' में अनुप्रास, 'प्रबल-सकल-खल', 'बारी-कारी', 'मंड्यो-खंड्यो' में ध्वनिसाम्य है। 2. कवित्त छंद एवं संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा में लिखित इन पंक्तियों में केशवदास का संवाद-कौशल झलक रहा है। 3. परशुरामजी द्वारा नारीकी अवध्यता का प्रश्न अनुत्तरित रह गया है।

निज देखौं नहीं शुभगीतहिं सीतहिं कारण कौन कहौ अब हीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं॥
कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पण्कुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं॥

शब्दार्थ : शुभगीतहिं = उत्तम कीर्तिवाली को। हित = प्रेम। सुर मारग = शब्द के मार्ग से, जिस ओर से सीताजी को 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई पड़े थे, उस मार्ग से। त्रास = भय से। दुराय रही = छिप गई।

प्रसंग : जब श्रीराम और लक्ष्मण दोनों पर्णकुटी में लौटकर आये तो पर्णकुटी सूनी देखकर श्रीराम लक्ष्मण से पूछने लगे।

व्याख्या: मैं उत्तम कीर्तिवाली अपनी सीता को यहाँ नहीं रहा हूँ। इसका क्या कारण है ? तुम तुरन्त यह सब बताओ। क्या सीता मुझ पर बहुत प्रेम प्रकट करके वहां शब्द के मार्ग से वन में चली गई, जहाँ मैंने मृग को मारा था और जहाँ से उन्हें 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई दिया था या तुम से उन्होंने कुछ कटु वचन कहे हैं, जिससे लज्जित होकर भय से कहीं छिप गई हैं या क्या यह हमारी वही पर्णकुटी है अथवा कोई दूसरी है ? क्या तुम मेरे भाई लक्ष्मण ही हो या अन्य कोई मायावी पुरुष हो ? भाव यह है कि पुर्णकुटी की सब व्यवस्था विपरीत देखकर राम उसका कारण नहीं जान पा रहे हैं।

विशेष: अलंकार- 1.'कारण-कौन कहौ', 'मारग-मैं-मृग-मार्‌यो', 'तेहि त्रास' में अनुप्रास अलंकार तथा 'शुभगीतहिं-सीतहिं' में ध्वनिसाम्य है। सम्पूर्ण पद में संदेह अलंकार है। 2. सवैया छंद, ब्रजभाषा एवं वियोग श्रृंगार रस है। 3. इस छंद में उत्तम कोटि की भाव-व्यंजना है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. केशव ने अपने काव्य में किन-किन भाषाओं का प्रयोग किया है ? (सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाएं)।

क. बुन्देलखण्डी ( )
ख. अवधी ( )
ग. छत्तीसगढ़ी ( )
घ. भोजपुरी ( )

2. 'रामचंन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहुछन्द' किसका कथन है? इसका क्या अर्थ है ?

.....
.....
.....

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए कि केशव रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य हैं।
2. महाकवि केशवदास के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ बताइये।
3. सिद्ध कीजिए कि केशव ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।
4. रामचंद्रिका का महाकाव्यत्व की दृष्टि से आकलन करते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. केशव के प्रकृति वर्णन पर प्रकाश डालिए।

11.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि हिन्दी में केशवदास ने साहित्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र (अर्थात् रस अलंकार, छंद आदि काव्यांगों) का का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत करने का कार्य किया, जिससे वे रीतिकाव्य-धारा के प्रवत्तर्क आचार्य कहलाते हैं। केशव ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' दो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। साम्प्रदायिक दृष्टि से एक अलंकारवादी आचार्य थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वे सर्वांगनिरूपक आचार्य थे। प्रबंधकाव्यों की परंपरा में केशव रचित 'रामचंद्रिका' की गणना होती है। 'रामचंद्रिका' अपने संवाद सौष्ठव में बेजोड़ है। प्रकृति वर्णन, भक्ति वर्णन संबंधी आदि पदों में केशव पर हृदयहीनता का आरोप लगाया जाता है। वस्तुत: उनके व्यक्तित्व में जो अंतर्विरोध मिलता है, वह संस्कृतमय वातावरण में पैदा होने और दरबार से जुड़े होने के कारण है। इस इकाई के संरचनाशिल्प के अध्ययन से इस बात को आप स्वयं अनुभव कर सकेंगे।

11.7 शब्दावली

विष	-	1. जल 2. जहर
अमृतन	-	1. सुधा 2. देवता
जीवनहार	-	1. सांसारिक जीव 2. पानी पीने वाले
अशेष	-	समस्त
प्रक्षालन	-	धोना
पात्रानुकूलता	-	पात्र के अनुकूल, जो पात्र के स्वभाव, शक्ति आदि के अनुसार हो।
लक्षण ग्रंथ	-	जिस ग्रंथ में कविता से संबंधित तत्वों – रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन हो।
मानवीकृत	-	मानवीय रूप,
बारहमासा	-	जिसमें वर्षभर के बारह महिनों का वर्णन हो,यह विरहकाव्य में प्रयुक्त होता है।
प्रशस्ति	-	प्रशंसा,
आलम्बन	-	नायक या नायिका, जिसके कारण रति, क्रोध आदि भाव जाग्रत हो।
उद्दीपन	-	सुख-दुखात्मक भावों को उदीप्त अर्थात् बढ़ाने वाला।
सात्विक	-	पवित्रतायुक्त
सौष्ठव	-	सुडौलपन
आचार्यकवि	-	जो रीतिबद्ध कविता करने के साथ-साथ काव्यशास्त्र की शिक्षा भी देते थे।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. ब. महाकाव्य
2. ब. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रंथ को काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भी कहा जाता है। जिस ग्रंथ में काव्य अथवा कविता से संबंधित तत्वों- रसों, अलंकार, वृत्ति, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन किया जाता है, उसे लक्षण ग्रंथ कहते हैं।
2. ब. चिन्तामणि को।
3. कविप्रिया अलंकार निरूपक ग्रंथ है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. अपने काव्य में कवि जो कहता है या जिस विषय पर प्रकाश डालता है, वह कथ्य है।
2. 1. जहांगीर 2. रतनबावनी
3. 1. कूटनीति से पूर्ण है। 2. शिष्टाचारयुक्त हैं।
   3. पात्रानुकूल हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. काव्य में जहाँ पर जड़ या अचेतन पर मानवीय भावों का आरोप किया जाता है उसे 'मानवीकरण' कहा जाता है।
2. काव्य में जहाँ पर शब्द अपने मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ को छोड़ व्यंग्य अर्थ का बोध कराते हैं, वह व्यंग्यार्थ कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. क. सिरताज ख. सतरंज
   ग. बाजी घ. फरमान
   ङ. महल
2. शैली की दृष्टि से केशव ने रामचंद्रिका में **प्रबंधशैली** व रसिकप्रिया में **मुक्तक शैली** को अपनाया है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. क. बुंदेलखंडी (✓) ख. अवधी (✓)
   ग. छत्तीसगढ़ी (×) घ. भोजपुरी (×)
2. यह कथन केशवदास का है। इस कथन का अर्थ है कि 'मैं रामचंद्रिका में श्री रामचंद्र जी की शोभा का वर्णन विविध छंदों के माध्यम से कर रहा हूं।'

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति चंद्र, (नवम सं. 2010), हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*
2. शुक्ल, रामचंद्र, (2010 तृ सं.), हिन्दी साहित्य का इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*
3. सक्सेना, द्वारिकाप्रसाद, (1985-86), हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, *विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*
4. सिंह, वासुदेव, (1993), हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, *संजय बुक सेंटर, वाराणसी।*
5. नगेन्द्र, (1983), रीति-काव्य की भूमिका, *नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली*।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. महाकवि केशव दास का जीवन परिचय देते हुए उनके संपूर्ण साहित्यिक रचना विकास पर विस्तृत निबंध लिखिए।
2. रीतिकालीन कवि एवं आचार्य केशव दास की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनका महत्व प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 12 घनानन्द - परिचय, पाठ और आलोचना इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 रीतिमुक्त कवि घनानन्द
12.3.1 नाम संबंधी विवाद
12.3.2 घनानन्द और सुजानं
12 .4 घनानन्द की रचनाएँ
12.4.1 घनानन्द की कविता- संदर्भ सहित व्याख्या
12.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
12.5.1 घनानन्द की काव्यानुभूति - भावपक्ष
12.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

यह इकाई रीतिकालीन कवि घनानन्द से संबंधित है। पूर्व में आप पढ़ चके हैं कि रीतिकाल में तीन प्रकार की काव्य-रचना होती थी, और इसी आधार पर ये कवि भी तीन प्रकार के थे - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। जो कवि काव्यांगों (रस, अलंकार) के लक्षण उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्य शक्ति का उपयोग करते थे वे रीतिबद्ध कवि कहलाते हैं। (चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम,देव,भूषण, पद्माकर आदि) जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परन्तु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रन्थों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है (बिहारी, बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, सेनापति आदि) तथा जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और नहीं रीतिकालीन परम्परा व प्रवत्ति से प्रभावित हुए, वरन् स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करते रहे उन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। घनानन्द ऐसे ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि हैं। इस इकाई में आप घनानन्द के जीवन वृत्तांत एवं उनकी काव्य रचनाओं तथा उनके काव्य की विशेषताओं से परिचित होंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में आपको रीतिमुक्त कवि घनानन्द के जीवन एवं उनके काव्य से परिचित कराया जायगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि के रूप में घनानन्द के महत्व को समझ सकेंगे।
- घनानन्द की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का पाठ कर उसके अर्थ को समझ सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.3 घनानन्द - परिचय

हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों अर्थात् आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के प्रमुख कवियों के जीवन के विषय में दृढ़ता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन सभी कवियों ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। आदिकाल के चंद कवि अथवा नरपति नाल्ह किसी का भी जीवन परिचय पूरा नहीं मिलता। इस काल के पश्चात् यदि भक्तिकाल की ओर दृष्टि डालें तो वहाँ भी निराशा ही होती है। कबीर हो या सूर अथवा तुलसी सभी कवियों ने अपने विषय में इतना कम लिखा है कि वह उन पर पूर्ण प्रभाव डालने में असमर्थ है। इसी प्रकार रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द भी अपवाद नहीं हैं। उनका प्रेमवत्सल हृदय अपने प्रेमी की महिमा का वर्णन करने में ही मस्त रहता था। अब हम घनानन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

12.3.1 नाम सम्बन्धी विवाद

वास्तव में हिन्दी साहित्य में केवल एक ही घनानन्द नहीं हुए, इस नाम के अन्य कवि भी मिलते हैं। इसी से स्वच्छन्द काव्य धारा के घनानन्द के नाम की प्रमाणिकता का प्रश्न सामने आता है। इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। घनानन्द, आनन्द घन और आनन्द-इन तीनों नामों में विवाद हैं, कि रीतिकालयुगीन घनानन्द कौन है ?

डॉ0 ग्रियर्सन ने आनन्द को ही रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि घनानन्द माना है। उनके मत में 'घन' शब्द आनन्द के साथ नहीं, पर वे 'आनन्द' ही घनानन्द हैं। परन्तु अत्याधुनिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि 'आनन्द' एक स्वतंत्र कवि थे, जिन्होंने कोक मंजरी की रचना की थी-

''कायस्थ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार
कोक कला इहिरूचि करन जिन यह किये विचार''

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत में भी ग्रियर्सन वाले 'आनन्द' घनानन्द नहीं हैं, क्योंकि दोनों के रचनाकाल में लगभग चालीस वर्षों का अन्तर है।

घनानन्द के नाम के संबंध में दूसरा मुख्य विवाद 'आनन्द घन' नाम को लेकर है। 'आनन्द घन' नाम के तीन व्यक्ति मिलते हैं।

1. जैन धर्मी घनानन्द
2. वृन्दावन के आनन्द घन
3. नन्दगॉव के आनन्द घन

श्री क्षितिमोहन सेन ने नवम्बर सन् 1938 में वीणा मैं 'जैन धर्मी आनन्द घन' शीर्षक लेख में वृन्दावन के आनन्द घन और जैन धर्मी आनन्द घन-दोनों एक ही व्यक्ति के नाम होने की सम्भावना प्रकट की है। श्रीमती ज्ञानदेवी ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति माना है किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक घनानंद और आनन्दघन की भूमिका में इस विवाद को समाप्त करते हुए यह सिद्ध किया है कि जैनधर्मी घनानन्द और वृन्दावन के आनन्दघन दोनों एक व्यक्ति नहीं थे - भिन्न भिन्न व्यक्ति थे क्योंकि दोनो व्यक्तियों के काव्य के रचना काल में समानता नहीं है और न ही उनके काव्य में कोई समानता है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के रचना काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। जैन धर्मी घनआनन्द का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, और वृन्दावनवासी 'आनन्दघन' का समय विक्रम की 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

जैनधर्मी 'घनआनन्द' और वृन्दावन के 'आनन्दघन' के पश्चात तीसरा नाम नन्दगॉव के आनन्दघन का आता है। यह चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक कवि ठहरते हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के घनानन्द के समय में और नन्दगॉव के आनन्द घन के समय में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर है। रीतिमुक्त घनानन्द का समय आठ वीं शताब्दी और नन्दगॉव के आनन्दघन का समय की 16 वीं शताब्दी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानन्द का समय सन् 1774 से 1796 तक माना हैं। इस प्रकार वृन्दावन के आनन्दघन ही रीतिमुक्त घनानन्द हैं। शुक्ल जी के विचारानुसार यह नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गये। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत भी इनसे मिलता है कवि का मूल नाम आनन्दघन ही रहा होगा, परन्तु छन्दात्मक लय विधान इत्यादि के कारण यह स्वयं ही आनन्दघन से घनानन्द हो गया। हिन्दी साहित्य में यह अपवाद नहीं, क्योंकि सूरदास के भी सूर, सूरजदास, सूरजश्याम और सूरज आदि नाम मिलते हैं।

जन्म तिथि व जन्मस्थान - घनानन्द के जीवन के लगभग सभी महत्वपूर्ण तथ्य विवादास्पद हैं नाम, जन्म स्थान, रचनाएँ, जन्मतिथि आदि। इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच मतभेद हैं। लाला भगवानदीन के अनुसार घनानन्द का जन्म संवत् 1715 को हुआ, परन्तु शुक्ल जी ने इस संवत् को न मानकर संवत् 1746 में इनका जन्म माना है। इसी प्रकार अन्य आलोचकों ने इनकी जन्मतिथि के विषय में अलग-अलग मत दिये है विभिन्न विद्वानों के मतों की आलोचना करने के पश्चात डॉ0 मनोहर लाल गौड़ ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में लिखा है- 'संम्वत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 27 वर्ष के ये होते हैं। जो इनके दीक्षा वृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है।'

जन्म तिथि की ही भाँति घनानन्द के जन्म स्थान का विषय भी विवाद का विषय है। कुछ आलोचक उन्हें हिसार निवासी मानते हैं, तो अन्य उन्हें बुलन्दशहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आसपास का होना मानते हैं। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इन्हें बुलन्दशहर का निवासी माना है श्री बहुगुणा के विचार में यह कोट-हिसार के रहने वाले थे। घनानन्द के काव्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता कि वह कहाँ के रहने वाले थे। यह भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृन्दावन चले गये थे इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में ब्रज और वृन्दावन का वर्णन सजीवता के साथ किया है, उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता अन्यथा उनके काव्य में (ब्रज संस्कृति) इतना सुन्दर ब्रज का चित्रण नहीं मिलता हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुजान के प्रेम में धोखा खाकर ये वृन्दावन चले गये होंगे।

12.3.2 घनानन्द और सुजान

घनानन्द के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना जिसका उल्लेख प्रायः सभी विद्वानों ने किया है, इस प्रकार है-घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रँगीले के 'खास-कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे। मुहम्मद शाह के दरबार की सुजान नाम की वैश्या से वे जी जान से प्रेम करते थे। सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी और बादशाह के खास कलम इन दोनों बातों के कारण दरबारी इनसे ईर्ष्या करते थे। उन्होंने इन्हें राज्य से निष्कासित करने का षड्यन्त्र रचा। एक दिन दरबार में उन सबने बादशाह से घनानन्द की गान कला की प्रशंसा की। मुहम्मद शाह ने घनानन्द से गाने को कहा पर घनानन्द ने विनम्रता पूर्वक गाना सुनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, इस पर उन षड्यन्त्रकारियों ने कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाय और वह घनानन्द से गाने का अनुरोध करे तो वे अवश्य गायेंगे। सुजान बुलाई गई और घनानन्द ने सचमुच सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया। गाने ने सभी को मन्त्रमुग्ध कर दिया, किन्तु गाने

के प्रभाव से मुक्त होने पर बादशाह अत्यधिक नाराज हुआ क्योंकि एक तो घनानन्द ने राजा की आज्ञा की अपेक्षा सुजान के अनुरोध को महत्व दिया दूसरे राजा की ओर पीठ व सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया इस बेअदबी को बादशाह सहन न कर सका और उसने घनानन्द को देश निकाला दे दिया कहते हैं कि राज्य छोड़ते समय ये सुजान के पास गये। और उससे साथ चलने को कहा परन्तु उसने अपने जातीय गुणों की रक्षा की और साथ चलने से इन्कार कर दिया। वे खिन्न और विरक्त भाव से राज्य छोड़कर चल दिये और वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। अधिकांश विद्वानों ने घनानन्द का सुजान से प्रेम, बादशाह रँगीले द्वारा देश निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानन्द के जीवन का अन्तिम समय वृन्दावन में बीता।

मृत्यु - घनानन्द की मृत्यु की तिथि भी उनकी जन्म तिथि के समान ही विवादास्पद है इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद के निष्कर्ष मान्य हैं। अन्य आलोचकों ने माना है कि घनानन्द की मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय हुई थी। परन्तु विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के मत से उनकी मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय न होकर अहमद शाह अब्दाली के मथुरा पर किये गये द्वितीय आक्रमण के समय संवत् 1817 (सन् 1679) में हुई थी। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार सन् 1796 में नादिरशाह ने मथुरा पर नहीं, दिल्ली पर आक्रमण किया था, जबकि अहमदशाह अब्दाली ने मथुरा पर पहला आक्रमण सन् 1893 में और दूसरा आक्रमण सन् 1897 में किया था, इन दोनों आक्रमणों का वर्णन वृन्दावन दास कृत 'हरिकला' बेलि में मिलता है-

''ठारह सै सत्रहहौं वर्ष गत् जानियै।
साढ़ वदी हरिबासर बेल बखानियै''

घनानन्द की अभिलाषा थी कि वे ब्रज में लोटते हुए अपने प्राण दें और उनकी यह इच्छा पूरी हुई।

घनानन्द का सम्प्रदाय - घनानन्द के काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनके ग्रन्थ परमहंस-वंशावली में उन्होंने अपने शुरू की परम्परा का वर्णन किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रेम-लक्षण अनुरागात्मिकता परमभक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। घनानन्द की भक्ति पर इस सम्प्रदाय की अर्थात गोपी या सखी भाव की पूर्ण छाया परिलक्षित होती है इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द ग्रंथावली' की भूमिका में एक स्थान पर कहा है- ''प्रेम साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े-बड़े साधकों, सिंद्धों को पीछे छोड़कर 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गये थे। अतः सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था'' निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखी नाम' लेना पड़ता है। अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी' घनानन्द के साहित्य में कई कृतियों में इस नाम का उल्लेख मिलता है, जहाँ कवि ने घनानन्द के स्थान पर 'बहुगुनी' नाम से लिखा है।

''नीको नांव बहुगुनी नाम मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।।
राधा नांव बहुगुनी राखो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यो''।।

12.4 घनानन्द की रचनाएँ

घनानन्द की विलुप्त और बिखरी हुई रचनाओं को समेटने का प्रयत्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सुंदरी तिलक' नाम से किया। इसके बाद सन् 1870 ई. में 'सुजान शतक' नाम से 119 कवित्त सामने आए। 1897 ई. में जगन्नाथदास

रत्नाकर ने सुजान सागर निकाला। सन् 1907 में काशी प्रसाद जायसवाल ने 'वियोग बेलि', 'विरह लीला' का प्रकाशन किया। इसी क्रम में 'घनानन्द रत्नावली' का प्रयाग से प्रकाशन हुआ। 1943 में शम्भु प्रसाद बहुगुणा ने 'घनाआनन्द' नाम से पुस्तक प्रकाशित की। किन्तु इन सभी रचनाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से संपादन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया। इनका पहला संग्रह 'घनानंद कवित्त' (505 पद्य) नाम से आया। इनका दूसरा संग्रह 'सुजान हित' प्रबन्ध 701 कवित्त सवैया छंदों का आया। अंततः मिश्र जी ने 'घनआनंद ग्रंथावली' को 1952 में संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इसमें ''प्रेम सरोवर,'' ''प्रेम पहेली,'' ''ब्रज वर्णन'' तथा 'सुजान हित' को समाहित किया गया। अब इस ग्रन्थावली में 1068 पद हैं इधर ''वृन्दावन मुद्रा'' ''प्रेम पत्रिका'' तथा ''प्रकीर्णन'' और आए हैं। तथा अन्य रचनाओं का अनुसंधान कार्य जारी है। अब ये काव्य छंद 4108 तक उपलब्ध हो गए हैं। घनानन्द ग्रन्थावली में संकलित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं-

1. सुजान हित
2. कृपाकंद
3. वियोग बेलि
4. इश्कलता
5. यमुना यश
6. प्रीति पावस
7. प्रेम पत्रिका
8. प्रेम सरोवर
9. ब्रज विलास
10. सरस बसंत
11. अनुभव चंद्रिका
12. रंग बधाई
13. प्रेम पद्धति
14. वृष भानुपुर सुषमा वर्णन
15. गोकुल गीत
16. नाम माधुरी
17. गिरि पूजन
18. विचार सार
19. दान घटा
20. भावना प्रकाश
21. कृष्ण कौमुदी
22. धाम चमत्कार
23. प्रिया प्रसाद
24. वृंदावन मुद्रा
25. ब्रज स्वरूप

26. गोकुल चरित्र
27. प्रेम पहेली
28. रसना यश
29. गोकुल विनोद
30. ब्रज प्रसाद
31. मुरलिका मोद
32. मनोरथ मंजरी
33. छन्दाष्टक
34. त्रिभंगी
35. परम हंस वंशावली
36. ब्रज व्यवहार
37. गिरि गाथा
38. पदावली
39. प्रकीर्णक (स्फुट)

12 .4.1 संदर्भ सहित व्याख्या

अब हम घनानन्द के कुछ पदों की संदर्भ सहित व्याख्या करेंगे। इससे आपको घनानन्द के काव्य की व्याख्या करने में मदद मिलेगी।

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन मैं छवि-फूलन की, वर्षा उर ऊपर जाति ह्वै ॥
लटलोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वैं।
अंग-अंग तरंग उठैं दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै॥

संदर्भः- घनानन्द द्वारा रचित यह सवैया विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'घनानन्द कवित्त' पुस्तक से लिया गया है इस सवैये मैं कवि ने अपनी प्रिया 'सुजान' के रूप सौन्दर्य का स्वानुभूत वर्णन किया है।

प्रसंगः- सुजान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

व्याख्या-नायिका का अत्यन्त सुन्दर गौर मुख चमक रहा है और उस पर कानों तक फैले हुए प्रेमोन्मत नेत्र सुशोभित हो रहे हैं; जब वह हँसकर बोलती है तो ऐसा लगता है मानो उसके उसके वक्षस्थल पर शोभा के फूलों की वर्षा हो रही है; कपोलों पर चंचल लटें हिलती हुई क्रीड़ा कर रही हैं और सुन्दर कंठ में दो लर की मोतियों की माला शोभा दे रही है; उसके अंग-प्रत्यंग की कान्ति से शोभा की लहरें-सी उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अभी पृथ्वी पर रूप चू पड़ेगा।

विशेषः-

(1) आलम्बन-विभाव का मोहक रूप-चित्रण हुआ है।
(2) प्रथम पंक्ति में 'छके' की शब्द में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है। नेत्रों में प्रेम की खुमारी की परिपूर्णता को व्यंजित करने के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।

(3) तृतीय पंक्ति में 'क' तथा 'ल' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास है।
(4) 'अंग-अंग (चतुर्थ पंक्ति) में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार और 'परिहै मनौ च्वै' में उत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है।
(5) भाषा का माधुर्य और लालित्य भी सुकोमल सौन्दर्य-चित्रण के अनुरूप ही है।

छवि कौ सदन, मोदमंडित बदन-चन्द,
तृषित चखनि लाल, कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करे, मटकीली भाँति सों ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौं।।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौं।
बिरह-जगत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि, आनंद को धन बरसायहौं।।

सन्दर्भः-विरहिणी नायिका अपने प्रियतम की रूप-माधुरी का स्मरण कर व्याकुल हो रही है और पुनः उसके दर्शन की लालसा से विवश होकर विनय कर रही है।
व्याख्याः- हे प्रियतम ! तुम अपने प्रफुल्ल, शोभा के भण्डार चन्द्रमा रूपी मुख को न जाने कब तक मेरे इन प्यासे नेत्रों को दिखलाओगे और न जाने कब भड़कीला वेश धारणकर नाज-नखरों-सहित ढंग से अधरों पर बाँसुरी बजाते मस्ती से झूमते हुए आओगे, तथा नेत्रों को चलाते हुए मन्द-मन्द मुस्कराहट के साथ, चंचलता पूर्वक स्नेह-सिक्त बातें करोगे न जाने कब तक हे कृपा के सागर, प्राण-प्रिय ! हृदय में मुझे विरहाग्नि से दग्ध होता हुआ जानकर, प्रेमानन्द की वर्षा कर प्राण-दान दोगे ?
विशेषः-
(1) विरह की दस काम-दशाओं में से 'स्मृति' तथा 'अभिलाषा' का मार्मिक चित्रण हुआ है।
(2) 'तृषित चखनि' (द्वितीय पंक्ति) में लक्षणा-मूला-शब्दी-व्यंजना है।
(3) 'मृदु मुस्क्यानि' (पंचम पंक्ति) में छेकानुप्रास और 'जरत जिय' जानि (सप्तम पंक्ति) में वृत्यानुप्रास दर्शनीय है।
(4) अन्तिम पंक्ति में 'कृपानिधि' लाल (कृष्ण) का साभिप्राय-विशेषण होने से परिकर अलंकार है।
(5) 'बदन चन्द्र' (प्रथम पंक्ति) में उपमेय पर उपमान (चन्द्र) का आरोप होने से रूपक अलंकार है।
(6) 'जानि-आनि' (सप्तम पंक्ति) में सुन्दर पद-मैत्री है।

भोर तैं साँझ लौं कानन-ओर निहारिति बाबरी नैक न हारति।
साँझ तैं भोर तारिन ताकिबौ तारनि सों इकतार न टारति।।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुनि औसर गारति।

मोहन सोंहन जोहिन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।

सन्दर्भः-इस सवैया में विरहिणी-नायिका की मनः स्थिति का बड़ा ही यथार्थ आकलन किया गया है।

व्याख्याः-वह बावली विरहिणी-नायिका प्रातःकाल से सायंकाल तक जंगल की ओर ही देखती रहती है और तनिक भी नहीं थकती, संध्या से प्रातःकाल तक वह अपनी आँखों से इकटक निहारती हुई ही वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती (अर्थात् तारों को इकटक निहारती हुई वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती है); और यदि कहीं प्रिय दिखाई पड़ जाता है तो निरन्तर अश्रुप्रवाह के कारण उसके दर्शन-लाभ के सुअवसर को भी वह खो देती हैं; इस प्रकार उस विरहिणी के आँखों के हदय में प्रियतम को सदैव समक्ष देखने की लालसा बनी ही रहती है।

विशेषः-

(1) प्रिय-मिलन की आशा में प्रतीक्षा के क्षण कष्ट सहकर भी कितने मधुर होते हैं, इस मनोवैज्ञानिक-सत्य का उद्घाटन प्रथम दो चरणों में बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से किया गया है।

(2) 'आँखिन के उर' में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है।

(3) 'निहारति-हारति' (प्रथम पंक्ति) में सभंग पद यमक है।

(4) द्वितीय चरण में 'तारनि' में यमक अलंकार है - तारनि (प्रथम) तारागण; तारनि (द्वितीय) पुतलियाँ।

पाप के पुंज सकेलि सु कोन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।।
क्यों धनआनन्द धीर धरै बिन पाँख निगोड़ी मरै अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई।

सन्दर्भः-इस सवैया में स्नेही-कवि प्रिय सुजान के रूप-दर्शन के अभाव में अपने नेत्रों की अवस्था का वर्णन करता हुआ कह रहा है-

व्याख्याः- न जाने कौनसी अशुभ घड़ी में, संपूर्ण पापों के समूह को एकत्र करके विधाता ने मेरे इन नेत्रों की रचना की है; इतना ही नहीं बल्कि रूप के लोभी इन नेत्रों को प्रेम के रंग में भिगोने के उपरान्त भी सुजान की आँखों से मिला दिया है; फिर भला किस प्रकार से धैर्य धारणा करें, प्रिय सुजान के सहारे के बिना अथवा उन तक पहुँचने के आधार पंखों के अभाव में ये अभागे नेत्र विवशता में अकुलाकर मरे जा रहे हैं; इस प्रकार दुःख के मारे ये नेत्र प्रिय-दर्शन के प्यासे आँसुओं से भरे हुए, प्रिय सुजान का मुख देखने के लिए तड़पते हुए बरसते रहते हैं।

विशेषः-

(1) नेत्रों की नैसर्गिकता के प्रति विरही-कवि की खीझ बड़ी मार्मिक बन पड़ी है।

(2) 'विरंचि बनाई' (प्रथम पंक्ति); 'धीर धरै' (तृतीय पंक्ति) में 'ब' तथा 'ध' वर्णों की क्रमशः दो बार आवृति होने से छेकानुप्रास अलंकार स्पष्ट है।

(3) 'पाँख' (तृतीय पंक्ति) में श्लेष अलंकार है- सहारा; पंख

(4) 'प्यास-भरी' बरसै' में विरोधाभास अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द के जीवन के लगभग सभी तथ्य विवादग्रस्त हैं ( )

ख) हिन्दी साहित्य में घनानन्द नाम के कवि केवल एक है।( )

ग) घनानन्द कवि का सम्बन्ध वल्लभ सम्प्रदाय से था। ( )

घ) घनानन्द का अन्तिम समय वृन्दावन में व्यतीत हुआ। ( )

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) डॉ0 ग्रियर्सन के मत में .....ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानन्द हैं।

ख) लाला भगवानदीन ने घनानन्द के जन्म की तिथि.....मानी है।

ग) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानन्द की मृत्यु .....के मथुरा आक्रमण के समय हुई।

घ) घनानन्द की कई कृतियों में उनके.....नाम उल्लेख मिलता है।

2. घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) रामचन्द्र शुक्ल ने घनानन्द की बिखरी और विलुप्त सामग्री को समेटने का प्रयत्न किया। ( )

ख) घनानन्द के पहले काव्य संग्रह 'घनानंद कवित्त ' में 505 पद हैं ( )

ग) वियोग बेलि और इश्क लता घनानन्द की ही रचनाएँ हैं। ( )

घ) घनानन्द रत्नावली का प्रकाशन वाराणसी से हुआ। ( )

(2) निम्नलिखित पंक्तियों में अर्थालंकार पहचानिये ?

(क) ''एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन, बीरी
तो सो और कौन मनै ढरकौंहीं बानि है।''

(ख) ''तब हार पहार से लागत हैं; अब आनि के बीच पहार परे''

(3) निम्नांकित पंक्तियों के अर्थ बताइये।

(क) ''रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै''।

(ख) अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं ।

12.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

घनानन्द मूलतः अति संवेदनशील प्रेम के कवि हैं अतः उनके काव्य का आधार और भावपक्ष प्रेम ही है। किंतु यह प्रेम रीतिकाल के रीतिसिद्व और रीतिबद्ध परम्परा वाला चमत्कारिक और कृत्रिम प्रेम नहीं है। सबसे पहले हम घनानन्द काव्य का भावपक्ष अथवा उनकी काव्यनुभूति का विश्लेषण करेंगे।

12.5.1 घनानन्द की काव्यनुभूति अथवा भावपक्ष -

घनानन्द अति संवेदनशील प्रेम कवि है अतः उनके काव्य का आधार प्रेम ही है। घनानन्द का प्रेम स्वानुभूत, स्वाभाविक और रूढ़ियों से मुक्त स्वच्छन्द प्रेम है, जिसका आधार, जैसा कि आप जानते है कि कई विद्वानों ने उनकी प्रेमिका सुजान को माना है। स्वच्छन्द प्रेम होते हुए भी घनानन्द के प्रेम वर्णन में अश्लीलता नहीं है। उनका प्रेम विरह प्रधान है। विरह में ही घनानन्द प्रेम की गहन अनुभूतियों को अनुभव करते हैं। प्रेम के अतिरिक्त घनानन्द ने कुछ भक्तिपरक रचनाएँ भी की हैं - जिनकी चर्चा भी हम करेंगे।

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना - हिन्दी साहित्य काव्य परम्परा में शायद ही कोई घनानन्द सा प्रेमी कवि हुआ होगा। वैसे आप जायसी की नागमती, मीरा की विरहाकुलता और सूर की वियुक्ता गोपियाँ से भली भाँति परिचित हैं लेकिन घनानन्द का दर्द, वेदना की तीव्रता और तड़प, प्रेम जगत में उन्हें सर्वोच्च पद पर आसीन करती है। घनानंद का स्वच्छन्द प्रेम शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह करता दिखाई देता है। यह प्रेम लौकिक रीति से शुरू होकर राधा कृष्ण के भक्ति रस तक विस्तार पाता है। प्रेम में मिले विरह ने घनानंद को नया भाव लोक प्रदान किया। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता तथा माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग श्रृगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं0 320)। प्रेमी घनानंद सुजान (प्रेमिका) तथा सुजान (राधा कृष्ण) बराबर पुकारते रहे। अपनी प्रेमिका के नाम को उन्होंने कृष्ण में मिला दिया। भक्ति की तो भी सुजान के नाम से भले ही आलम्बन बदल गया हो। अब तक आप समझ चुके होंगें कि लौकिक अर्थ में सुजान प्रेमिका के लिए और भक्ति भाव में सुजान राधा कृष्ण के लिए प्रतीक रूप में आया है। कारण यह चातक भाव का प्रेम है।

आप इस बात से अवगत हैं कि घनानंद सुजान नाम की वेश्या के प्रेम में बँधे हुए थे उसके प्रेम ने ही उन्हें प्रेम की समस्त अवस्थाओं में से गुजरने का अससर प्रदान किया। प्रेयसी सुजान का नाम ही उनकी कविता में प्रेम रसायन का सार है। यह नाम उनके चेतन-अवचेतन मन में इस प्रकार बस गया कि किसी भी स्थिति में छूटने का नाम नहीं लेता। घनानंद में प्रेम का भावपक्ष पूरी तरह मौजूद है लेकिन विभाव पक्ष का चित्रण कम है। उनके प्रेम वर्णन में प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है हृदय के उल्लास और लीनता की ही है। प्रेम के विषय में घनानंद ने जो धारणा अभिव्यक्त की है उसके अनुसार प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी, चतुराई और लोभ की जगह नहीं होती।

'' अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं
तहे साँधे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जें निसाँक नहीं
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ आँक नहीं
तुम कौन धौ, पाटी पढे हो लला मन लेंहु पै देहु छटाँक नहीं

घनानन्द द्वारा चालाकी या सयानेपन की निंदा और सरलता एवं सहजता की प्रशंसा से यही सिद्ध होता है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सात्विकता में विश्वास करते हैं। घनानन्द के प्रेम निरूपण से सिद्ध होता है कि उनका प्रेम एकपक्षीय है, प्रतिदान की कामना उसमें नहीं है।

प्रेम का संयोग पक्ष - घनानन्द के काव्य में सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य है। जब तक सुजान का साथ उनके भाग्य था उन्होंने उसे आनन्दपूर्वक भोगा और सराहा परन्तु भाग्य ने अधिक समय तक उनका साथ नहीं दिया। सुजान उनसे वियुक्त हो गई परन्तु उसकी स्मृति की तीव्रता ने मानसिक रूप से उन्हें सुजान के समीप ही रखा। घनानन्द के काव्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या वियोग की तुलना में अत्यन्त अल्प है लेकिन इस अल्प सुख का उन्होंने अत्यन्त खुले रूप में चित्रण किया है घनानन्द ने संयोग के वर्णनों मे रीझ, उत्सुक्ता, लालच, रोम-रोम का आनन्द से भरना, तथा अंग-प्रत्यंग से प्रसन्नता फूटना, संयोग के समय शताधिक भावनाओं का तीव्र गति से आना प्रेमी का अपने शरीर पर से शासन उठ जाना आदि बातों का कितना सजीव चित्रण किया है -

''ललित उमंग बेलि आल बाल अन्तर ते।
आनन्द के धन सींची रोम-रोम है चढ़ी।
आगम- उमाह चाह छायौ सु उछाह रंग।
अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नोकें इन है पढ़ी।''

प्रेम का वियोग पक्ष - घनानन्द के विरह वर्णन के संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं - ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद प्रसिद्ध है। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तवृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बिहारी माप से मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर है - बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना है, न उछल-उछल कर भागना है'' घानानन्द के विरह वर्णन के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार दिये हैं, परन्तु एक बात सभी में समान रूप से मिलती है और वह है घनानन्द में 'प्रेम की पीर'। सभी ने इनकी 'पीर' को विलक्षण माना है और उससे अधिक पीर की अभिव्यक्ति।

घनआनन्द के विरह-वर्णन के संबध में जितना कहा जाय वह कम है, क्योंकि इस 'प्रेम की पीर' के कवि ने अगर कुछ लिखा है तो वह 'विरह' है। यह विरह इतना गम्भीर है, अथाह है कि उसकी थाह पाने के लिए -

''समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन नेही की पीर तकी''

की आवश्यकता है। और इसे तो कोई रसिक ही समझ सकता है जिसने प्रेम की पीड़ा को हृदय की आँखों से साकार देखा है।

रूप सौन्दर्य का वर्णन - रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि है। अपनी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य पर वे इतने आसक्त थे कि उसे देखते हुए वे कभी तृप्त नहीं होते थे। घनानन्द ने सुजान के रूप का वर्णन परम्परागत चमत्कारिक ढंग से या रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह लक्षण ग्रन्थों के आधार पर नहीं किया है, बल्कि 'सुजान' कवि को जिस जिस रूप में आकर्षित करती रही उन्हीं रूप छवियों के वर्णन की ओर घनानन्द प्रवृत्त हुए। घनानन्द के रूप सौन्दर्य वर्णन में मांसलता है, सूक्ष्मता है, नयी भावनाओं एवं कल्पनाओं का योग है। बाहय रूप सौन्दर्य के साथ-साथ घनानन्द ने सुजान के भीतरी मानसिक सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। निम्नलिखित पद में उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन अनुभूति की सजगता के साथ, अत्यन्त सादगी से किया है -

''सोभा बरसीली सुभ सों लसीली
सु रसीली हंसि हेरैं बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि में
देखी पैज-पूरी, प्रीति-नीति को थपति है।
जाके गुन बंधे मन छूटे और ठौरनि तें
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप उपार घनाआनंद उकति ओछी
जतन जुगति जोन्ह कौन बपै नपति है''

इस छंद से आपको यह बात स्पष्ट हो चुकी होगी कि घनानन्द ने स्वानुभूत रूप सौन्दर्य का ही वर्णन किया हैं न कि रीति कवियों की तरह चमत्कारिक रूप का।

घनानन्द की भक्ति भावना - आप इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि घनानन्द पूर्ण रूप से प्रेम के ही कवि हैं, किन्तु जीवन के उत्तरार्ध में वे राधाकृष्ण के प्रति भक्ति भाव रखकर भक्तिपरक रचनाएँ करने लगे। सुजान द्वारा ठुकराये जाने पर उन्होंने लौकिक जीवन से मानसिक रूप से अपना नाता तोड़कर श्रीकृष्ण से नाता जोड़ लिया। एक पद में भौतिक स्नेह, ऐश्वर्य और धन की घोर निंदा करते हुए अपनी वैराग्य भावना का परिचय देते हुए वह कहते हैं।

''देह सौ स्नेह सो तौ हवै खेह-खिन ही मैं,
नाते सब होते परि रहै गौ नहीं रे नाम।''

राधाकृष्ण के प्रति अपनी असीम भक्ति, गहन आस्था श्रद्धा व अटूट विश्वास प्रकट करते हुए वे लिखते हैं-

''राधा रमन की बलि जाऊँ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रहि दुरम बेलि।
महा अनुपम रुप में शोभा लहलहानि रस झेलि।
आपु बन धन आपु तन मन है रहत निसि भोर''

घनानन्द ने सूफी भाव की इस मान्यता को तो अस्वीकार किया है कि आत्मा पुरूष और परमात्मा स्त्री है। किन्तु आत्मा की तड़त, बेचैनी, व्यग्रता, अंतस की टीस आदि सूफी काव्यधारा की विरहगत स्थितियों को उन्होंने स्वीकार किया है। 'वियोगबेलि' और 'इश्क लता' में यह फारसी प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है। घनानन्द ने जो स्वच्छन्दता प्रेम के क्षेत्र में दिखाई वही स्वछन्दता भक्ति के क्षेत्र में भी दिखाई अतः उनके प्रेम और भक्ति को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

12.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार -

अभिव्यंजना, पक्ष में हम घनानन्द की काव्यभाषा पर विचार करेंगे। आप देखेंगे की घनानन्द की काव्यभाषा में मधुरता, ध्वन्यार्थकता वक्रता और व्यंजकता आदि गुण विद्यमान हैं। घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए किया है न कि उसमें चमत्कार लाने के लिए। जहाँ तक छंद का प्रश्न है - घनानन्द ने कवित्त और सवैया इन दो छंदो का ही प्रयोग अपने काव्य में किया है।

काव्य भाषा - काव्य शिल्प की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का आकलन किया जाय तेा सर्वप्रथम दृष्टि भाषा पर जाती है। रीतियुग ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा इस समय ब्रजभाषा की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक हो

गई थी। घनानन्द को विरासत में विकसित भाषा मिली। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा की आलोचना करते हुए द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते हैं - ''घनानन्द ने बड़ी स्वच्छता और सुन्दरता के साथ ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, उसके एक एक शब्द की स्थापना की है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए गति प्रदान की है। ब्रजभाषा पर ऐसा अधिकार अन्य किसी हिन्दी कवि का नहीं दिखाई देता''

घनानन्द की भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों से युक्त है। औटपाय (उपद्रव) आवस (भाप) औंड (गहरी) सल (पता) सहारि (सहारे से) तेह (क्रोध) दुहेली (दुःखपूर्ण) आवरो (व्याकुल) न्यार (चारा) सौंज (सामग्री) भाभक (ज्वाला) हेली (खेल करने वाले) भोयौ (भीगा हुआ) गुरझिन (गाँठ) इत्यादि ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों से उनकी काव्यभाषा अत्यन्त समृद्ध हो उठी है।

ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ ही घनानन्द ने नये और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे - गादरौं (शिथिल) अंगेट, सौनि (कुंदन का लाल वर्ण) विरचैं (विमुख होना) हटतार (एकटक देखना) चाड़ (उत्कण्ठा) उखलि (अपरिचित) मरक (सिंचाव) तपै (तपना) सवादिली (स्वादिष्ट) निरौठी (मस्त) आदि।

भाषा प्रवीण घनानन्द ने तत्सम शब्दों का भी खूब प्रयोग किया हैं - मीन, पंकज, खंजन, प्राण, विष, कुंज, कुरंग, मलय, अर्क। संस्कृत शब्दों की संख्या तद्भव शब्दों से अपेक्षाकृत कम है। घनानन्द ने अपने काव्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का किया हैं। कुछ शब्द इस प्रकार हैं - जतन, निति, कटाच्छ, ईछन-तीछन, निसान, मूरत, मसाल, दसनि, पाती, बिसासी इत्यादि। अरबी फारसी के शब्दों को देखा जाय तो उनकी संख्या भी कम नहीं है जैसे - यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूँ, आशिक, इश्क, बेदरद, कहर, इश्कमजाजी, नशा, तकसीर, तकदीर, तदबीर, आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय है।

तत्सम, तद्भव, ब्रजभाषा के ठेठ रूप और अप्रचलित शब्दों तथा अरबी-फारसी भाषा के चुने हुए शब्दों से जहाँ घनानन्द ने अपनी भाषा को समृद्ध किया, वहीं उनकी काव्यभाषा पंजाबी शब्द-समूह को भी अपने में समाहित किये है। जैसे - लैंदा, सोहणाँ, गल्ला, जिंन्द, नाल, कीता, जाणदा, हुण, तैनु-वेखाँ, कित्थे, लग्या आदि।

छंद एवं अलंकार - रीतिकाल छंदबद्ध कविता का काल था। घनानन्द कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार एवं गायक भी थें। अतः उनकी रचनाएँ छंद विधान में पूरी तरह आबद्ध हैं। घनानन्द ने श्रृंगार और प्रेम के काव्य को ध्यान में रखकर ही कवित्त और सवैया छंदों का प्रयोग किया है। डॉ0 मनोहर लाल गौड के शब्दों में '' आनन्दघन के सवैये अधिक संख्या में ऐसे ही हैं जो अत्यन्त कोमल शब्दावली में लिखे गये हैं और जिनमें संगीत की मधुर गूंज उत्पन्न होती है'' इन दो छन्दों के अतिरिक्त घनानन्द ने जिन अन्य छन्दों का प्रयोग किया है वे हैं - सुमेरू, त्रिलोकी, ताटंक, निसानी, शोभन, त्रिभंगी, प्रबन्ध काव्य में दोहे-चौपाई का भी प्रयोग किया है।

अलंकार की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का विवेचन विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है परन्तु अलंकार उनके काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर भी चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकारों की योजना नहीं की गई है/घनानन्द के काव्य में जो अलंकार आये हैं - वे उनके काव्य को अधिक स्पष्टता और गहराई के साथ प्रस्तुत करने में ही सहायक हैं। इस बारे में स्वयं घनानन्द का कथन है - ''लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत'' अर्थात जहाँ बाकी कवि (रीतिमार्गी) जी तोड़ कोशिश करके काव्य शास्त्र के नियमों का सहारा लेकर अलंकारों से सुसज्जित कर काव्य बनाने में लगे रहते हैं - वहाँ मैं तो कुछ भी नहीं करता-मेरे कवित्त मुझे बनाने हैं। अर्थात जो मैं जैसा अनुभव करता हूँ उसे वैसे ही अभिव्यक्त कर देता हूँ वास्तव में घनानन्द ने सायास कभी नहीं कहा, जो कुछ भी कहा वह उनके हृदय

की सहज अभिव्यक्ति बन कर प्रकट हुआ। घनानन्द के काव्य में हमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो मिल जाते हैं फिर भी उन्होंने विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है।

घनानन्द की शैली में जो अलंकारण है वह उनके व्यक्तित्व से ही प्रसूत है। अलंकारों के नितान्त वैयक्तिक प्रयोग, सूझ की मार्मिकता के साथ-साथ नवीनता और अनोखापन उन्हें ब्रज- भाषा के अद्वितीय कवि की श्रेणी में बिठा देते हैं। उनके काव्य में जहाँ हमें असाधारण भावुकता के दर्शन होते हैं वहीं उनके काव्य के कला-पक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं।

अभ्यास प्रश्न -3

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) घनानन्द के काव्य में संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या अधिक है। ( )

ख) घनानन्द के काव्य में वियोग सम्बन्धी कवित्त अत्यल्प है। ( )

ग) घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि हैं। ( )

घ) घनानन्द की भक्ति भावना पर सूफी भक्ति भावना का थोड़ा प्रभाव पड़ा है।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) घनानन्द का रूप-सौन्दर्य वर्णन..... है।

1. स्वानुभूत है।
2. चमत्कारिक है।
3. माँसल है।

(ख) घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग..... किया है।

1. चमत्कार लाने के लिए
2. भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए
3. कविता को सजाने के लिए

(ग) घनानन्द ने अपने काव्य में मुख्य रूप से.....छंदों का प्रयोग किया है।

1. घनाक्षरी और हरि गीतिका
2. सोरठा और रोला
3. कवित्त और सवैया

(घ) घनानन्द की काव्य भाषा में प्रयुक्त लैंदा, सोहणां, गल्ला, जाणदा, जैसे शब्द .....शब्द समूह हैं।

1. तत्सम
2. पंजाबी
3. तद्भव

3. घनानन्द की भक्ति भावना पर अपने विचार दीजिए ? (उत्तर पाँच पंक्तियों में)

12.6 सारांश

इस इकाई में आपने रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानन्द का अध्ययन किया। घनानन्द ने स्वानुभूत प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति द्वारा रीतिकाल की रीति परम्परा का विरोध कर कविता को बँधे -बँधाये धारो से मुक्त किया घनानन्द का श्रृंगार वर्णन रीतिकालीन अन्य कवियों की तुलना में बिल्कुल भिन्नता लिए है, वह नायिका भेद, नखशिख वर्णन इत्यादि से मुक्त होकर स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण करता है। क्योंकि उनके प्रेम निरूपण की मुख्य प्रेरणा उनकी प्रेमिका सुजान थी। सुजान के रूप चित्रण में कवि का मन रमा है। किन्तु घनानन्द के श्रृंगार वर्णन में सुजान का रूप चित्रण इतना मुख्य नहीं है जितना सुजान के वियोग का वर्णन। सुजान के साथ अधिक समय रहने का मौका घनानन्द को नहीं मिला। सुजान से अलग रहते हुए विरह की जितनी भी मार्मिक अनुभूतियों से घनानन्द को गुजरना पड़ा, उन सबका उन्होंने स्वानुभूत वर्णन किया। वस्तुतः वह प्रेम के ही कवि हैं।

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो घनानन्द को विकसित ब्रजभाषा की परम्परा मिली और उन्होंने परम्परा से प्राप्त ब्रज भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्दों को समाहित कर ब्रजभाषा के शब्द भंडार को और अधिक समृद्ध किया। घनानन्द ने मुख्य रूप कवित्त और सवैया छंदो का प्रयोग किया। अलंकारों का प्रयोग उन्होंने चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु भावों में गहराई लाने के लिए किया।

12.7 शब्दावली

आनन	-	मुख
छके	-	तृप्त
लोल	-	चंचल
जलजावली	-	दो लट की मोतियों की माला
कलोल	-	क्रीड़ा
चखनि	-	नेत्र
लड़काय	-	ललक के साथ
कानन	-	जंगल
बाबरी	-	पागल
ताकिबौ	-	देखना
सौं	-	पुतलियों से
इकतार	-	एकटक
सोहन	-	सामने
जोहन	-	देखना
सकेलि	-	एकत्र करना
आन	-	अन्य, अशुभ
बिरंचि	-	विधाता
निस द्यौंस	-	रात दिन
अरी	-	अड़ना

मोरनि	-	मुड़ना
ढोरनि	-	ढलने की भाँति
बाहनि	-	बहते हुए
अवगाहनि	-	धँसना
उसांस	-	उच्छ्वास
ध्यावस	-	धैर्य
सींचति ही	-	स्पर्श होते ही
हियरा	-	हृदय
सियराई	-	शीतलता
हिराई	-	खो जाती है
अनंग की आँचनि	-	काम की अग्नि
अगिलाई	-	आग

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (√)
(ख) (×)
(ग) (×)
(घ) (√)

2) (क) (आनन्द)
(ख) (1715)
(ग) (अहमद शाह अब्दाली)
(घ) (बहुगुनी)

3) घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखीनाम' लेना पड़ता था अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी'।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (×)
(ख) (√)
(ग) (√)
(घ) (×)

2) (क) (मानवीकरण अलंकार)
(ख) (उपमा अलंकार)

3) क- हे प्रियतम ! आपके सौन्दर्य की रीति अपूर्व है अर्थात आपके सौन्दर्य में विलक्षणता विद्यमान है इसे जितना ही देखो उतना ही यह नया प्रतीत होता है।

ख- हे कृष्ण ! प्रेम का मार्ग तो अत्यन्त सीधा और सरल है। इस प्रेम मार्ग में तनिक भी चालाकी और कुटिलता नहीं होती।

अभ्यास प्रश्न - 3

1) (क) (×)

(ख) (×)

(ग) (√)

(घ) (√)

2) (क) (स्वानुभूत है)

(ख) (भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए)

(ग) (कवित्त और सवैया)

(घ) (पंजाबी शब्द समूह)

3) घनानन्द जीवन के उत्तरार्ध में राधा-कृष्ण के प्रति भक्तिभाव रखकर भक्ति परक रचनाएँ करने लगे थे। सूफी भक्ति भावना का भी उन पर कुछ प्रभाव पड़ा था लेकिन सूफियों की इस मान्यता को कि-आत्मा पुरूष है और परमात्मा स्त्री-उन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु सूफी काव्य धारा की विरहगत स्थितियों आत्मा की तड़प, बेचैनी, व्यग्रता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया।

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, राम देव, घनानन्द का काव्य द मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, बम्बई, कल्कत्ता, मद्रास।
2. बहुगुणा, शम्भु प्रसाद, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग।
3. वर्मा, कृष्ण चन्द्र, घनानन्द रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, आगरा, 1966
4. भाटी, देशराज सिंह, घनानन्द की वाग्विभूति भारतीभवन, आगरा।

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रामा प्रकाशन।
2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव, हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध स्मृति प्रकाशन।
3. नगेन्द्र डॉ, रीतिकाव्य की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घनानन्द का जीवन परिचय दीजिए ?
2. घनानन्द द्वारा वर्णित प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए ?
3. घनानन्द के शिल्प पर प्रकाश डालिए ?
4. घनानन्द की विरह भावना पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 13 मतिराम - परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम
15.3.1 कवि मतिराम-परिचय
15.3.2 मतिराम की रचनाएँ
13.4 मतिराम की कविता - संदर्भ सहित व्याख्या
13.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
13 .5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भाव पक्ष
13 .5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
13 .6 सारांश
13.7 शब्दावली
13 .8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13 .1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के काव्य का अध्ययन करेंगें। अब तक आप रीतिकाल की तीनों प्रवृत्तियों (रीतिबद्ध,रीतिसिद्ध,रीतिमुक्त) से अवगत हो चुके हैं। जिन कवियों ने रस अलंकार आदि काव्यांगो के लक्षण के अनुसार श्रृंगार काव्य की रचना की उन्हें रीति बद्ध कहा गया,जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परंतु काव्य रचना करते हुए उनकी दृष्टि इन ग्रन्थों की रीति का अनुपालन करती रही उन्हें रीति सिद्ध कहा गया और जिन्होंने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और न ही जो रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित हुए बल्कि जिन्होंने स्वतन्त्र रूप में काव्य रचना की उन्हें रीति मुक्त कवि कहा गया। इस परिचय के बाद अब आप रीतिबद्ध कविता के एक प्रतिनिधि कवि मतिराम का परिचय इस इकाई में प्राप्त करेंगें। इसके बाद आपको उनकी रचनाओं से अवगत कराया जाएगा। तत्पश्चात् आप मतिराम के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन परिचय के साथ साथ उनके काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करते हुए उनकी कविताओं की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप

- रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन से परिचित हो सकेंगे।

- मतिराम की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- मतिराम की कविताओं को समझ सकेंगे।
- मतिराम के काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कविता में मतिराम के महत्व को समझ सकेंगे।

13.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम

इस तथ्य से आप अवगत होंगे कि रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वे ग्रंथ रचना किया करते थे, इसीलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया। डॉ0 नगेन्द्र ने रीतिबद्ध के स्थान पर इनका नाम रीतिकार अथवा 'आचार्य कवि' रखा है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।
रीतिबद्ध कवियों के भी दो वर्ग हैं-1.सर्वांग निरूपक और 2. विशिष्टांग निरूपक।

जो कवि समस्त काव्यांगो- रस,अलंकार,छन्द, शब्दशक्ति आदि का विवेचन करते हैं उन्हें सर्वांग निरूपक कवि माना गया है तथा जो कवि सभी काव्यांगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार,छन्द आदि में से एक,दो या तीन अंगों को ही अपने विवेचन का विषय बनाते हैं उन्हें विशिष्टांग निरूपक कवि माना जाता है। हमारे आलोच्य कवि मतिराम का स्थान इसी वर्ग में ठहरता है। श्रृंगार रस को रसशिरोमणि मानकर केवल उसी का सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सबसे पहले लिया जाता है।

13.3.1 कवि मतिराम-परिचय-

मतिराम के जीवनवृत्त की सूचना प्रायः हिन्दी साहित्य के समस्त इतिहास ग्रन्थों में मिलती है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों- शिवसिंह सेंगर, गार्सा-द-तासी, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो तथ्य मतिराम के जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं के संबंध में दिये हैं, वह प्रसिद्ध ग्रन्थों पर आधारित है। मतिराम की जीवनी और साहित्य को लेकर दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे गये हैं वे हैं महेन्द्र कुमार का "मतिराम- कवि और आचार्य" और त्रिभुवन सिंह का "महाकवि मतिराम"। इन दोनों ग्रन्थों में लगभग सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु अनेक प्रमाण होते हुए भी इन दोनों विद्वानों ने मतिराम के नाम पर मिलने वाले समस्त ग्रन्थों के रचियता एक ही और प्रसिद्ध कवि मतिराम को माना है। लेकिन भगीरथ मिश्र, मतिराम के नाम के दो कवियों को स्वीकार करते हैं और मतिराम के नाम से मिलने वाली रचनाओं में से रसराज, ललितललाम, फूलमंजरी और मतिराम सतसई को प्रसिद्ध कवि मतिराम की रचनाऐं एवं शेष चार अर्थात छंदसार पिंगल या वृत्तकौमुदी, अलंकार पंचाशिका, साहित्यसार, लक्षण श्रृंगार को दूसरे मतिराम की रचनाएँ मानते हैं। इस संबंध में तर्क देते हुए वे कहते हैं कि-

1. मतिराम का जन्म-समय १६0३ ई. (स0 १६६0) के लगभग आता है और वृत्तकौमुदी की रचना उन्होंने १७0१ ई. (स0१७५८) में की और कुछ लोगों का विचार है कि 'साहित्यसार' आदि की रचना और भी बाद में हुई। एक ही व्यक्ति के सभी ग्रन्थ मानने पर वृत्तकौमुदी की रचना 98 वर्श की आयु में और अन्य ग्रन्थों की रचना उसके भी बाद ठहरती है। इस अवस्था में मतिराम का श्रीनगर (गढवाल) के राजा स्वरूप साहि बुन्देला के आश्रय में जाना और छन्दसार- संग्रह या वृत्तकौमुदी की रचना करना अधिक संगत नहीं जान पड़ता।

2. दोनों मतिरामों के समयों में ही थोड़ी भिन्नता नहीं, वरन् दोनों का कार्यक्षेत्र भी भिन्न रहा है। एक मतिराम का आगरा, बूँदी आदि था तथा दूसरे मतिराम का पहाड़ी क्षेत्र कुमाऊँ गढ़वाल आदि था।

3. दोनों की भाषा-शैली में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। जहाँ रसराज और ललित ललाम के रचयिता मतिराम की भाषा समर्थ, विदग्ध, अलंकार एवं भाव व्यंजना अद्भुत क्षमता सम्पन्न तथा छन्द प्रवाह पूर्ण सुन्दर, मोहक गतिवाले हैं वहाँ वृत्तकौमुदीकार की भाषा सामान्य, छन्द शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है।

4. दोनों मतिरामों के वंश परिचय भिन्न-भिन्न हैं और दोनों का संबंध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।

5.यदि अलंकार पंचाशिका और वृत्तकौमुदी या छंदसार संग्रह ग्रन्थ बाद में प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्व अवस्था में लिखे गये होते तो वे निश्चय ही वैचारिक और भाषा संबंधी अधिक प्रौढता का द्योतन करते परन्तु ऐसा नहीं है।

13.3.2 गोत्र: पितृनाम एवं बंधु

अधिकांश विद्वान (शिव सिंह, विश्वनाथ प्रसाद, भगीरथ मिश्र) महाकवि मतिराम को तिकवॉपुर निवासी, रत्नाकर अथवा रतिनाथ पुत्र, कश्यपगोत्रीय और चिंतामणि एवं भूषण का सहोदर मानने के पक्ष में हैं। लेकिन भगीरथ प्रसाद दीक्षित, डॉ0 महेन्द्र कुमार के अनुसार मतिराम वत्सगोत्रीय, बनपुर में जन्म लेने वाले विश्वनाथ पुत्र हैं और 'चिन्तामणि' और 'भूषण' कोई भी उनका सहोदर नहीं था।

मतिराम ने किसी भी ग्रन्थ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म समय के संबंध में कुछ कहना कठिन है 'फूलमंजरी' के आधार पर इनका जन्म समय कृष्णबिहारी मिश्र ने १६0२ ई. (सं0१६६0 वि0) के लगभग माना है। "फूलमंजरी" इनकी पहली रचना है जो जहाँ गीर की आज्ञा से लिखी गई। जहाँ गीर अपने राज्यारोहण का १६ वाँ जलूसी वर्ष आगरा में मना रहा था, उसी समय के आस-पास इसकी रचना हो सकती है। वह समय १0३0 हिजरी या सं0 १६७८ था। मतिराम की यह किशोरावस्था की रचना मानने से उनकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की रही होगी। अतः मतिराम का जन्म १६0२ ई.(१६६0 वि0) ठहरता है।

13.3.3 मतिराम की रचनाएँ

मतिराम का अधिकांश समय बूँदी दरबार में व्यतीत हुआ था और वहाँ के हाड़ा राजाओं की वीरता और चरित्र का वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ 'ललित ललाम' में किया है। महाकवि मतिराम के जिन ग्रन्थों का पता अब तक लगा है, उनका परिचय इस प्रकार है-

1) फूलमंजरी- इस ग्रंथ में ६0 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर 59 दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है। इनमें कवि की प्रतिभा का विशेष चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी वर्णनश शैली और शब्दमाधुर्य आदि सभी गुणों की दृष्टि से इसके दोहे मतिराम की अन्य रचनाओं के समान ही हैं। उक्तिचमत्कार में जो कमी दिखलाई देती है वह इस अनुमान को पुष्ट करती है कि यह पुस्तक कवि की प्रथम रचना है।

2) रसराज - इस ग्रंथ में श्रृगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं लिखा गया है। कवि मतिराम का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ हैं, क्योंकि इस पर कई उत्कृष्ट कवियों ने टीकाएं लिखी हैं। चरखारी के राजा रतनसिंह के आश्रित बख्तेश कवि ने रसराज पर एक उत्कृष्ट टीका लिखी है। इस ग्रंथ का रचनाकाल सं0 1690 और 1700 के बीच में माना जाता है।

3) छंदसार पिगंल- कहा जाता है कि श्रीनगर के फतेहसिंह बुँदेला के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई थी। इसका निर्माण काल अनिश्चित है, पर अनुमान किया जाता है कि यह संभवतः सं0 1700 और 1790 के बीच में लिखा गया।

4) ललित ललाम - यह अलंकारशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। बूँदी के महाराजा भावसिंह जी के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई है। इसका रचना काल अनुमानतः 1718 और 1719 संवत् के बीच का हो सकता है।

5) मतिराम सतसई - यह पुस्तक किन्हीं भोगराज नाम के राजा के लिए मतिराम जी ने लिखी थी। इस ग्रंथ का भी समय अनिश्चित् है। मतिराम ग्रंथावली (सं0 कृष्ण बिहारी मिश्र) के अनुसार इसकी रचना ''रसराज'' और ''ललित ललाम'' के बाद की है। संभवतः यह ग्रंथ संवत् 1725 और 1735 के बीच का रहा होगा।

6) सहित्य सार - यह 90 पृष्ठों का छोटा सा ग्रन्थ है। इसमें नायिका भेद का वर्णन है। यह प्रति संन् 1837 की लिखी हुई है।

7) लक्षण श्रृंगार - यह 14 पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें भावों और विभागों का वर्णन है। इसकी रचना भी संभवतः 1745 के लगभग हुई होगी।

8) अलंकार पंचाशिका - यह ग्रन्थ संवत् 1745 में कुमाऊँ के राजा उदोतचंद के लिए कवि मतिराम ने लिखा था।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?
   (क) मतिराम सर्वांग निरूपक कवि थे।
   (ख) मतिराम विशिष्टांग निरूपक कवि थे।
   (ग) मतिराम रीतिमुक्त कवि थे।
   (घ) मतिराम रीतिसिद्ध कवि थे।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-
(क) ..... के अनुसार मतिराम नाम के दो कवि हुए हैं।
(ख) .....मतिराम की पहली रचना है।
(ग) कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार मतिराम का जन्म.....के लगभग आता है।
(घ) ललित ललाम मतिराम का ..... संबंधी ग्रन्थ है।

3. मतिराम के ग्रंथ फूल मंजरी पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

13.4 मतिराम की कविता -

आपने मतिराम की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि मतिराम की कविता की व्याख्या किस प्रकार की जाती है। कुछ पदों की व्याख्या हम यहाँ कर रहे हैं। इसकी सहायता से आप मतिराम के अन्य पदों की भी व्याख्या कर सकेंगे।

(1)

पारावार पीतम को प्यारी है मिली है गंग
बरनत कोऊ कवि-कोविद निहारिकै।
सो तो मतो मतिराम के न मन मानै निज
मतिराम सौं कहत यह वचन विचारिकै।

जरत बरत बड़वानल सौं बारिनिधि
वीचिनि के सोर सो जनावत पुकारिकै।
ज्यावत विरंचि ताहि प्यावत पियूष निज
कलानिधि-मंडल-कमंडल तें ढारिकै।।

संदर्भः - प्रस्तुत पंक्तियाँ महाकवि मतिराम काव्य रचना ''ललित ललाम''से उद्धृत हैं।
प्रसंगः - सागर से गंगा के मिलन को एक अलग दृष्टि से देखते हुए कवि मतिराम कहते हैं -
व्याख्याः – प्राय: कवि कहते हैं कि वह देखो भगवती जाह्नवी प्रियतमा के रूप में अपने प्रियतम सागर से मिल रही है। मतिराम कवि को यह कथन ठीक नहीं लगता। उनका मत तो यह है कि बेचारा समुद्र बड़वानल की ज्वाल-मालाओं से झुलसा जा रहा है। ब्रह्मा से इस भयंकर आपदा से ऋण पाने के लिए पुकार-पुकार कर प्रार्थना कर रहा है। सागर तरंगों का करूणापूर्ण शब्द इसी प्रार्थना की सूचना देता है। ब्रह्मा को भी दया आ गई है। यह बड़ा-सा-चन्द्रमा उनका कमंडल है। इसमें लबालब पीयूष भरा हुआ है झुलसते हुए समुद्र को जिलाने के लिए उन्होंने इस कमंडल से सुधा ढरका दी है। यह गंगा नहीं है, वही ब्रह्मा के चंद्रकमंडल से गिरी सुधाधारा है, जिसे समुद्र पान कर रहा है।
विशेषः - इस पद में कवि ने अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास की छटा भी देखते बनती है जैसे –

(2)

पारावार पीतम, कोऊ कवि कोविद, वचन विचारिकै।
रावरे नेह को लाज तजौ अरू गेह के काज सबै बिसराए।
डारि दियो गुरू लोगन को डरू गाम चबाय में नाम धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो मतिराम सबै बहराए।
कोऊ कितेक उपाय करो कहूँ होत हैं आपने पीउ पराए।।

संदर्भः - प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिकालीन कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ रसराज से ली गई हैं। रसराज में श्रंगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है।
प्रसंगः - परकीया खंडिता नायिका नायक को मृदुल फटकार देते हुए कहती है।
व्याख्याः - आपके स्नेह के कारण मैने लज्जा का त्याग किया। घर के सब काम काज भूल बैठी। गुरूजनों का भय भुला दिया। गाँव में अपने विषय में बदनामी होने दी। मैंने यह सब आपके हित की बातें की भी तो क्या हुआ? आपने तो सभी भुला डाला। सच है, कोई लाख प्रयत्न कर ले पराया प्रियतम भी कभी अपना हुआ है।
विशेषः - ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने अर्थातरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। अंतिम पद में जो झिड़की है, वह बड़ी सुकुमार मृदुल एवं रसीली है। नायिका ने नायक के लिए जो बदनामी झेली उसका नायक पर कोई असर नहीं हुआ अतः अवज्ञा अलंकार भी पद में विद्यमान है।

(3)

दोऊ अनंद सौं आँगन माँझ बिराजै असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाऊँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसि कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंह चढ़ाई।

आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहासु गयो उड़ि हंस की नाई।

संदर्भः प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिबद्ध कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' से उद्धृत हैं।

प्रसंगः - पति के मुख से अन्य स्त्री का नाम सुनकर नायिका मान करती है। मानवती नायिका का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं।

व्याख्याः - असाढ की सुहानी संध्या में नायक और नायिका आनंद से आँगन में बैठे थे। बातों ही बातों में नायक के मुँह से अन्य स्त्री का नाम निकल गया नायिका कुपित हो गई। उसकी भौंहे इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई। आँसू पावस ऋतु की बूँदों के समान बरसने लगे हँसी हंसके समान उड़ गई।

विशेष - इस सवैया में कवि ने उपमा का सुंदर प्रयोग किया है। मानवती नायिका की भौहे पावन ऋतु में दिखाई पड़ने वाले इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई और आँसू बूँदों के समान गिरने लगे।

(4)

पावस भीति वियोगिनी बालनि यों समुझाय सखी सुख साजैं।
जोति जवाहिर की मतिराम नहीं सुरचाप छिनौं छवि छाजैं।
दंत लसै बकपाँति नहीं धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैं।
रीझिकै भाऊ नरिंद दिये कविराजनि के राजराज बिराजैं।।

संदर्भः- प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि मतिराम के ग्रंथ 'ललित ललाम' से उद्धृत है। ललित ललाम कवि का अलंकार शास्त्र संबंधी ग्रंथ है।

प्रसंगः- पावस-ऋतु के विभिन्न उपादानों पर बूँदी नरेश रावराजा भाऊसिंह के विशालकाय हाथियों का आरोप कर सखियाँ विरह विदग्ध नायिकाओं से कहती हैं -

व्याख्याः- पावस-ऋतु में विरह पीड़िता बालाओं को चतुराई से समझते हुए कहती हैं कि तुम सामने जिनको मेघ समझ कर विकल हो रही हो, वे वास्तव में मेघ नहीं बल्कि रावराजा भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों का समूह है। वियोगिनियों के पूछने पर कि-फिर यह इन्द्रधनुष कैसा ? बकपंक्ति कैसी ? और वर्षाकाल में होने वाला गंभीर गर्जन कैसा ! सखियाँ इन शंकाओं का भी समाधान करते हुए कहती हैं कि जिन बहुमूल्य जवाहरात से गजों के शरीर सजाए गए हैं, उन्हीं की विविध रंगों की ज्योति से इन्द्रधनुष का भ्रम हो रहा है उसी प्रकार हाथियों की दाँतों की पंक्तियाँ बक पंक्ति का भ्रम उत्पन्न कर रही है और दुंदुभी का शब्द ही घोर घनगर्जन के समान सुनाई पड़ता है।

विशेषः- प्रस्तुत सवैये में वास्तविक पावस-ऋतु को छिपाकर हाथियों का वर्णन होने से अपह्नुति अलंकार है। प्रस्तुत छंद बूँदी नरेश की दान वीरता को भी स्पष्ट करता है।

(5)

सुनि-सुनि गुन सब गोपिकनि समुभयो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी मुरली है करि नाद।।

संदर्भः- प्रस्तुत छंद मतिराम सतसई से उद्धृत है। मतिराम सतसई के दोहों में एक से बढ़कर एक भाव विद्यमान है।

प्रसंगः- श्रीकृष्ण की मुरली से निकलने वाली रागिनियों की सरलता से आह्मदित होकर गोपियाँ आनंदित हो रही हैं -

व्याख्याः- श्रीकृष्ण की मुरली बज रही है। उसका मधुर स्वर गोपियों के कानों में गूँज रहा है। इस सरस नाद का स्वर उन्हें आनन्दमय अनुभव दे रहा है। उनका तो कहना है कि श्यामसुंदर के अधरों की माधुरी ही इस नाद रूप में निकलकर चारों ओर व्याप्त हो रही है।

विशेषः - कवित्त और सवैया जैसे लंबे छंदों की भाँति मतिराम जी ने दोहे जैसे छोटे छंद में भी भावों को पूर्णता प्रदान की है। प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास की सुंदर छटा होने के साथ ही मुरली के मधुर स्वर को आस्वाद्य बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(6)

करौ कोटि अपराध तुम वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष।

संदर्भः-प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि मतिराम की प्रसिद्ध रचना मतिराम सतसई से उद्धृत है।

प्रसंगः- नायिका के हृदय की उदारता का वर्णन करते हुए कोई सखी नायक से कहती है।

व्याख्याः- आप चाहे कितना ही अपराध कर लें, पर वह रूष्ट नहीं होगी, क्योंकि प्रिय के स्नेह रूपी सागर में सभी दोष डूब जाते हैं। वास्तविक स्नेह दोषों को नहीं देखता।

विशेषः- रूपक अलंकार के साथ साथ अनुप्रास भी उल्लेखनीय है।

(7)

ज्याल जाल बिज्जुलि छटा घटा धूम अनुहारि।
विरहिनि जारनि को मनो लाई मदन देंवारि।

संदर्भः- प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के सुकुमार कवि मतिराम की रचना 'मतिराम सतसई' से लिया गया है। सतसई में विरह का वर्णन बहुत उत्कृष्ट हुआ है। बिहारी तथा देव का विरह वर्णन तो अच्छा है ही, पर मतिराम जी ने भी विरह वर्णन में अपनी प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखाया है।

प्रसंगः- पावस-ऋतु में विरहिणी की दशा का वर्णन इस प्रकार है -

व्याख्याः- वर्षा क्या आई, मानो कामदेव ने विरहिणी को जलाने के लिए दावाग्नि जला दी। ये घटाएँ बिल्कुल धुएँ के अनुरूप हैं तथा बिजली की चमक दावानाल की ज्वालमालाओं की समता करती हैं।

विशेषः- ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग कर 'पावक के प्रथम पयोद' का बिम्ब प्रस्तुत कर नायिका के विरह का वर्णन किया है।

13.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

मतिराम उस युग के कवि हैं जिसे हम 'रीतिकाल' या 'श्रृंगारकाल' कहते हैं। युग के बंधनों में बंधे रहकर भी भावचित्र की सहज अभिव्यक्ति के कारण वे उत्कृष्ट और सच्चे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। भावुक और सहज कवि होते हुए भी अपनी रसमयी भावनाओं के अभिव्यंजनार्थ 'मतिराम' ने जो मार्ग ग्रहण किया उसमें श्रृंगारी भावना के प्रति विशेष मोह और आसक्ति थी। उनके कवि कर्म पर विचार करते हुए यदि हम उनके अलंकार और छंद की कृतियों केा छोड़ दे तो कह सकते हैं कि वे सामंतयुगीन श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे। संभवतः उनका प्रिय विषय

श्रृंगार था इसीलिए उन्होंने अपने श्रृंगारी काव्यसर्जन के लिए 'रसराज' का वह माध्यम अपनाया जो उस युग रूढ़ लक्षण ग्रन्थों के प्रकाश में अपना पथ बनाता रहा।

13.5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भावपक्ष

श्रृंगारिकता - 'रसराज' मतिराम का मुख्य श्रृंगारी ग्रंथ है। रीतिश्रृंखला के आरम्भिक ग्रंथों में यह बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। मुक्तक कविता में भावमयी कल्पना, सहज प्रतिभा और मनोहारी अभिव्यक्ति की शक्ति से समन्वित 'मतिराम' का रसराज युग की उत्तम रचना हैं। इसमें कवि ने नायिका भेद के अतिरिक्त भाव की परिभाषा दी है। 'भाव' के लक्षण में 'केशव' ने आखों, मुँह और वाणी से मन की बात प्रकट करना बताया पर मतिराम ने भाव प्रकट करने वाले उपकरणों में परिधि का विस्तार किया है। उन्होंने कहा है -

''लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास, भाव, धृति, मोद।
इनते प्रगटत जानिये वरनहि सुकवि विनोद''।।

नयिकाभेद संबंधी इनके उदाहरण अत्यंत सरस, रमणीय और हृदयस्पर्शी हैं। उदाहरणों की भावमय और चारूता में मतिराम का कवित्व निखर उठा है। लज्जावती मुग्धा नायिका का एक चित्र इस प्रकार है -

''अभिनव जौवन-ज्योति सौं जगमग होत विलास।
तिय के तनु पानिप बढै, पिय के नैननि प्यास।।

नायिका के अवयव वर्णन में मतिराम ने मुख, कपोल, वेनी, नेत्र, अधर, कपोल, कटि, हाथ पाँव आदि का वर्णन किया है। परन्तु उनकी सतसई में सर्वाधिक वर्णन नेत्रों का है -

''भौंह कमान कटाक्ष सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहँन के सजल सुभट से नैन।।''

× × ×

''मानत लाज लगाम न हिं नैक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँह जोर।।''

संयोग श्रृंगार के वर्णन में मतिराम ने ऐसे अनेक चित्रों को अंकित किया है, जो अपरिष्कृत और अश्लील कहे जा सकते हैं। वियोग श्रृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। विरह के पूर्वराग, मान और प्रवास के तीनों पक्षों के उन्होंने 'रसराज' के अतिरिक्त 'सतसई' में भी बहुत से चित्र खींचे हैं। परम्परागत होने पर भी मान के ये रूप चित्र (विशेषतः स्वकीयासंबद्ध) बड़े ही मधुर और सरल हैं -

''बाल सखिन की सीख तैं मान न जानति ठानि।
बिन पिय-आगम भौन में बैठी भौंहैं तानि।।''

संचारी भावों के अंकन में 'मतिराम' अत्यधिक समर्थ हैं। औत्सुक्य, अभिलाषा, स्वप्न, चिंता, और स्मृति तथा दूसरे पक्ष में उन्माद, व्याधि, जड़ता और उद्वेग आदि के सरस चित्रों के वर्णन में उनकी प्रतिभा अप्रतिम है। मुख्यतः 'रसराज' में इन्हें देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि आलंबन, उद्दीपन, सात्विक भाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के बहुत ही सजीव, अकृत्रिम और प्रभावशाली चित्र 'मतिराम' ने अपनी कविता में चित्रित किये हैं।

सामंती परिवेश में रहकर भी इनकी रचना में ग्राम्य जीवन के कुछ चित्र मिल जाते हैं। ऐसा लगता है कि गाँव के सरल जीवन, सहज आकषर्ण ने उनको प्रभावित किया है। बाग-बगीचों और खेत खलिहानों के बीच गाँव की किशोरी और उसके प्रेम को उपस्थित करने में 'मतिराम' के श्रृंगार का विशेष आग्रह दिखाई देता है। मतिराम के कुछ दोहों में विशेषतः - सतसई के छंदों में ऐसे अनेक अंश हैं, जिनमें गाँव के बीच प्रणय, की सहज अनुभूतियों के सुन्दर चित्र खींचे गये हैं -

खेत निहारो धान को यों बूझति मुसिक्याई।
यहौ हमारे पिय कहौ सघन ज्वारि दरसाई।।

समंती श्रृंगार के बीच रहते हुए और उसमें डूबे रहने पर भी 'मतिराम' की भावुक वृत्ति, गाँव की नायिकाओं के सच्चे भाव और भोले सौन्दर्य पर न्योछावर थी।

'मतिराम' की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा - ये तीन भेद स्वकीया के माने हैं। उनकी श्रृंगारी तृषा को जो संतोष स्वकीया और गृहवधुओं के विलास और कामकेलि के वर्णन में प्राप्त होता था, वह परकीया प्रसंग में नहीं।

वीरभाव - श्रृंगार के अतिरिक्त वीर भाव की अभिव्यक्ति मतिराम ने की है। 'ललित ललाम' में उन्होंने शैर्य और पराक्रम के भाव के चित्र खींचे हैं। आरम्भिक नृपवंश के वर्णन में उन्होंने युद्धोत्साह और दानोत्साह आदि के माध्यम से 'ललित ललाम' वीर रस की अच्छी अभिव्यक्ति की है। मतिराम वीर रस सम्पृक्त आलंबन के ओजमय चित्रण सहज उत्साह के साथ करते जान पड़ते हैं -

'मंदर-बिलंद मंद गति के चलैया, एक
पल में दलैया, पर-दल बलखनि के;
मदजल भरत मुकत जरकस झूल,
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के।
ऐसे गज बकसे दिवान दुहूँ दीननि कौं;
'मतिराम' गुन बरनैं उदार पानि के;

फौज के सिंगार हाथी और महिपालन के
मौज के सिंगार भावसिंह महादानि के।

प्रकृतिः - प्रकृतिवर्णन के प्रसंग में मतिराम की काव्यरूचि परंपराभुक्त रूढ़ि का ही अनुगमन करती है। वे वस्तुतः उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति के मादक और सौन्दर्य को देखते हैं। श्रृंगारी सुख दुख बोधों को बढ़ाने और तीव्र करने वाले उद्दीपन विभाव के रूप में उन्होंने अधिकांश रीतिकवियों के समान प्रकृति का उपयोग किया। संयोग वियोग परक श्रृंगार चित्रों के अंकन में पृष्ठभूमि सी धरती और प्रकृति-मतिराम के परम्पराग्रस्त वर्णनों में केवल चित्रपट तक ही रह गई है। मानव अंतः करण की रागवृत्तियों के उद्भावन और विभावन में प्रकृति का आधार आलंबन बनकर अंकित होने को गौरव न पा सका। वर्षा, वसंत, आदि जैसे मादक ऋतुवर्णन के अतिरिक्त ग्रीष्म, शरद और शिशिर आदि के भी चित्र 'मतिराम' की कविता में उपलब्ध होते हैं।

13.5.2 भाषा, अलंकार और छंद

किसी भी सहित्यकार की भावों की अभिव्यक्ति का साधन भाषा होती है भावों और विचारों की वाहक भाषा ही होती है। भाषा प्रयोग की दृष्टि से 'मतिराम' प्रायः अत्यन्त सफल हैं। उनकी भाषा प्रायः अपने अकृत्रिम पर साथ ही अलंकार मंडित रूप को लेकर चलती है। उनकी भाषा में शब्दों के अर्थ, कृत्रिम और स्वामाविक रूप से उक्ति को सहजता और माधुर्य देते चलते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में - ''मतिराम की भाषा में आनुप्रासिक शब्द चमत्कार और अर्थालंकारगत नीरस अर्थचमत्कृति के लिए अशक्त शब्दों की भरती प्रायः कहीं नहीं मिलती। उनके शब्द और भाव - अधिकतः भाव व्यंजन के उपकरण उत्पादन के रूप में प्रयुक्त हैं'' आडंबरहीनता और भाव के प्रवाह से युक्त उनकी भाषा बनावटीपन से प्रायः दूर रहती हुई, काव्यसौष्ठव की उत्कृष्ट कला का स्वरूप अंकित करती है।

फारसी काव्यपरंपरा के प्रभाव से उनकी रचना में इलाज, बिरची, खलक, दरिआव, गनीम, जहान, गुमान, मजलिस आदि अनेक अरबी तथा फारसी शब्द मिलते हैं। पर प्रचलित और सटीक होने से प्रयोग सामान्यतः भावबोध में सहायक हैं।

छंदयोजना की दृष्टि से मतिराम का विस्तार अत्यन्त सीमित है। छप्पय और सोरठा के सीमित प्रयोग को यदि छोड़ दिया जाय तो उनके प्रिय छंद तीन ही हैं - सवैया, कवित्त और दोहा। इनमें भी सवैया उनका सर्वाधिक प्रिय छंद है।

मतिराम ने प्रायः सभी अलंकारों को अपने काव्य में समाहित किया है लेकिन अलंकारों का प्रयोग बड़ा संयत बन पड़ा है।

कुछ उदाहरण देखिये -

एरे मतिमंद चंद धिक है अनंद तेरो
जो पै विरहिनि जरि जात तेरे ताप ते।
तूँ तो दोषाकर दूजे धरे है कलंक उर
तीसरे कपालि संग देखो सिरछाप ते।
कहैं 'मतिराम' हाल जाहिर जहान तेरो
बारूनी के बासी भासी रबि के प्रताप ते।
बाँध्यो गयो मथ्यो गयो पियो गयो खारो भयो
बापुरो समुद्र तो कुपूत ही के पाप ते।।

दीपक अलंकार -

सकल सहेलिन के पीछे पीछे डोलति है
मंद-मंद गौन आज आपु ही करति है।
सनमुख होत सुख होत मतिराम जब
पौन लागे घूँघट के पट उघरत है।
जमुना के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल पै सँकोचन ते चाह्यो ना परत है।

तन तो तिया को बर भाँवरे भरत मन

साँवरे बदन पर भाँवरे भरत है॥

निष्कर्षतः मतिराम रीतिकाल के ऐसे कवि हैं - जो भावुकता के विचार से युगप्रभावित होकर भी उत्कृष्ट कलाकार है। काव्य शिल्प और अभिव्यंजना के विचार से उनकी कविता में उत्कर्ष और लालित्य का स्थान अक्षुण्ण है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

(क) मतिराम मुख्यतः श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे।

(ख) मतिराम की कविता में ग्राम्यजीवन के चित्र नहीं हैं।

(ग) मतिराम ने स्वकीया की अपेक्षा परकीया नायिका का चित्रण अधिक उल्लास से किया है।

(घ) मतिराम की काव्य-भाषा में फारसी के शब्द विद्यमान हैं।

2. रिक्त स्थान में सही विकल्प लिखिए -

(क) .....मतिराम का प्रिय छंद है

(सोरठा,छप्पय,सवैया,हरिगीतिका)

(ख) मतिराम ने युद्धोत्साह और दानोत्साह के माध्यम से अपने ग्रन्थ .....में वीररस की अच्छी अभिव्यंजना की है। (साहित्य सार,छंदसार पिंगल,रसराज,ललित ललाम)

(ग) मतिराम ने प्रकृति का.....रूप में ही चित्रण किया है।

(उद्दीपन,आलम्बन, दूती के रूप में, रहस्यात्मक रूप में)

(घ) मतिराम का मुख्य श्रंगारी ग्रन्थ.....है।

(फूलमंजरी,मतिराम सतसई, रसराज,लक्षण श्रृंगार)

13.6 सारांश

मतिराम रीतिकाल की रीतिबद्ध परम्परा के सुकुमार कवि माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार कई ग्रंथ लिखे, फिर भी इनकी अलंकृति बड़ी सहज और मार्मिक है। सौन्दर्य और श्रृंगार भावना की इनकी अभिव्यक्तियाँ अनूठी हैं। सामंती परिवेश में रहते हुए भी ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र इनकी कविता में मिल जाते हैं। मतिराम ने प्रकति का चित्रण परम्परा रूप में किया है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण सहज प्रतिभा के धनी कविवर मतिराम रीतियुग के एक उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं।

13.7 शब्दावली

पारावार	-	समुद्र
बरनत	-	वर्णन
निहारिकै	-	देखकर
ज्यावत	-	जीवित करते हैं
कलानिधि	-	चन्द्रमा

रावरे	-	तुम्हारे
चवाय	-	चुगली करना
सुरचाप	-	इन्द्रधनुष
नरिंद	-	नरेश
बूड़ि	-	डूब जाता है
बिज्जुलि	-	बिजली
दँवारि	-	दावाग्नि

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (×)
(ख) (√)
(ग) (×)
(घ) (×)

2) (क) (भगीरथ मिश्र)
(ख) (फूलमंजरी)
(ग) (1602ई. संन् 1660 वि0)
(घ) (अलंकार शास्त्र संबंधी)

3. फूल मंजरी मतीराम की पहली रचना है। इस ग्रंथ में 60 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर शेष सभी दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है।फूलमंजरी में कवि प्रतिभा का विशेष चमत्कार नही दिखाई देता है। फिर भी वर्णन शैली और शब्द माधुर्य की दृष्टि से यह रचना अच्छी है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (√)
(ख) (×)
(ग) (×)
(घ) (√)

2) (क) (सवैया)
(ख) (ललित ललाम)
(ग) (उद्दीपन)
(घ) (रसराज)

3) मतिराम की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। मतिराम को स्वकीया नायिका विशेष रूप से आकर्षित करती है। स्वकीया के उन्होंने तीन भेद माने हैं - मुग्धा, मध्या, और प्रौढ़ा, परकीया नायिका का चित्रण भी उनके काव्य में मिलता है। लेकिन स्वकीया के चित्रण में उनको अपार संतोष मिलता है।

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, कृष्णबिहारी सं0, मतिराम ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. मिश्र, भगीरथ, रीतिकाव्य नवनीत ग्रन्थम, रामबाग कानपुर-12
3. गुप्त, राकेश, रीति-रसचतुर्वेदी डॉ0 ऋषिकुमार सं0 ग्रन्थायन।
4. गुप्त, जगदीश, रीति-काव्य संग्रह,ग्रन्थम प्रिंटिंग प्रेस, साकेत नगर, कानपुर - 14 (1983)

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रामा प्रकाशन,
2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव , हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध स्मृतिप्रकाशन
3. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मतिराम की श्रृंगार भावना पर एक निबन्ध लिखिए ?
2. मतिराम की काव्य भाषा पर प्रकाश डालिए ?
3. मतिराम के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ?
4. मतिराम के जीवन वृत्तांत पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 14 - देव और पद्माकर की कविता : परिचय, पाठ और आलोचना इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 देव और पद्माकर
14.3 देव की कविता : पाठ एवं व्याख्या
14.4 पद्माकर की कविता : पाठ एवं व्याख्या
14.5 देव का काव्य वैशिष्ट्य
14.6 पद्माकर का काव्य वैशिष्ट्य
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 उपयोगी पाठ्य पुस्तकें
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 उद्देश्य

पिछली इकाईयों में आपने रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवियों का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम रीतिकाल के कवि देव एवं पद्माकर की कविताओं का अध्ययन, पाठ और आलोचना से परिचित होंगे। इस अध्याय को पढ़कर आप

- देव एवं पद्माकर की कविताओं से परिचित हो सकेंगे।
- देव एवं पद्माकर की कविताओं की विशिष्टता एवं पाठ से परिचित हो सकेंगे।
- देव एवं पद्माकर की कविताओं के शिल्पगत और भाषागत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

पद्माकर एवं देव रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इनकी कविताओं में मौजूद शृंगार तत्व एवं आश्रयदाताओं के मनोरंजन की तुष्टि के लिए संयोग शृंगार के इन्हें एक धरातल पर लाता है। दोनों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के प्रसन्नता के लिए संगोग शृंगार का जैसा वर्णन किया है वह अन्यतम है। हालाँकि दोनों कवियों की अपनी काव्यगत विशेषता भी है और दोनों शृंगार वर्णन में एक दूसरे से अलग भी हैं किन्तु दोनों के वर्णनों में एक साम्य भी मौजूद है। शृंगार वर्णन के ये दोनों सिद्ध कवि हैं और कई बार शृंगार में ये ऐसे रमे हैं कि इस वर्णन में दोनों अश्लीलता के चरम तक भी पहुँच जाते हैं। रीतिकालीन युगीन प्रवृत्ति के अनुरूप ही इन्होने शृंगार का वर्णन किया है। दोनों कवियों के साम्यता का एक और पक्ष है- इन दोनों कवियों का वैष्णव मत से सम्बंधित होना। देव के यहाँ राधा-कृष्ण की छवि है और पद्माकर के यहाँ पुरुषोत्तम राम की तथापि पद्माकर ने राधा-कृष्ण की छवि को भी हृदय ग्राह्य कर रखा है।

मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय
राधामन मोहि-मोहि मोहन मई भई (देव)

और

मोहिनि को मन मोहन में बस्यो, मोहन को मन मोहिनी माहि (पद्माकर)

पद्माकर एवं देव दोनों कवियों की नायिका का मन मोहनमय एवं नायक का मन राधामय है। भावसाम्य एवं अभिव्यक्ति भी समान है पर दोनों की काव्यगत चेतना और चेष्टाओं में अंतर है। देव की चेतना तुलनात्मक तौर पर रीतिबद्ध नहीं थी। देव के यहाँ प्रेम की अनुभूति गहरी और उड़ान उन्मुक्त है। पद्माकर के यहाँ रीतिबद्ध चेतना उनके आचार्यत्व के कारण अनुशासनात्मक थी। पद्माकर की कविताओं में रीति के सिद्धांतों का उन्मीलन अधिक हुआ है। आचार्य शुक्ल ने देव के संदर्भ में लिखा है, "कवित्वशक्ति और मौलिकता देव में खूब थी पर उनके सम्यक स्फुरण में उनकी रूचिविशेष प्रायः बाधक हुई है। कभी-कभी वे बड़े पेचीले मजमून का हौसला बाँधते थे पर अनुप्रास के आडम्बर की रूचि बीच में ही उनका अंगभंग करके सारे पद्य को कीचड में फँसा छकड़ा बना देती थी। भाषा में कहीं-कहीं स्निग्ध प्रवाह न आने का एक कारण यह भी था। अधिकतर इनकी भाषा में प्रवाह पाया जाता है। कहीं-कहीं शब्दव्यय बहुत अधिक है और अर्थ अल्प। अक्षरमैत्री के ध्यान से इन्हें कहीं-कहीं अशक्त शब्द रखने पड़ते थे जो कभी-कभी अर्थ को आच्छन्न करते थे। तुकांत और अनुप्रास के लिए कहीं-कहीं शब्दों को ही तोड़ते मरोड़ते न थे, वक्त को भी अविन्यस्त कर देते थे। जहाँ अभिप्रेत भाव का निर्वाह पूरी तरह हो पाया है, या जहाँ उसमें कम बाधा पड़ी है, वहाँ की रचना बहुत ही सरस हुई है। इनका सा अर्थ सौष्ठव और नवोन्मेष बिरले ही कवियों में मिलता है। रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभासंपन्न कवि थे, इसमें संदेह नहीं। इस काल के बड़े कवियों में इनका विशेष गौरव का स्थान है। कहीं-कहीं इनकी कल्पना बहुत सूक्ष्म और दूरारूढ़ है।" पद्माकर के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, "मतिरामजी के 'रसराज' के समान पद्माकरजी का 'जगद्विनोद' भी काव्यरसिकों और अभ्यासियों दोनों का कंठहार रहा है। वास्तव में यह श्रृंगार रस का सारग्रन्थ सा प्रतीत होता है। इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हावभावपूर्ण मूर्तिविधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है।...भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर इस कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है। कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम मूर्ति खड़ी करती है, कहीं भाव या रस की धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासों की मीलित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीरदर्प से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशांत सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन को विश्रांति की छाया दिखाती है। सारांश यह कि इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता गोस्वामी तुलसीदासजी में दिखाई पड़ती है।"

14.2 देव और पद्माकर

देव और पद्माकर दोनों रीतिबद्ध कवियों के खाँचें में आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों की श्रृंखला में 57 कवियों की चर्चा की है। असल में देव और पद्माकर दोनों कवि इस वर्ग में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। रीतिबद्ध काव्य को पढ़ते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इस वर्ग के कवियों का मुख्य कार्य और उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना एवं नायक-नायिका भेद को कविता में दर्शाना था। इसी उद्देश्य में प्रेरित होकर वे ग्रंथ रचना करते थे। इसलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया अर्थात ये कवि रीति अथवा काव्यशास्त्र से संलग्न थे। डॉ. नगेन्द्र ने रीतिबद्ध के स्थान पर इनका नाम "रीतिकार" अथवा "आचार्य कवि" रखा है परंतु यह नाम अधिक चर्चित नहीं हुआ।

रीतिबद्ध कवियों के भी दो प्रमुख वर्ग माने जाते हैं-सर्वांग निरुपक और विशिष्टांग निरुपक। जो कवि काव्य लक्षण से लेकर शब्द शक्ति, गुण-दोष, रस, रीति, अलंकार, छंद इत्यादि सभी काव्यांगों का विवेचन करते हुए काव्य रचना करते हैं, उन्हें सर्वांग निरुपक कवि माना गया। हमारे आलोच्य कवि देव इसी कोटि में आते हैं, क्योंकि इन्होंने सभी काव्यांगों का विवेचन बड़े विस्तार से किया है। विशिष्टांग निरूपक कवि काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार, छंद इत्यदि में से एक, दो अथवा तीन अंगों का ही विवेचन करते हैं। कवि पद्माकर भी विशिष्टांग निरूपक कवि के रूप में ठहरते हैं। पद्माकर ने दो काव्यांगों रस और अलंकार के विवेचन में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है।

यद्यपि देव ने सभी काव्यांगों को बड़े विस्तार में विवेचित किया है परंतु उनके लक्षणों और उदाहरणों में कहीं-कहीं समानता का अभाव है। उनका रस-विवेचन तथा नायक-नायिका वर्णन भी कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण हो गया है। इसमें संदेह नहीं कि कवित्व की दृष्टि से इनकी रचनाएँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं। परिणाम एवं गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से देव इस युग के श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। इनकी कल्पना बिहारी से

टक्कर लेती है। इसलिए कई आलोचकों ने इनकी तुलना बिहारी से भी की है। हिन्दी साहित्य के विवादों में एक प्रमुख विवाद देव और बिहारी के बड़े होने से सम्बंधित रहा है।

विशिष्टांग निरूपक रीतिकालीन कवियों में पद्माकर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आदर से लिया जाता है। इन्होंने आचार्य एवं कवि दोनों रूपों में विपुल ख्याति अर्जित की है। इनका नाम रस एवं अलंकार का सफल विवेचन करने वाले गिने-चुने आचार्यों में बड़े गर्व में लिया जाता है। इनकी कल्पना इतनी स्वाभाविक है कि पाठक मानों प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। इन्होंने वीर रस की कविता भी लिखी है और भक्ति पर भी इनका समान अधिकार रहा है, परंतु जितनी सफलता इन्हें शृंगार वर्णन में मिली. है, उतनी किसी अन्य क्षेत्र में प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि अनुप्रासों के फेर में पद्माकर ने कहीं-कहीं भावों की उपेक्षा कर दी है। परंतु सामान्यतः उनकी भाषा पर्याप्त सधी हुई एवं सौष्ठव संपन्न है। आचार्य के रूप में उन्होंने दोहों का प्रयोग किया है। और कवि के रूप में कवित्त और सवैयों का। उनका शब्द भंडार बृहद है, इसलिए उनके छंद सरस एवं कलापूर्ण बन सके हैं।

14.3 देव की कविता

प्रस्तुत खण्ड में हम रीतिकाल के महतवपूर्ण कवि देव की कविताओं से और इन कविताओं की व्याख्या से परिचित होंगे—

राधिका कान्ह को ध्यान धरैं तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यों अँसुवा बरसै बरसाने को पाती लिखै लिखि राधिकै ध्यावै।
राधे ह्वै जाइ तेही छिन देव सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु ते आपुही मैं उरझै सुरझै बिरझै समुझै समुझावै॥

व्याख्या : प्रस्तुत सवैया रीतिकाल के सिद्ध कवि देव की है। इस पद में वे राधा-कृष्ण के प्रेम की अद्वितीयता का वर्णन करते हैं। रीतिकाल के लिए कवि भिखारीदास ने कहा था "आगे के सुकवि रीझिहें तो कविताई ना तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है" के विचार को चरितार्थ करती ये कविताएँ राधा और कृष्ण के बहाने प्रेम की लाक्षणिकता का सहज प्रमाण है। इस कविता में देव व्यक्त करते हैं कि राधा कृष्ण के ध्यान में इतनी मग्न हो जाती हैं कि वे भूल जाती है कि वह राधा है। प्रेम में अपने अस्तित्व का प्रेमी में समाहार कर देना प्रेम का उदात्त भाव है। राधा स्वयं को कृष्ण समझ बैठती हैं और तब कृष्ण के बहाने अपने ही गुणों का बखान करने लगती हैं। राधा का कृष्ण में एकाकार होकर अपने ही गुणों पर मुग्ध होने के पश्चात् राधा के आँखों से आँसू बहने लगते हैं। राधा रुपी कृष्ण बरसाने को पत्र लिखती हैं क्योंकि राधा बरसाने की हैं और पत्र लिखकर राधारुपी कृष्ण राधिका के बारे में सोचने लगती हैं। फिर जब उन्हें अपना भान होता है उसी क्षण भर वे राधा बन जाती हैं। उन्हें यह ध्यान आ जाता है कि वे कृष्ण नहीं हैं। तब वे प्रेम की चिट्ठी को अपने सीने से लगा लेती है। प्रेमभाव से मग्न होकर राधा अपनापन भी भूल जाती है। वह कभी तो खुद को कृष्ण समझ लेती है और कुछ समय बाद वह फिर अपने बारे में भान होने पर स्वयं को राधा होने का बोध हो आता है। प्रेम के इस भाव में वे अपने आप ही उलझन में पड़ जाती हैं। कभी वह उलझन को दूर करती है तो कभी उलझती है और फिर स्वयं को समझाती हैं कि वे राधारूपी कृष्ण नहीं स्वयं राधा हैं।

बोलि उठो पपिहा कहुँ 'पीव' सु देखिये को सुनि कै धुनि धायी।
मोर पुकारि उठे चहुँ ओर सु देव घटा घिरकी चहुँधाई।
भूलि गयी तिय को तन की सुधि देखि उतै बन-भूमि सुहायी।
साँसन सों भरि आयो गरो अरु आँसुन सों अँखियाँ भरि आयी॥

व्याख्या : प्रस्तुत सवैया में देव विरहिणी नायिका का चित्रण किया है। यह कवि समय है कि पपीहे की बोली पिऊ पिऊ होती है और उसके बोलने से नायक या नायिका को अपने प्रेम के आलंबन की याद आती है। पपीहे की युक्ति से कवि देव नायिका के वियोग श्रृंगार का वर्णन किया है। इस सवैये में वे लिखते हैं पपीहा के 'पिउ-पिउ' की आवाज़ से विरहिणी नायिका को अपने प्रिय का ख्याल हो आता है और वह पपीहे की आवाज़ सुनकर दौड़ पड़ती कि संभवतः उसका प्रिय आ गया है। किन्तु यह भ्रम मात्र ही साबित होता है। वर्षा के समय में चारों ओर मोर बोलते हैं, चारों ओर से बादलों की सुंदर-सुंदर घटाएँ घिर आती हैं। ऐसे में प्रिय के बारे में भ्रमित सूचना से विरहिणी नायिका को दुःख होता है, इस दुःख से उत्पन्न एहसास से उसे अपने शरीर की भी सुधि भी नहीं रहती। वह प्रिय

से मिलने की चाह में बाहर निकल पड़ती है और वर्षा के कारण उसे उसे सुहावने और सुंदर वन-भूमि दिखाई पड़ते हैं। किन्तु उस प्राकृतिक सौम्य व सुंदर वातावरण में प्रिय के नहीं होने के कारण उत्पन्न दुःख से उसकी गहरी साँसें चलने लगती हैं। दुःख से उसका गला भर आता है और आँसुओं से उसकी आँखें भर जाती हैं। प्रस्तुत पद में नायिका के विरह का चित्रण है और यह वियोग श्रृंगार की कविता है।

कोमलताई लताई सों लीनी, ले फूलनि फूलनि ही की सुहायी।
कोकिल की कल बोलनि, तोहि, बिलोकनि बाल-मिगीनि बतायी॥
चाल मरालन ही सिखयी, नख तें सिख यों मधु की मधारयी।
जानति हौं, ब्रज-भू पर आये, सवै सिखि रूप की संपति पायी॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद में महाकवि देव नायिका के अपूर्व रूप का वर्णन करते हैं। प्रस्तुत सवैये के अनुसार नायिका का रूप साधारण रूप नहीं है वह असाधारण और अप्रतिम है। वह अद्भुत है, आकर्षक है। उसमें लताओं की जैसी कोमलता है, लचक है। उसकी कोमलता लताओं से ली हुई है वह इतनी कोमल है कि जैसे लताएँ बिना किसी सहारे के खड़ी ही नहीं हो सकती इस पंक्ति में कोमलता के अतिरेक से नायिका का वर्णन किया गया है। नायिका का रूप फूलों से फूलने, प्रस्फुटित होने का गुण अपने भीतर समाहित किए हुए है। उसकी वाणी कोयल की सुंदर वाणी जैसी है। उसकी चितवन यानी दृष्टि बाल मृगी (हिरणी के छोटे बच्चे सरीखे) की जैसे चंचल है। उसकी चाल जैसे मृनालों (हंसों) ने सिखाई है। उसमें नखों से लेकर शिखा तक मधु यानी शहद के जैसा मिठास मौजूद है। देव कहते हैं जानते हो यह नायिका ब्रज की भूमि पर सबके रूप की संपत्ति लेकर अवतरित हुई है। देव के इस सवैये में ब्रज की नायिका के रूप में राधा के अपूर्ण रूप का रेखांकन किया गया है। उपमा और अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नायिका के तौर पर राधिका के अपूर्व और अनिंद्य सुन्दरी होने के साथ साथ दैवीय नायिका होने के लिए किया गया है। इस सवैये के माध्यम से राधिका के असाधारण होने को अभिव्यक्ति किया गया है।

पायनि नूपुर मंजु बजे कटि-किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसे पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर श्री ब्रज-दूलह देव-सहाई॥

व्याख्या : प्रस्तुत सवैये में महाकवि देव कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन करते हैं। देव वैष्णव परम्परा से जुड़े हुए थे। उन्होंने रीतिकाल में रीति-निरूपण करते हुए कृष्ण और राधा को नायक-नायिका के रूप में देखा है। इस सवैया में वे कृष्ण की अलौकिकता का वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं कृष्ण के पैरों में पैंजनी या घुँघरुओं के बजने से और कमर में बंधी करधनी की घंटियों-घुंघरुओं से सुमधुर और मंजुल ध्वनि होती है। कृष्ण के साँवले शरीर पर लिपटे पीले वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं और वक्षस्थल पर वनमाला सुशोभित है, माथे पर मुकुट है और उनके नेत्र चंचल हैं उनके चंद्रमा से मुख पर मंद-मंद हँसी चाँदनी-सी सुंदर लगती है और मन को प्रसन्नता देने वाली है। ऐसे कृष्ण जो संसार रूपी मंदिर के सुंदर दीपक हैं और ब्रज के दूल्हा यानी ब्रज के स्वामी है जो कृष्ण देवों की भी सहायता करने वाले हैं। प्रस्तुत पद में देव कृष्ण के बाल-रूप के सुन्द्रताओं का वर्णन करते हुए कृष्ण की अलौकिकता और ईश्वरीयता को भी संबोधित करते हैं। एक तरह बाल-कृष्ण के अद्भुत रूप सौन्दर्य का वर्णन है तो दूसरी तरफ कृष्ण के विष्णु अवतारी होने का भी संकेत है। जै जग-मंदिर दीपक और ब्रज-दूलह देव-सहाई कृष्ण में अलौकिकता का वर्णन है।

ता दिन तें अति ब्याकुल है तिय जा दिन तें पिय पंथ सिधारे।
भूख न प्यास बिना ब्रज-भूषन भामिनि भूषन-भेष बिसारे।
पावत पीर नहीं कवि देव करोरिक मूरि सवै करि हारे।
नारि निहारि-निहारी चले तजि बैद बिचारि-बिचारि बिचारे॥

व्याख्या : प्रस्तुत सवैया रीतिकाल के अनन्य कवि देव का है। प्रस्तुत सवैये में देव वियोग श्रृंगार का वर्णन करते हैं। इस सवैये के नायक श्रीकृष्ण और नायिका श्री राधा हैं। देव अपने इस सवैये में वर्णित करते हैं कि जिस दिन से प्रियतम ने परदेस के लिए प्रस्थान किया है यानी श्रीकृष्ण गोकुल छोड़ मथुरा चले गए हैं तब से ही उसकी प्रिया अत्यंत व्याकुल है यानी श्री राधा कृष्ण के विरह में अत्यंत व्याकुल हैं। ब्रज के भूषण श्री कृष्ण राधा के अत्यंत प्रिय हैं। प्रिय के विरह वियोग में प्रिय के बिना प्रिया को दुःख के कारण भूख-प्यास भी नहीं महसूस होती। नायिका ने आभूषण, वस्त्र इत्यादि को भी त्याग दिया है। उसने अपना शृंगार करना भी छोड़ दिया है। कवि देव कहते हैं कि वैद्य आदि उसकी पीड़ा को नहीं जान पाते। वे जान ही नहीं पाते कि उसका रोग क्या है। वे उसे स्वस्थ करने के लिए जड़ी-बूटी, उपचार करते-करते थक गए। वैद्य आकर उसे देखते हैं, उसकी ख़ूब अच्छी तरह से जाँच करते हैं, किंतु उसके रोग को नहीं पकड़ पाते। वे अपनी बुद्धि से उसका वास्तविक रोग जानने का ख़ूब प्रयत्न करते हैं और प्रयास सफल न होने पर वे उसे यों कष्ट में छोड़कर चले जाते हैं। प्रस्तुत सवैये में प्रेम से उत्पन्न विरह और विरह जनित मलिनता को सांसारिक मूल्यों से नहीं समझ पाने की विवशता का चित्रण हुआ है। ब्रज-भूषन भामिनी यानी इस कविता की नायिका श्री राधा का कृष्ण से बिछोह से उत्पन्न विकट स्थिति का वर्णन है।

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन-अकुलीन कहौ,
कोउ कहौ रंकिनी कलंकिनी कु-नारी हौं।
कैसो परलोक, नरलोक बर लोकन में,
लीन्हीं में अलीक लीक-लीकन तें न्यारी हौ
तनजाहि, मन जाहि, देव गुरुजन जाहि,
जीव किन जाहि, टेक टरति न टारी हौं।
वृंदाबनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीत-पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद रीतिकाल के महत्वपुर्ण कवि देव का है। इस पद में श्रीकृष्ण से गोपिकाओं की भक्ति का माधुर्य सम्बन्ध की व्याख्या हुई है। श्रीकृष्ण के प्रेम में गोपिकाएं सभी सामाजिक बंधनों, अनुशासनों और नियमों को अस्वीकार कर अपने आराध्य के प्रति अपने अनन्य सम्बन्ध को दर्शाती हैं। नवधा भक्ति में माधुर्य भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है। देव रीतिकाल के कवि होने के साथ-साथ वैष्णव परम्परा के भक्त थे। रीतिकालीन प्रवृत्तियों के वर्णन के लिए उन्होंने राधा-कृष्ण को उपमान माना है। प्रस्तुत पद में गोपी कहती है कि मुझे भले ही कोई कुलटा कहे या व्यभिचारिणी कहे, उच्च अथवा श्रेष्ठ कुल की स्त्री कहे अथवा बुरे या निम्न कुलवाली कहे चाहे कोई रंकिनी, कलंकिनी कहे चाहे मुझे ख़राब स्त्री कहे मुझे इसकी कोई चिंता नहीं है। मैं परलोक, मानव लोक किसी श्रेष्ठ लोक के बारे में नहीं सोचती। मुझे इनसे मतलब नहीं। मेरी दुनिया तो तीनों लोकों से न्यारी है। न मुझे इस लोक में निंदा का डर है न परलोक के बिगड़ने अथवा सुधरने इत्यादि की कोई चिंता है। मेरा भले ही शरीर बर्बाद हो जाए, चाहे मन बर्बाद हो। देवता, गुरु और बुज़ुर्ग लोग भी भले ही नाराज़ हों। मेरे प्राण भले ही चले जाएँ किंतु मैंने मन में जो ठान लिया है मैं उसे नहीं छोड़ सकती। मैं तो वृंदावन बिहारी, बनवारी, मुकुट धारण करने वाले तथा पीले वस्त्र धारण करने वाले यानी श्रीकृष्ण की मूर्ति पर स्वयं को न्यौछावर करती हूँ। मैंने तो अपने आपको श्रीकृष्ण के लिए समर्पित कर लिया है। इसके अतिरिक्त अब मैं और किसी के बारे में नहीं सोचती हूँ। महाकवि देव गोपी के इस आत्मगत कथन से श्रीकृष्ण के प्रति गोपी के समर्पण को रेखांकन करते हैं।

त्रिबली तरंगिनि निकट नाभि हद तट,
रोमराजी वन धँसि मुकत अन्हात हैं।
नेह नगरी मैं गुन गेह उर ऊँची पौरि,
देव कुच कंचन के कलस लखात हैं।
लोचन दलाल ललचावत बटोहिन कौ,
लाल चलि देखौ लाल मोलनि लहात हैं।
जोवत बज़ार बैठ्यो जोहरी मदन सब,

लोगनि को हीरा वाके हाथ ह्वै बिकात हैं॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद रीतिकाल के कवि देव की है। इस पद में महाकवि देव रीति परम्परा के अनुरूप नायिका का आंगिक वर्णन करते हैं। यह पद रीतिकालीन सौन्दर्य वर्णन के पदों का मोहक उदहारण है। देव अपने इस पद में नायिका को श्रीकृष्ण की तरह त्रिभंगी सौन्दर्य में देखते हैं। यह स्त्री सौन्दर्य देखने का अतिरेक है। देव लिखते हैं, उस बाला यानी स्त्री की भंगिमा में तीन जगह बल पड़े हुए हैं, जो नेह के नगर में प्रेम में ऐसा सौन्दर्य श्रेष्ठ माना जाता है। ऐसी सुंदर नायिका का पहला बल नाभि के निकट है और उस नाभि के किनारे रोमावली वन की भाँति फैली हुई है और जब यह नायिका स्नान करती है तब रोमावली नाभि में धँस जाती है। देव कहते हैं यह युवती स्नेह की नगरी है जहाँ गुणों के घर में सोने के घड़े के मानिंद उसके सुपुष्ट वक्ष सुशोभित हो रहे हैं। उसके नेत्र रूपी दलाल बटोहियों को ललचाकर मोल ले लेते हैं यानी जिस प्रकार बाज़ार में दलाल ग्राहकों को अपनी बातों में फँसा लेते हैं, उसी प्रकार इस नवयौवना के नेत्र रूपी दलाल रसिकों को अपनी बातों में फँसा लेते हैं। उस बाला यानी स्त्री के यौवन रूपी बाज़ार में कामदेव रूपी जौहरी बैठा हुआ है जो लोगों के हीरे रूपी हृदय को परखता है और लोग अपने हीरे रूपी हृदय को उसके हाथ बेच बैठते हैं।

डार द्रुम पलना, बिछौना नव-पल्लव के,
सुमन झगूला सोहै, तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी ते॥
पूरित पराग सों उतारों करै राई-नोन,
कंज-कली नायिका, लतानि पुचकारी दै।
मदन-महीप जू को बालक बसंत, ताहि,
प्रातहिं जगावत गुलाब चटकारी दै॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद रीतिकाल के अन्यतम कवि देव की है। इस पद में देव ने प्रकृति के सुषमा का वर्णन किया है। इन पदों को पढ़ते हुए छायावाद की प्रकृति विवरण वाली कविताओं की पूर्वज कविता का एहसास होता है। अगर देव अथवा पद्माकर के यहाँ प्रकृति का ऐसा विवरण नहीं होता तो संभवतः छायावाद की प्रकृति परकता हिंदी में ठीक वैसी नहीं होती जैसी कि वह छायावाद में दिखती है। देव इस पद में लिखते हैं, कामदेव रूपी राजा बसंत रूपी बालक के लिए वृक्षों का पालना, नए-नए पत्तों का बिछौना बनाकर, शरीर पर फूलों का शोभायमान झगूला अर्थात ढीला-ढाला वस्त्र पहनाकर पवन उसे झुला झुलाता है। मोर और तोता उस बालक से बालकों की भाषा में जैसे बातें कर रहे हैं। कोयल बोलकर ख़ुश होती हुई मानो बच्चे का जी बहलाने के लिए हाथ की ताली बजाने का काम कर रही है, कमल की कली जैसी नायिका है जो पराग को बिखेरती हुई राई-नमक उतारती है यानी नज़र उतारती है। लताएँ जैसे बच्चे को पुचकार रही हैं। सुबह गुलाब खिलकर मानो चटकारी देता है यानी संकेत करता है और वह राजा कामदेव के बसंत रूपी बालक को प्रातःकाल जगाता है।

कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न, पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न, मुंडन न तिलक त्रिपुंडन न,
नदी-कूप-कुंडन न न्हान दान-रीति मैं॥
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल मैं,
माला-दंड मैं न 'देव' देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पेखिके प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद रीतिकाल के महाकवि देव की है। यह देव का भक्ति परक पद है। रीतिकाल के संदर्भ में कवि भिखारीदास ने कहा था 'आगे के सुकवि रीझिहें तो कविताई ना तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है' देव के कई भक्ति परक पदों में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का और भिखारीदास के मंतव्यों का उत्खनन हुआ है। किन्तु यह पद उन अपवादों में है जहाँ देव की भक्ति निर्विवाद रूप से अभिव्यक्ति हुई है। देव लिखते हैं, ईश्वर कभी भी कथा, गुदड़ी, तीर्थ, संप्रदाय, पंथों इत्यादि से प्राप्त नहीं होता है। कोई विशेष पद्धति का सहारा ले या किसी का सान्निध्य प्राप्त कर लेने से भी भक्ति प्राप्त नहीं होती। जटा बढ़ा लेने से या मुडंन करा लेने से या तिलक अथवा त्रिपुंड धारण कर लेने से किसी विशेष नदी-पोखरों में स्नान कर लेने से या दान इत्यादि के द्वारा भी वह नहीं मिलता। पीठ, मठ, या मंडल में भी वह ईश्वर नहीं रहता है। वह कानों में कुंडल, हाथ में कमंडल और संन्यास धारण करने से भी नहीं मिलता है। माला और दंड धारण कर लेने से और देवरा यानी देवालयों में खोजने से भी वह नहीं मिलता। वह प्रभु तो अपार समुद्र की तरह सर्वत्र व्याप्त है। यदि विश्वास हो तो उसे कहीं भी पाया जा सकता है। ईश्वर के इस तरह की सार्वभौमिकता का वर्णन देव को निर्गुण परम्परा के संतों के साथ लाकर खड़ा कर देता है, जबकि देव वैष्णव परम्परा के हैं और कृष्ण के उपासक हैं। इस पद में भक्ति की व्यापकता और भक्ति के प्रपंचों की आलोचना को देव ने अभिव्यक्त किया है।

आयी रितु पावस, न आये प्रान-प्यारे या तें
मेघनि बरजि आली! गरजि सुनावैं ना।
दादुरनि कहि, बकि-बकि जनि फोरैं कान,
पिकनि हटकि, हठि सबद सुनावैं ना॥
बिरह-बिथा में हौं तो ब्याकुल परी हौं, देव
जुगनू चमकि चित चिनगी लगावैं ना।
चातक न गावैं, मोर सोर न मचावैं, घन
घुमड़ि न आवैं, जौ लौं कान्ह घर आवैं ना॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद रीतिकाल के प्रमुख कवि देव की है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "मतिराम और जसवंत सिंह के बाद यदि कोई सचमुच ही शक्तिशाली कवि और अलंकारिक कवि हुआ तो वह देव कवि थे।" वहीं मिश्र बंधुओं का मानना है कि हिंदी साहित्य में तुलसी के बाद देव का स्थान आता है। महाकवि देव इस पद में वे वियोग श्रृंगार का वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं, विरहिणी नायिका सोचती है कि ग्रीष्म ऋतु के बीतने पर अब तो वर्षा ऋतु भी आ गई है किंतु प्राण प्यारे मेरी दयनीय दशा का ध्यान रखकर अभी तक नहीं आए। मैं अकेली ही रह गई। विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि इसी कारण तू बादलों को रोक दे, फटकार दे कि वे यहाँ अपनी गर्जना न सुनाएँ। तू मेंढकों से कह दे कि वे बकवास कर-कर के मेरे कान न फोड़ें। उनकी आवाज़ मेरे कानों को पीड़ा पहुँचाती है। तू कोयलों को हटक दे, रोक दे कि वे ज़िद करके यहाँ अपनी मधुर कूक न सुनाएँ। मैं तो वैसे ही विरह-व्यथा के कारण परेशान हूँ इस पर भी जुगुनू चमक-चमककर मेरी व्यथा में और आग लगा रहे हैं। उससे कह कि वे ऐसा न करें, यहाँ न चमकें। यहाँ पपीहे न बोलें, मोर भी शोर न मचाएँ। यहाँ बादल घुमड़कर न आने पाएँ। तू इन सबको तब तक यहाँ मत आने और बोलने दे जब तक कि मेरा प्रियतम वापस न आ जाए।

14.4 पद्माकर की कविता

प्रस्तुत खण्ड में हम रीतिकाल के महतवपूर्ण कवि पद्माकर की कविताओं से और इन कविताओं की व्याख्या से परिचित होंगे—

आयी हौं खेलन फाग इहाँ वृषभानपुरी तें सखी संग लीने।
त्यों 'पद्माकर' गावतीं गीत रिझावतीं हाव बताइ नवीने।
कंचन की पिचकी कर में लिये केसरि के रंग सों अंग भीने।
छोटी-सी छाती छुटी अलकैं अति बैस की छोटी बड़ी परबीने॥

व्याख्या : नायिका कहती है कि मैं अपने पिता राजा वृषभानु की नगरी अर्थात बरसाना से अपनी सखियों को साथ लेकर यहाँ गोकुल में फाग खेलने आई हूँ। कवि पद्माकर वर्णन करते हुए कहते हैं कि राधा और उसकी सखियाँ मधुर गीत गाती हैं और अनेक नई-नई

चेष्टाएँ, हाव-भाव आदि करती हुई लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, उन्हें रिझाती हैं। उनके हाथों में सोने की पिचकारी है ओर केसर के रंग के समान उसका कांतियुक्त भीगा बदन सुगंध से सुवासित है। उसका वक्ष अभी छोटा ही है अर्थात उसके स्तनों का विकास पूरी तरह नहीं हुआ है। बाल बिखरे हुए हैं, आयु में भी वह अभी छोटी है परंतु बड़ी चतुर है, अर्थात बात-व्यवहार में काफ़ी समझदार एवं चतुर है।

राम को नाम जपो निसिबासर, राम ही को इक आसरो भारो।
भूलो न भूल की भीरन में, 'पद्माकर' चाहि चितौनि को चारो।
ज्यों जल में जलजात के पात, रहै जग में त्यों जहान तें न्यारो।
आपने-सो सुख औ दुख दौरि जु, और को देखै सु देखन हारो॥

व्याख्या : सभी लोग रात-दिन श्रीराम के नाम का ही जप करें; क्योंकि इस संसार में श्रीराम का ही सबसे बड़ा सहारा है। भूलों की भीड़ में भी राम का नाम नहीं भूलना चाहिए। कवि पद्माकर कहते हैं कि भगवान श्रीराम की कृपा-दृष्टि की ही सदा इच्छा करनी चाहिए। जिस प्रकार पानी में रहकर भी कमल का पत्ता पानी पर आश्रित न रहकर उससे भिन्न व ऊपर रहता है, उसी प्रकार हमें संसार में रहते हुए भी संसार से विरक्त रहना चाहिए। इस संसार में भगवान श्रीराम के अतिरिक्त और कौन ऐसा देखने वाला है जो औरों के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख के समान ही समझकर सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं।

गोकुल के कुल को तजि कै भजि कै बन बीथिन में बढ़ि जैये।
त्यों 'पद्माकर' कुंज कछार बिहार पहारन में चढ़ि जैये।
है नंदनंद गुबिंद जहाँ-तहाँ नंद के मंदिर में मढ़ि जैये।
यों चित चाहत ए री भटू मनमोहन लै कै कहूँ कढ़ि जैये॥

व्याख्या : प्रेमासक्त गोपिका कहती है कि मेरी इस गोकुल के कुल या गायों के झुंड को त्यागकर, वन के उन रास्तों पर भागने की इच्छा होती है, जिन पर प्रियतम श्रीकृष्ण गायें जंगल में गए हुए हैं। पद्माकर कवि कहते हैं कि इसी प्रकार श्रीकृष्ण के लीला-स्थल कुंजों, कछारों तथा पहाड़ों पर भी भाग कर मैं चढ़ जाऊँ। जहाँ-जहाँ भी नंद-नंदन श्रीकृष्ण हैं, वहाँ-वहाँ और नंद के महलों में तो जाकर मैं चित्र की भाँति वहाँ की दीवारों पर ही मढ़ जाऊँ। मेरा मन यह चाहता है कि मन को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण को अपने साथ लेकर कहीं निकल जाऊँ, ताकि उनसे मेरा एक क्षण का वियोग भी नहीं हो।

फहरे निसान दिसानि ज़ाहिर, धवल दल बक पंत से।
हय हियनि हर्षित बीरबर, फूले फिरत रति कंत से॥
बल के सवार सपूत अति, मज़बूत नद-से उमड़ि कै।
अरि-अरि ओरे-सी परैं, घनघोर गोली घुमड़ि कै॥

व्याख्या : वर्षा ऋतु को सेना का रूपक देते हुए कवि पद्माकर वर्णन करते हुए करते हैं कि सभी ओर वर्षा ऋतु रूपी सेना के निशान अर्थात ध्वजाएँ फहर रही हैं, जो कि बगुलों के झुंडों की पंक्तियों की भाँति सफ़ेद हैं। आशय यह है कि बगुलों की सफ़ेद पंक्तियाँ वर्षा ऋतु रूपी सेना के निशान हैं, उसकी पताकाएँ हैं। इस अवसर पर रसिक-प्रेमी लोगों के हृदय रूपी घोड़े बड़े प्रसन्न होकर हिनहिना रहे हैं और कामदेव के समान श्रेष्ठ वीर घूम रहे हैं। घनघोर घटाओं के उमड़ने-घुमड़ने से दुश्मनों की ओर ओले के समान गोलियाँ गिर रही हैं।

आपहि आप पै रूसि रही कबहूँ पुनि आपुहि आप मनावै।
त्यों 'पद्माकर'ताल तमालनि भेटिबे को कबहूँ उठि धावै।
जौ हरि रावरो चित्र लखै तौ कहूँ कबहूँ हँसि हेरि बुलावै।
ब्याकुल बाल सुआलिन सों कह्यो चाहै कछू तौ कछू कहि आवै॥

व्याख्या : विरह-व्यथा से उन्मादित वह नायिका कभी स्वयं ही अपने आप से नाराज़ होती है और कभी अपने आपको ही मनाने लगती है। कवि पद्माकर कहते हैं कि वह नायिका कभी तो पड़ी रहती है और कभी ताल और तमाल के वृक्षों से मिलने के लिए उठकर दौड़ पड़ती है। हे हरि, यदि उसे आपका चित्र कहीं दिखाई देता है, तो क्या कहा जाए! वह हँसकर चित्र को देखती है और आपको बुलाती है। ऐसी विरह-व्याकुल ब्रजबाला या राधा अपनी सखियों से कहना तो कुछ चाहती है, परंतु कुछ और ही कह देती है।

फाग के भीर अभीरन में गहि गोबिंदैं लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी।
छीन पितंबबर कंम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिरि आइयौ खेलन होरी॥

व्याख्या : प्रस्तुत पद में कवि पद्माकर ने बाल-कृष्ण और गोपी के होरी खेलने का वर्णन किया है। गोपी ने फाग खेलने के लिए कृष्ण को अपने गोद में लेकर कमरे के भीतर ले कर चली गयी है। वहाँ अपने मन के अनुसार विविध रूप से कृष्ण के साथ होली खेल रही है। कृष्ण के ऊपर अबीर की पूरी झोरी डाल कर कृष्ण का पीताम्बर छीन कर पूरे शरीर में रोली भर कर उन्हें भेजते हुए नैन नचा कर और बांकी मुस्कान मुस्काते हुए व्यंग्यपूर्वक कहती है कि फिर होली खेलने आना कृष्ण। क्योंकि मन की करते हुए उसने कृष्ण की गत बना दी है।

कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौन हू में,
पानन में पिकन पलासन पगंत है॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है॥

व्याख्या : यमुना के तटों पर पशु-पक्षियों एवं अन्य प्राणियों की एकांत-क्रीड़ाओं में, कछारों में, वन-उपवन में, कुजों में, फूलों की क्यारियों में और सुंदर कलियों में बसंत किलकारी भर रहा है। कवि पद्माकर कहते हैं कि फूलों के पराग में, पवन में, पत्तों में, कोयल के कंठ में और दिशाओं में, सारे संसार में, देश-देश में, द्वीप-द्वीप में बसंत ऋतु की मनोरम प्राकृतिक छटा आलोकित हो रही है। ब्रज की गलियों में, सारे ब्रज में, नवयुवतियों या नववधुओं में, लताओं में, वनों और बागों में सर्वत्र ऋतुराज बसंत फैला हुआ है। इस तरह बसंत के आगमन से संपूर्ण प्रकृति तथा जड़-चेतन जगत अत्यधिक शोभायमान हो रहा है।

सजि ब्रजचंद पै चली यों मुखचंद जा को,
चंद चाँदनी को मुख मंद-सो करत जात।
कहै 'पद्माकर'त्यों सहज सुगंध ही के,
पुंज बन-कुंजन में कंज-से भरत जात॥
धरति जहाँई जहाँ पग है पियारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ-सी ढुरत जात।
हारन तें हीरे ढरैं सारी की किनारन तें,
बारन तें मुकता हज़ारन झरत जात॥

व्याख्या : श्रीकृष्ण से मिलने के लिए जब राधा चली, तो उस समय उसका मुखरूपी चंद्रमा इतना सुंदर लगने लगा कि वह अपनी आभा से चंद्रमा की चाँदनी की आभा को भी फीका करने लगा। पद्माकर कवि कहते हैं कि उसके शरीर की स्वाभाविक सुगंध की

राशि से वन और कुंजों में जैसे कमलों की सुगंध भरने लगी थी। वह प्यारी राधिका जहाँ-जहाँ अपने कदम रखने लगी, वहाँ-वहाँ सुंदर मजीठ के घड़े ही ढुलकने लगे। उसकी साड़ी के किनारों के हिलने से अनेक हीरे तथा हृदय में पहने हार से हज़ारों मोती झरते हुए दिखाई देने लगे। यानी साड़ी पर खचित सलमे-सितारों के साथ हीरे झिलमिला रहे थे, तो छाती के हार पर मोती चमक रहे थे।

आज बरसाने की नवेली अलबेली बधू,
मोहन बिलोकिबे को लाज-काज ल्वै रही।
छज्जा-छज्जा झाँकती झरोखनि-झरोखनि ह्वै,
चित्रसारी-चित्रसारी चंद-सम व्वै रही॥
कहै 'पद्माकर' त्यों निकसो गोबिंद ताहि,
जहाँ-तहाँ इक टक ताकि घरी द्वै रही।
छज्जा वारी छकी-सी उझकी-सी झरोखावारी,
चित्र कैसी लिखी चित्रसारीवारी ह्वै रही॥

व्याख्या : श्रीकृष्ण गोकुल से बरसाना आने वाले हैं। उन्हें देखने के लिए बरसाने की अलबेली सुंदरियों तथा नवेली वधुओं ने अपनी सारी लज्जा और घर के कामों को भी छोड़ दिया है। वे सभी सुंदरियाँ प्रत्येक छज्जे पर और प्रत्येक झरोखे से झाँकने लगती हैं। बरसाने की चित्रशालाएँ उन सुंदरियों की उपस्थिति से साकार चित्रलिखित-सी होकर चंद्रमा के समान मनोरम लग रही हैं। कवि पद्माकर कहते हैं कि इतने में ज्यों ही श्रीकृष्ण उस मार्ग से निकले, तो वे सुंदरियाँ दो घड़ी तक सब स्थानों से एकटक श्रीकृष्ण की रूप-छवि को निहारती रही। उस समय छज्जे पर से देखने वाली सुंदरियाँ विमुग्ध-सी होकर श्रीकृष्ण को देखती रहीं, तो झरोखे वाली सुंदरियाँ उझक-उझक कर देखने लगीं। चित्रशाला से देखने वाली अलबेली सुंदरियाँ चित्र-लिखित की भाँति अपने ही स्थानों से हिलडुल नहीं सकीं और श्रीकृष्ण के रूप-दर्शनों से वे अपना अस्तित्व भी भूल गईं।

चंचला चमावैं चहूँ ओरन तें चाह-भरी,
चरजि गयी ती फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लोनी लता,
लरज गयी ती फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरौं धीर बीर त्रिविध समीरैं तन,
तरज गयीं ती फेरि तरजन लागी री।
घुमड़ि घमंड घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गयी ती फेरि गरजन लागी री॥

व्याख्या : चारों ओर बिजलियाँ चाह से भरकर चमकने लगीं तो लगातार चमकती ही जा रही हैं। कवि पद्माकर कहते हैं कि लौंग की सुकुमार लताएँ जब एक बार कंपित होने लगीं, तो फिर निरंतर कंपायमान हो रही हैं तथा उनका हिलना-झूलना लगतार चल रहा है। ऐसे में नायिका नायक को लक्ष्य करके कहने लगी कि हे प्रियतम, ऐसे मनोरम समय में मैं कैसे धैर्य धारण करूँ? क्योंकि अब शीतल, मंद एवं सुगंधित—तीनों तरह की हवाएँ मेरे शरीर को कंपित एवं भयभीत कर रही हैं और अब ये तीनों हवाएँ निरंतर बढ़ती हुई वियोग-वेदना से ग्रस्त मेरे शरीर को कंपित कर रही हैं। अब बादलों की गर्वीली घटा उमड़-घुमड़कर गरजने लग गई, तो फिर लगातार गरज-तरज रही हैं, अर्थात निरंतर गर्जना करती हुई मुझे व्यथित कर रही हैं।

झिलत झकोर रहै जीवन को ज़ोर रहै,
समद मरोर रहै सोर रहै तब सों।
कहै 'पद्माकर'तकैयन के मेह रहै, नेह
रहै नैननि न मेह रहै दब सों॥
बाजत सुबैन रहै उनमद नैन रहै,

चित्त में न चैन रहै चातकी के रब सों।
गेह में न नाथ रहै द्वारे ब्रजनाथ रहै,
कौ लौं मन हाथ रहै साथ रहे सब सों॥

व्याख्या : विरहिणी नायिका कहती है कि मैं प्रचंड हवा के झोंकों को सहन करती रहूँ और मेरे शरीर में यौवन का उन्माद भी बना रहे। साथ ही अभिमान से युक्त मेरा मान भी बना रहे और बादलों की गर्जना का ज़ोर भी बना रहे। कवि पद्माकर कहते हैं कि छोटे-छोटे उपवनों में वर्षा होती रहे, नेत्रों में प्रेम भरा रहे। दावाग्नि के कारण मैं जल नहीं पाऊँ। मधुर स्वरों में वंशी निरंतर बजती रहे और मेरे नेत्र उन्मत्त बने रहें अर्थात उत्सुकता से व्याप्त नेत्र प्रिय-मिलन के प्रति आशान्वित रहें। चातकी का मधुर 'पीउ-पीउ' शब्द सुनने से मेरे चित्त का चैन समाप्त होता रहे अर्थात चित्त अशांत रहे। क्योंकि मेरे प्रियतम पति घर में नहीं रहते हैं, वे प्रवासी हैं, परंतु मेरे द्वार पर सदा ब्रजनाथ श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं। अन्य सब लोग साथ में रहते हैं, परंतु प्रवासी प्रियतम के कारण मेरा मन मेरे हाथ में नहीं है। इस व्यथित मन को किस विधि से अपने हाथ में या अपने वंश में रख सकूँ? आशय यह है कि मेरा मन बार-बार मुझे श्रीकृष्ण से अभिसार करने को विवश कर रहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. प्रस्तुत कविता की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

कोमलताई लताई सों लीनी, ले फूलनि फूलनि ही की सुहायी।
कोकिल की कल बोलनि, तोहि, बिलोकनि बाल-मिगीनि बतायी॥
चाल मरालन ही सिखयी, नख तें सिख यों मधु की मधारयी।
जानति हौं, ब्रज-भू पर आये, सवै सिखि रूप की संपति पायी॥

2. प्रस्तुत कविता की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौन हू में,
पानन में पिकन पलासन पगंत है॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है॥

3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

   क. देव रीतिकाल के ---------- धारा के कवि हैं।
   ख. पद्माकर रीतिकाल के ----------धारा के कवि हैं।

4. सही/ गलत कथन को रेखांकित कीजिए।

   क. देव प्रेम के पीर कवि माने जाते हैं।
   ख. पद्माकर की कविता में प्रेम की एकनिष्ठता वर्णित हुआ है।

14.5 देव का काव्य वैशिष्ट्य

देव का जन्म उत्तरप्रदेश के इटावा नगर में 1673 ई. में हुआ था। मिश्रबंधुओं ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है, परंतु इनका संबंध सनाढ्य ब्राह्मण परिवार से था। महाकवि देव अपने जीवन काल में अनेक राजा, रइसों और नवाबों के आश्रय में रहे। कहा जाता है कि देव 94 वर्षों तक जीवित रहे और 1767 ई. में इनका देहावसान हो गया। देव ने "भावविलास" शीर्षक अपनी रचना में कहा है कि वे धौसरिया ब्राह्मण थे- "धौसरिया कवि देव को नगर इटायो बाम।" इटावा के पास वे एक गाँव कसमरा में लंबे समय तक रहे और उनके सृजन का स्थान भी यही है। देव के गुरु श्री हित हरिवंश थे, जो वृंदावन में रहते थे। वहीं पर देव ने विद्याध्ययन किया। हित हरिवंश के बारह शिष्यों में देव मुख्य थे।

भारतेंदु हरिश्चंद ने देव के पदों का संग्रह "सुन्दरी सिंदूर" नाम से किया तथा इस स्थापना का समर्थन किया कि देव अपने जीवनकाल में आजमशाह, अकबर अलीखां, दादरी के रईस, भवानीदत्त, फफूंद के केशव सिंह, उद्योत सिंह, भोगी लाल इत्यदि अनेक राजाओं और रईसों के दरबार में रहे थे।

रीतिकाल के कवियों में देव का कृतित्व प्रायः सबसे अधिक माना जाता है कुछ विद्वान इनकी किताबों की संख्या 72 और कुछ 52 मानते हैं। परंतु अभी तक इनकी केवल 25 पुस्तकें ही प्रकाश में आई हैं। भावविलास इनकी पहली रचना है। इसमें 'अलंकार निरूपण' और श्रृंगार की विस्तृत व्याख्या मिलती है। शब्द-रसायन में शब्दशक्ति, गुण, रीति तथा छंदों का विवेचन है। अष्टयाम में नायक-नायिकाओं की दिनचर्या प्रस्तुत की गई है। देव शतक अध्यातम संबंधी ग्रंथ है। प्रेमचंद्रिका में विषय-वासना के प्रति तिरस्कार की भावना मिलती है। इसके अतिरिक्त रसविलास, जातिविलास, सुखसागर तरंग, राधिका विलास, देवचरित्र, भवानीविलास, कुशलविलास, प्रेमतरंग, सुजान विनोद इत्यादि भी इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

इनकी प्रारंभिक रचनाएँ श्रृंगार प्रधान थीं परंतु जैसे-जैसे इनकी उम्र ढलती गई, देव भक्तिपरक काव्य लिखने लगे। ब्रह्म दर्शन पचीसी और तत्व दर्शन इनकी आखिरी दौर की रचनाएँ हैं जो आत्मचिंतन पर आधारित है।

14.5.1 देव का आचार्यत्व

देव ने अन्य विषयों की अपेक्षा रीतिग्रंथ सबसे अधिक लिखे हैं। संभवतः इसलिए मिश्रबंधुओं ने इन्हें हिंदी का मम्मट माना है। देव को रीति आचार्यों में मम्मट इसलिए कहा जाता है कि इन्होंने काव्य के सर्वांग का विवेचन और निरूपण किया है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख ग्रंथ दो हैं- (1) भावविलास (2) शब्द रसायन। सभी रसों का पूर्ण विवेचन "भवानी विलास" तथा "शब्द रसायन" में ही मिलता है। जैसे—

कवि देवदत्त श्रृंगार रस सकल भाव संयुत संच्यो।
सब नायकादि नायक सहित, अलंकार वर्णन रच्यो ।। (भावविलास)

नायिका-भेद "भाव विलास", "भवानी विलास", "रस विलास", "सुख सागर तरंग" में पूर्ण विस्तार से वर्णित है। इसके अतिरिक्त देव, काव्य-रस, अलंकार, शब्द-शक्ति, काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य की आत्मा काव्य-उपादान इत्यादि पर विस्तार से महान काव्यशास्त्री आचार्य मम्मट की भांति ही विचार करते हैं। देव के लक्षण सीधे और स्पष्ट होते हैं। जैसे—

जो विभाव अनुभाव अरू, विभचारिन करि होइ।
थिति की पूरन वासना, सुकवि कहत रस होय।। (भावविलास)

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव द्वारा स्थायी भाव की पूर्ण वासना को रस कहते हैं। यहां "वासना" शब्द का अर्थ है स्मृत ज्ञान अर्थात् आपका अपना अनुभव। रस-परिपाक के लिए देव ने स्नेह या रागात्मकता को अनिवार्य माना है। दरअसल देव का आधार ग्रंथ है- भानुदत्त की "रस-तरंगिणी"। फिर भी देव ने नव रसों के साथ वत्सल, प्रेयान भक्ति आदि को पृथक रूप से स्वीकार कर रसों की संख्या में वृद्धि की। श्रृंगार के आलंबन नायक-नायिका भेद भी रस के अंतर्गत ही आ गया है और रीतिकाल के श्रृंगार को समझने की मूल दृष्टि भी देव ने ही दी है-

वाणी को सार बखान्यो सिंगार।
सिंगार को सार किसारे-किसोनी ।।

कामशास्त्र के आधार पर देव नायक-नायिका भेद का भाव-विस्तार करते हैं तथा देश, प्रकृति, काम को लेकर आगे बढ़ते हैं, देश-भेद, जैसे- मध्यप्रदेश वधु, मगध वधु, पाटल वधु, उत्कलवधू इत्यादि। देव ने रीति को "काव्य द्वार" माना है तथा रस से उसे जोड़ दियां है।

ताते पहले बरनिए काव्य द्वार रसरीति।

रीतिबद्ध कवि देव विशुद्ध रसवादी थे और विश्वनाथाचार्य की रसवादी परंपरा में मुख्य स्थान रखते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि देव रस की चर्चा करने पर भी ध्वनि पर मौन रहते हैं। अलंकार पर बोलते हैं, काव्य गुण पर विचार करते हैं पर ध्वनि पर नहीं। उन्हें शब्द शक्तियों का बहुत अच्छा ज्ञान है तथा के अभिधा को उत्तम काव्य मानते हैं तथा व्यंजना को रस-कुटिल अधम कहते हैं—

अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लच्छना हीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत प्रवीन।।

निष्कर्ष यह कि हिंदी के रीति-साहित्य में रस-सिद्धांत का इतना समर्थ आचार्य दूसरा अन्यत्र नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि इनके काव्यशास्त्रीय विवेचन में बहुत अधिक विस्तार है, परंतु गहराई बहुत कम है। कुछ बातें इन्होंने नई भी कहीं हैं, जैसे "छल" को 34वां संचारी भाव माना है। गुणों की संख्या 12 कर दी है। नायिकाओं की संख्या 384 तक पहुंचाई है। अभिधा को उत्तम और व्यंजना को अधम माना है। 33 वर्षों का एक नया छंद देव घनाक्षरी के नाम से प्रचलित किया है तथा सवैये के चार नवीन भेद भी किए हैं। जहाँ तक काव्यशास्त्रीय योगदान का संबंध है, देव के उपर्युक्त निष्कयों को बहुत कम महत्व दिया जाता है। पिंगल के क्षेत्र में देव की मौलिकता अवश्य ही सराहनीय है।

14.5.2 देव की काव्यगत विशेषताएँ

हम देव की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करने जा रहे हैं। इसके अंतर्गत वर्ण्य विषय, भाव पक्ष और संरचना शिल्प के बारे में हम आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराएंगे।

वर्ण्य विषय

देव ने अपनी प्रथम रचना "भावविलास" 16 वर्ष की अवस्था में लिखी थी। इस प्रकार इनका लेखन कार्य अनुमानतः सात-आठ दशक तक चलता रहा। जनश्रुति के अनुसार इनके कुल ग्रंथों की संख्या किसी ने 72 और किसी ने 52 बताई है। यह संख्या विश्वसनीय न भी हो परंतु यह मानना होगा कि देव का रचना-संसार परिमाण और विविधता दोनों दृष्टियों से रीतिकाल के अन्य कवियों की अपेक्षा विशाल एवं व्यापक तो है ही। देव की केंद्रीय संवेदना श्रृंगार प्रधान है। एक दो ग्रंथों को छोड़कर उनके सभी ग्रंथों में श्रृंगार रस का विषय विस्तार है।

निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनंत
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस विवस न पावत अंत।

अथवा

भूलि कहत नवरस सुकवि सकल मूल सिंगार
तेहि उछाह निर्वेद्य लै, वीर, शांत, संचार। (भवानी विलास)

श्रृंगार का प्रतिपादन देव के लिए मात्र सिद्धांत प्रतिपादन ही नहीं था बल्कि वह काव्यनुभूति का सहज अंग था। मुक्ति और भोग का मूल है- काम-भावना की तृप्ति। काम पूर्ति का आधार है- रमणी से रमण—

युक्ति सराही मुक्ति हित भक्ति मुक्ति को धाम।
युक्ति, मुक्ति और भुक्ति को मूल सु कहिए काम।।

बिना काम पूरन भये लगै परम पद क्षुद्र।
रमनी राका- ससि मुखी पूरे काम- समुद्र। (रस विलास)

तीनों लोकों में काम की महिमा है इस काम की महिमा से भगवान भी अभिभूत हैं। पर देव का यह मत भी साफ है कि प्रेम के बिना श्रृंगार असार है। **"प्रेम हीन त्रिया वेश्या है श्रृंगाराभास"** इस भावना के कारण वे स्वकीया के प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानते हैं। उनके विचार मे परकीया का प्रेम तीव्र होने पर भी श्रेयस्कर नहीं है। कहना होगा कि प्रेम के प्रति देव का दृष्टिकोण विकृत श्रृंगारिकता के रीतिकालीन बोध से युक्त नहीं था।

सब सुखदायक नायिका-नायक जुगल अनूप।
राधा हरि आधार जस रस सिंगार स्वरूप।।

इन्होंने श्रृंगार, भक्ति, दरबारी संस्कृति, काव्य, नाटक, रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद आदि अनेक विषयों को अपनी लेखन की परिधि में ले लिया है। इसमें संदेह नहीं कि इनकी रचनाओं में कुछ विषयों की पुनरावृत्ति यानी दोहराव भी हो गया है। "भावविलास" में निरूपित अलंकार "शब्द-रसायन" में भी समाविष्ट हो गये हैं। नायक-नायिका भेद तो तीन-चार ग्रंथों में थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ एक समान ही निरूपित हो गया है। "सुख सागर तरंग" में तो बहुत सी सामग्री अन्य ग्रंथों से संग्रहीत की गई है।

देव के वर्ण्य विषयों में शृंगार वर्णन को सर्वाधिक वरीयता मिली है। श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग के सभी अवयवों के सुंदर उदाहरण इनकी कविता में यहाँ वहाँ बिखरे हुए हैं। संयोग के अंतर्गत देव ने विनोद, विहार, रूप-चित्रण आदि सभी प्रसंगों को लिया है। नोक-झोंक, हास-परिहास, चुहल, होली खेलना, झूला झूलना इत्यादि सभी विलास-क्रियाएं चित्रित हुई हैं। उदाहरण स्वरूप संयोग और वियोग के पदों को देखें।

संयोग श्रृंगार

नायिका द्विरागमन अर्थात् गौने की तैयारी कर रही है। घर की बड़ी स्त्रियाँ उसका श्रृंगार कर रही हैं। सखी-सहेलियाँ ससुराल की सुख सुविधाएँ बताकर उसे शिक्षा दे रही हैं जिससे वह अपने "मनभावन" अर्थात् पति को प्रसन्न रखे। "मनभावन" सुनते ही किस प्रकार नायिका पुलकित हो उठती है इसका वर्णन है:

गौने के चार चली दूलही, गुरू लोगन भूषण भेष बनाए
सील सयान सखीन सिखायो, बड़े सुख सासुरे हू के सुनाये
बोलियो बोल सदा हंसी कोमल, जे मन भावन के के मन भाए
यों सुनि ओछे उरोजन पै, अनुराग के अंकुर से उठि आए

वियोग श्रृंगार

रीतिकालीन कवियों की नायिकाएँ वियोग में सुखकर कांटा हो जाती हैं। बिहारी की नायिका हवा चलने से छह सात हाथ आगे-पीछे डोलने लगती है। इस प्रकार के अनेक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलते हैं। देव का वियोग चित्र जो हम देने जा रहे हैं, यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण है परंतु इतना अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार के चित्र प्रायः रीतिकाल की मानसिकता के अनुकूल ही हैं। देव की नायिका की कलाई इतनी पतली हो गई है कि कलाई में पहनी हुई चूड़ियाँ "काग" उड़ाते समय निकालकर कौचे के गले में जा गिरती हैं-

ताल बिना बिरहाकुल बाल वियोग की ज्वाल भई झूरि झूरि
पौन औ पानी सो प्रेम कहानी सौं पान ज्यौं प्राननि राखत हरी
"देव जू" आजु मिलाप की औधि सो बीतत देख विसेरख बिसूरी
हाथ उठायो उडायवे को उड़ि काग गरे गिरी चारिक चूरी।

प्रकृति चित्रण

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण प्रायः नहीं किया है। इसका चित्रण विशेषतः उद्दीपन के रूप में हुआ है। देव का एक पद पढ़िए।

झहरि झहरि झीनी बूंदनि परत मानो
घहरि घहरि घटा छेरी हैं गगन में
आनि कह्यों स्याम मोसों "चलौं झूलिबे कों" आज,
फूली न समानी, भई ऐसी हौं मगन में।।

वर्षा की फुहार जमीन पर पड़ रही है, आकाश में बादल घिरे आये हैं। इसी समय कृष्ण आते हैं और नायिका को झूला झूलने का आमंत्रण देते हैं। नायिका फूली नहीं समाती, उसे अपनी सुध नहीं रहती है

देव की कविता में दूसरा स्थान भक्ति, दर्शन और नीति को मिला है। "देव माया प्रपंच" और "देव शतक" दाशनिक ग्रंथ हैं। एक "नीतिशतक" नाम का ग्रंथ भी देव के नाम के साथ जोड़ा जाता है परंतु यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। भक्ति और नीति संबंधी निम्नलिखित पदों को पढ़ने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

भक्ति

इससे पूर्व आप देव कवि के संयोग और वियोग एवं प्रकृति पर आधारित पदों का अध्ययन कर चुके हैं। रीतिकालीन कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो श्रृंगार ही था परंतु वृद्धावस्था प्राप्त करने पर वे कभी-कभार भक्ति काव्य भी रच डालते थे। यद्यपि इनकी भक्ति राधा-कृष्ण के स्मरण का बहाना ही कही जा सकती है। देव भी इसी प्रवाह में बहे थे।

चाहे सुमेरू को छारि करै
अरू छार को चाहे सुमेरू बनावै
चाहे तो रंक को राव करे
चाहे राव को द्वार ही द्वार फिरावे
रीति यही करुणाकर की कवि
देव कहे बिनती मोहि भावे
चीटि के पांव में बांधि के हाथी
वह चाहे समुद्र को पार लगावै।।

नीति

रीतिकाल में दरबारी काव्य लिखने की भी एक विशिष्ट परंपरा रही है। देव ने भी अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में बहुत कुछ लिखा है परंतु जिस प्रकार वृद्धावस्था में पहुंचकर वह श्रृंगार के स्थान पर भक्ति के पद रचने लगे थे, उसी प्रकार गुणगान से भी उन्होंने अपनी कलम लींच ली थी। उनको विश्वास हो गया था कि स्वार्थवश अर्थलोलुप होकर आश्रयदाताओं का गुणगान करना एक सच्चे कवि को शोभा नहीं देता। इस संबंध में उनका एक प्रसिद्ध सवैया इस प्रकार है-

जाके न काम ने क्रोध विरोध
न लोभ छुबे नहीं छोभ को छाहौं
मोह न जाही रहे जग जाहिर
मोल जवाहिर को अति चाहौं
यानी पुनीत ज्यों देवधुनी
रस आरद सारद के गुन गाहौं
सील ससि सविता छविता
कविताहि रचे कवि ताहि सराहौं

14.5.3 भाव पक्ष

कविता में दो पक्ष होते हैं। कवि जो कहता है उसे भाव, वस्तु या विषय कहते हैं तथा जिस ढंग से कहता है उसे शैली या कला कहते हैं। देव प्रधानतः श्रृंगार रस के कवि हैं, अतः उनके भावपक्ष पर विचार करते समय हमारा ध्यान सर्वप्रथम उनके श्रृंगार-वर्णन की ओर ही जाता है। देव ने श्रृंगार को रसराज मानते हुए उसी में सभी रसों का विलय माना है। उन्होंने स्पष्ट कहा हैः **नवरस मुख्य श्रृंगार जहं उपजत विनसत सकल रस।**

रीतिकालीन कवियों ने जहाँ बारह मासे और षट्ऋतू वर्णन में विशेष उत्साह दिखाया है वहाँ देव इससे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने अष्टयाम लिखकर आठ पहरों और चौसठ घड़ियों के विलासपूर्ण चित्र खींचे हैं।

देव के श्रृंगार वर्णन की सबसे बड़ी एक विशेषता यह है कि उन्होंने अन्य कवियों की भाति परकीया के श्रृंगार को श्रृंगार नहीं माना। उन्होंने केवल स्वकीया प्रेम को ही शुद्ध श्रृंगार के अंतर्गत लिया है। उदाहरण स्वरूप इस पद को ध्यान से पढ़ें:

गौने के चार चली दुलही, गुरू लोगन भूषण भेष बनाए
सील सयान सखीन सिखायो, बड़े सुख सासुरे हूं के सुनाये
बोलियो बोल सदा हंसी कोमल, जे मन भावन के मन भाये
यों सुनि ओछे उरोजन पै, अनुराग के अंकुर से उठि आए।

यहाँ "मनभावन" पति के लिए आया है, न कि प्रेमी के लिए। अतः यह स्वकीया प्रेम का उदाहरण है। रीतिकालीन कवियों ने प्रायः वासनाजन्य प्रेम को ही प्रश्रय दिया है जबकि देव ने प्रेम को अमृत से भी अधिक आकर्षक तथा सुख-दुःख में एक-सा रहने वाला

माना है। उनके मत में संसार का सार ववव्य, काव्य का सार रस, रस का सार श्रृंगार और श्रृंगार का सार प्रेम है। रीतिकालीन के शृंगार, कवियों के आलंबन प्रायः राधा-कृष्ण ही रहे हैं। परंतु देवकवि इस लीक से बंधकर नहीं चले। इन्होंने राधा-कृष्ण के साथ राम, सीता, शिव-पार्वती, दुर्गा के प्रति भी अपने भक्ति के सुमन को समर्पित किया है। इस दृष्टि से तुलसी की तरह देव भी समन्वयवादियों की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप :

कवि "देव" हिये सियरानी सबै, सियरानी को देखि सुहाग सनी।

रीतिकालीन कवि प्रायः दरबारी मनोवृत्ति के कवि थे, इसलिए प्राकृक्तिक सौंदर्य के प्रति उनका आकर्षण प्रायः मंद ही रहा है। इसीलिए रीतिकाल में स्वतंत्र प्रकृक्ति-चित्रण प्रायः बहुत कम मात्रा में मिलता है। कवि देव ने निश्चय ही इस दिशा में पर्याप्त योगदान किया है। चित्रकारिता की अद्भुत क्षमता के कारण उनके प्रकृति चित्रण पर्याप्त सजीव एवं यथार्थ हैं। उनके शरद कौमुदी चित्र तथा पावन चित्र विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। देव के भाव पक्ष में रूप-सौंदर्य की विविधता और गहनता के चित्र मिलते हैं। सौंदर्य का अनिर्वचनीय तत्व उन्हें मथता है। वस्तु और भाव का सामंजस्य ही सौंदर्य है। उपमानों-प्रतीकों से. देव इन चित्रों को सामने लाते हैं-

ललित लिलार श्रम झलक अलक भार, मग में धरत पग जावक धुरो परै।
देव मनि नुपुर पुदुम-पद दू पर है, भूपर अनूप रंग रूप निचुरो परै।

यहाँ नायिका का रूप ही कली की रोशनी बन गया है:

डगर मगर बगराकति अगर अंग
जगर मगर आयु आवति दिवारी-सी।

दृश्य बिम्बों की रमणीयता और प्रतीकों की भाव रूप की व्यंजना में देव को कमाल हासिल है।

संग-संग डोलत सखीन के उमंग भरी,
अंग-अंग उठत तरंग स्याम-रंग की।

निष्कर्षतः आचार्य देव की अपेक्षा कवि देव का पलड़ा पर्याप्त भारी बैठता है। कुछ आलोचकों ने अवश्य ही उनके अश्लील चित्रों को लेकर उनकी कठोर आलोचना की है। देवयुगीन समाज सुरासुंदरी प्रधान समाज था, अतः कवि के लिए उस समाज से तटस्थ रहना संभव नहीं था। वे काजल की कोठारी में घुसे थे, अतः उन पर कालिख लगनी स्वाभाविक ही थी।

14.5.4 संरचना शिल्प

देव काव्य की भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है। भाषा के सौष्ठव, मार्दव एवं अलंकरण पर देव ने विशेष ध्यान दिया है। देव की काव्य भाषा की प्रमुख विशेषता है- चित्र-योजना। वस्तुतः अनुभूति को आकार देने का माध्यम चित्र ही है। देव श्रृंगारिक अनुभूतियों को मधुर चित्रों में अंकित करते हैं-

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलाई देव, श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छुटि अलकनि, अलकनि जलकननि की, बिना बेदी बदन बदन शोभा विकसी।।

इस चित्र में पीले रंग की साड़ी का भीगकर नायिका के अंगों से लिपट जाना और उसी रंग में मिल जाना, शरीर से वस्त्र के चिपक जाने के कारण उरोजों का उभरना, बिखरी अलकों में जलकणों का बिखरना, माथे के सिंदूर बिंदी का धूल जाने के कारण सहज शोभा का निखर आना सभी संकेत मधुर चित्र बनाते हैं। एक पूरी नारी रूप-सौंदर्य की योजना के क्षेत्र, अनुभावों-विभावों से व्यक्त कर देते हैं। देव के चित्रों में गति का वेग रहता है इसलिए चित्रों की प्रभावान्विति बढ़ जाती है- नायिका की हड़बड़ी का एक सजीव चित्र देखिए:

भूषननि भूलि पैन्हे उलटे टुकूल देव, खले भज मन प्रतिकल विछि बैंक में।
चूल्हें चड़े छांडे, उफनात दूध भांड़े, उन मत छांडे अंक, पति छांड परजंक में।।

रीतिकाल कला का समृद्धि का युग था और चित्रों की रंगकला ललित कलाओं के प्रभाव में वृद्धि पर थी- देव में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। ब्रज भाषा की वर्णयोजना में निहित कारीगारी देव के पास प्रचुर मात्रा में है- रंग सभी चटकीले हैं- **"प्रात पयोदन ज्यों अरुणाई दिखाई गई तरुणाई प्रथीनै।"**

देव ने विषय के अनुसार ही शब्द चयन किया है परंतु शब्य-विन्यास में कहीं-कहीं व्याकरण की त्रुटियाँ भी दिखाई दे जाती हैं। तुकान्त और अनुप्रास के मोह में पड़कर इन्होंने कई स्थलों पर शब्दों और वाक्यों को तोड़-मोड़ दिया है। कारक चिन्हों को उड़ा देने की प्रवृत्ति

देव के काव्य में चरम सीमा पर है। लिंग-दोष और वचन-दोष भी पर्याप्त मिल जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल देव की भाषा के संबंध में लिखते हैं "कभी-कभी वे कुछ बड़े और पेचीदे मजमून का हौसला बांधते थे पर अनुप्रास के आडंबर की रुचि बीच ही में उसका अंगभंग करके सारे पथ को कीचड़ में फंसा छकड़ा बना बना देती थी।" शुक्ल जी के इस कथन से स्पष्ट है यह। सब कुछ वह काव्य में सौंदर्य वृद्धि के लिए ही करते थे। जहाँ-जहाँ वह अक्षर-मैत्री और अनावश्यक शब्द-चमत्कार दिखाने के लोभ में नहीं पड़े वहाँ उनकी कविता अत्यंत सरल और हृदयग्राही बन गई है। देव का शब्द-भंडार अत्यंत व्यापक एवं विपुल है। उन्होंने मतिराम, बिहारी, पद्माकर आदि की अपेक्षा तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। इन शब्दों को कवि ने बजभाषा की प्रति के अनुकूल बनाने का प्रयास भी किया है। जैसे दीप्ति को दीपति और स्फूर्ति को स्फूर्यत लिखना। देव में अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। अरबी शब्द फारसी की अपेक्षा अधिक है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग में भी देव पयांप्त उदार रहे हैं। देव के मुहावरे इनके कथ्य का सहज अंग बन कर प्रमुक्त हुए हैं। इनके द्वारा कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है। देव यद्यपि अलंकारवादी न होकर रसवादी थे परंतु उन्होंने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। स्वभावोक्ति और उपमा उनके सर्वप्रिय अलंकार है। स्वभावोक्ति के उदाहरण उनके ग्रंथों में भरे पड़े हैं। उपमा अलंकार के प्रयोग में तो उन्होंने मूर्त के स्थान पर अमूर्त उपमान भी लिए हैं। नायिका की कटि के संबंध में लिखते हैं- **जानि न परत अति सूक्ष्म ज्यों देवगति।** विभावना अलंकार का भी उनके काव्य में सुंदर प्रयोग हुआ है जैसे **ये अखियां बिन काजर कारी**। अनुप्रास के क्षेत्र में तो देव की कला का वैभव विशेष दर्शनीय है। वृत्यानुप्रयास उन्हें अत्यंत प्रिय है। कभी-कभी तो पूरे का पूरा छंद एक ही प्रकार की आवृति से मंडित दिखाई देता है। अभिव्यक्ति को सबल सक्षम बनाने का माध्यम है अप्रस्तुत विधान। अर्थात् प्रस्तुत की वृद्धि के लिए अप्रस्तुत का उपयोग। यह अप्रस्तुत विधान साम्य पर आधारित राहता है। रीतिकाल में रूप एवं प्रभाव साम्य को व्यक्त करने के लिए प्रायः रूढ़ उपमान गढ़ लिए गए थे। उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि देव का भाषा पर अधिकार था और कल्पना के सर्जनात्मक प्रयोग से वे उसमें विग्धता पैदा कर सकते थे। दरबारी कविता के प्रसिद्ध छंद सवैया और घनाक्षरी में देव को दक्षता प्राप्त है।

14.6 पद्माकर का काव्य वैशिष्ट्य

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम कवियों में से एक कवि हैं। वे तेलंग ब्राहमण थे। अनुमान है कि इनका जन्म 1753 ई. में मध्यप्रदेश के सागर नामक नगर में हुआ था। किंतु स्वयं पद्माकर ने "राम रसायन" तथा "जगद्विनोद" में अपना जन्म स्थान का नाम मथुरा कहा है। किंतु सागर डिस्ट्रिक्ट गजेटिर तथा जार्ज ग्रियर्सन के कथनों के आधार पर बहुत से विद्वान सागर (मध्य प्रदेश) को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं। पद्माकर ने संस्कृत काव्यशास्त्र की विधिवत शिक्षा ली थी। देव कवि की तरह पद्द्माकर भी अनेक राजाओं, राजा-रईसों तथा नवाबों के आश्रय में रहे। देव को अपने आश्रयदाताओं से बहुत 'कम लाभ होता था और वह अक्सर धनाभाव से पीड़ित रहते थे, परंतु इसके विपरीत पद्माकर को अपने आश्रयदाताओं से यश और मान के अतिरिक्त प्रभूत धनराशि भी मिलती रहती थी। महाराजा रघुनाथ राव से इन्हें बड़ी सम्पत्ति मिली थी। पद्माकर ने स्वयं लिखा है कि **"संपत्ति सुमेर की कुबेर की जु पाये ताहि तुरंत लुटायत विलंब उर धारे ना।"**

महाराजा जगत सिंह को पद्माकर ने अपना परिचय स्वयं दिया है।

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंड बासी कवि,
सृजन प्रकाशी पद्माकर सुजामा हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भाति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुनग्रामा हौं।।
हय, रथ, पालकी, गर्वत, गृह, ग्राम चारू,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं।

जगतसिंह ने पद्माकर की कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर उन्हें मालामाल कर दिया था। पर सवाई राजा जगतसिंह के स्वर्गवास हो जाने के बाद वे जयपुर छोड़कर ग्वालियर नरेश दौलत राब सिंधिया के दरबार में चले गए और प्रशंसा में लिखा

छीनगढ़ बंबई सुमंद कर मंदरास, बंदर को बंद कर बंदर बसा वैगी।

कहै पद्माकर कय के कासमीर हूँ को पिंजर सौ घेरि के कालिजर छोड़ा वैगौ।
बांका नृप दौलत अलीजा महराज कवौ, साजि दल पकरि फिरंगिन को पा वैगो।
दिल्ली दरपटूट पटना है को झपट्टकर, कबहूँ कै लता कलकत्ता को उड़ावैगो।।

यहीं पर पद्माकर ने महाराजा के नाम से "आलीजाह प्रकाश" नामक एक साहित्यशास्त्र पर ग्रंथ लिखा। यहीं पर संस्कृत हितोपदेश का हिंदी भाषा में अनुवाद किया। यहीं एक सोनारिन स्त्री के प्रेम में भी पागल रहे और अंत में कुष्ट रोग हो जाने पर गंगा किनारे बस गए। इसी मनःस्थिति में "राम रसायन" तथा "प्रबोध पचासा" की रचना की। कानपुर में "गंगालहरी" का सृजन किया। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने बहुत धन-संपत्ति इकट्ठी कर ली थी और गंगा तट पर बास करने की इच्छा से कानपुरं चले गये थे, जहाँ 80 वर्ष की आयु में 1833 ई. में वह परलोक सिधार गये। इनके रचित सात मौलिक ग्रंथ मिलते हैं- हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, प्रतापसिंह विरुदावली, कलिपच्चीसी और गंगा लहरी। "हिम्मत बहादुर विरुदावली" वीर रस प्रधान ग्रंथ है जो हिम्मत बहादुर के नाम पर रचित हुआ। "पद्माभरण" दोहों में रचित अलंकार ग्रंथ हैं। "जगद्विनोद" जयपुर नरेश महाराज जगतसिंह के नाम पर लिखा गया रीतिग्रंथ है जो काव्य रमिकों के द्वारा बड़े चाव में पढ़ा जाता है। यह श्रृंगार रस की एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती थी। "प्रबोध पचासा" भक्ति और वैराग्यपूर्ण रचनाओं का संकलन है जो उनके जीवन के अंतिम प्रहर की और अंतिम रचना है। यह रचना कवि के गंगा मैया के प्रति अर्पित किये गये भाव-मुमनों की एक सुंदर पुष्पाजंलि है जिसकी रचना कविताओं में हुई है। यह पद्माकर भट्ट के जीवन की अंतिम कृति है।

14.6.1 पद्माकर का आचार्यत्व

पद्माकर रीतिकाल के अतिम चरण के आचार्य कवि थे। नवरसों का सफल वर्णन करने के कारण वे आचार्य कवियों में प्रसिद्ध हुए थे। "जगद्विनोद" इनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें नायक-नायिका भेद का सरस वर्णन मिलता है। लक्षण सामान्यतः दोहों में हैं और उदाहरण कवित्त, सवैया इत्यादि में दिया गया हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं ब्रजभाषा के गद्य का भी आश्रय लिया गया है परंतु लक्षणों में वह स्पष्टता एवं सुक्ष्मता नहीं आ पाई हैं जो प्रायः संस्कृत आचार्यों के ग्रंथों में मिलती है।

पद्माकर का दूसरा रीति ग्रंथ "पद्माभरण" है, जिसमें अलंकारों का निरूपण है। यह ग्रंथ दोहा-चौपाई में लिखा गया है। इसकी प्रेरणा इन्हें वैरीसाल के "भाषाभरण" में मिली थी। इस ग्रंथ में केवल अर्थालंकार ही निरूपित हुए हैं जिनका आधार संस्कृत का "कुवलयानंद" पंथ है। इनके उदाहरण पर्याप्त कवित्वपूर्ण हैं जिसमे इस ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गई है परंत इनमें आचार्यत्व की विशेष प्रतिभा का अभाव ही रहा है। वे मुख्य रूप में कवि थे और उनका आचार्यत्व मात्र परंपरा पालन ही कहा जा सकता है। वैसे भी रीतिकाल के कवियों में आचार्य बनने की होड़ लगी रहती थी किन्तु वे मूलतः कवि ही होते थे।

14.6.2 पद्माकर की काव्यगत विशेषताएँ

इस उपभाग में पद्माकर की काव्यगत विशेषताओं को समझाया जा रहा है। इसके अंतर्गत हम कविता के विषय, भावपक्ष और संरचना शिल्प पर विचार करेंगे।

वर्ण्य विषय

पद्माकर के काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है- श्रृंगार। मूलतः वे मौंदर्य के कवि हैं। उनके सौंदर्य अंकन में नायिकाओं और ऋतुओं के मोहक चित्र हैं। नुतनता तथा शास्त्रजड़ना दोनों की ओर उनका ध्यान न था। वे तो सौंदर्यमयी सृष्टि के रूप-उपासक कवि हैं। नारी शरीर के सौंदर्य अंकन में उन्हें विशेष सफलता मिली है और नारी में ही उनका मन रमा है। भक्ति और वीर रस के भी काव्य पद्माकर के यहाँ में मिलते हैं किन्तु यह इनका मुख्य क्षेत्र नहीं है। पद्माकर रीतिबद्ध कवि हैं, उनकी कविता लक्षण उदाहरण के रूप में सामने आयी है। पर उनके दो ग्रंथ जगद्विलास और पद्माभरण ही लक्षण ग्रंथ है। अन्य ग्रंथों में नायक-नायिका वर्णन, वियोग वर्णन, ऋतु वर्णन होली वर्णन और हिंडोला वर्णन है। पद्माकर ने संयोग भंगार को अपने काव्य का विषय बनाया है। इसके अंतर्गत नायक-नायिका के सौंदर्य तथा मिलन का चित्रण हुआ है। नायिका के सौंदर्य चित्रण का एक उदाहरण देखिए

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंगरंग
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के

नायिका की आँखें बड़ी सुंदर और सुनहरे रंग वाली है, कामदेव का प्रभाव छाया हुआ है। अनंग का अर्थ है कामदेव। सारे अंग में परिमल (चंदन की सुगंध) की लहर फैली हुई है। अर्थात् शरीर से चंदन की सुगंध आ रही है। सखि नायिका को सीख देती हैं कि स्नेह

या अनुराग के फेर में पड़ने से लज्जा (जो स्त्री या सौंदर्य है) भाग जाती है और पुष्प रूपी सुंदर मन अनुराग की नदी में बह जाता है। उस नदी की भवरों में नेत्र उलझ जाते हैं। अतः तुम इस नदी में पैर मत डालना।

बहति लाज बूडत सुमन भ्रमत नैन तिहि ठांउ।
नेह नदी की धार में तू न दीजिये पाँव।।

पर नायक और नायिका का मिलन होता है और उनके बीच में प्रेम का संचार होता है। मिलन के सुंदर दृश्यों के चित्रण में पद्माकर के होली वर्णन संबंधी पदों का विशेष स्थान है-

या अनुराग की फाग तरयों जहँ रागती राग किसोर किसोरी

इस प्रेममय होली को देखो जहाँ किशोर और किशोरी यानी नायक और नायिका विभिन्न रागों में मस्त हैं। अर्थात् मिलन का समय है और नायक नायिका प्रेम के रंग से सराबोर हैं। इस मिलन के बाद नायक-नायिका एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और उन्हें वर्षा में भी जलन महसूस होती है।

बरसत मेह नेह सरसत अंग अंग
झरसत देह जैसे जरत जवासो है।
कहे "पद्माकर" कालिंदी के कदंबन पै
मधुबन कीन्हों आइ महत मवासो है।
ऊधौ यह ऊधम जताइ दीजौ मोहन कों
ब्रज को सुबासो भयो आगेन अवासो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो
काहू बिथित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है।।

प्रशस्ति

पद्माकर ने राजा या आश्रयदाता की प्रशस्ति में भी काव्य रचे हैं। "हिम्मत विरुदावली" इनका प्रमुख प्रशस्ति काव्य है। इसमें रणक्षेत्र, रण प्रस्थान और युद्ध का परंपरागत वर्णन हुआ है। रीतिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में प्रभूत काव्य रचना की है। पद्माकर ने निम्नलिखित पद सागर नरेश रघुनाथ राव की प्रशंसा में लिखा था जिस पर प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें एक लाख मोहरें प्रदान की थीं। इसलिए यह "लाखिया" कवित्त के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। रघुनाथ राव इतने दानवीर थे कि वे सर्वस्व दान करने से भी नहीं चूकते थे। हाथी-घोड़ों की तो बात ही क्या। कहीं हाथी के भ्रम में गणेश जी को भी दान में न दे दें इसी डर से पार्वती अपने बेटे को गोद से नहीं उतारतीं—

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहे पद्माकर सुहेममय हाथिन के,
हलके हजारन के वितर विचारै ना।
गजगज बकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूं काहे देश हारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रहीं,
गिरि ते गरे तें निज गोद तें उतारे ना।।

भक्ति

पद्माकर ने भी अधिकतर रीतिकालीन कवियों की तरह उम्र के बीतते बीतते भक्ति के पद लिखे। उम्र के साथ शृंगार से इन्हें विरक्ति होने लगी। देव की तरह पद्माकर भी अपने जीवन की संध्या में भक्तिपरक पदों की रचना में विशेष रुचि लेने लगे थे। प्रभु की अनंत शक्ति पर उनको अटल विश्वास हो गया था। रघुनाथ की शरण के बिना मनुष्य के लिये त्राण का कोई अन्य उपाय नहीं है। राम की भक्ति में कवि की निश्छल भक्ति का सुंदर उदहारण देखिए—

या जगजीवन को है यहै फल

जो छल छाडि भजै रघुराई।
सोधि के संत महंत हूँ को
पद्माकर बात यहै ठहराई
हये रहि होनि प्रयास बिना
जनि होनि न हवै सकै कोटि उपाई
जो विधि भाग में लीकि लिखी
न बढ़ाई बढ़े न घटे न घटाई।।

ऋतूवर्णन

रीतिकालीन कवि ऋतुवर्णन में विशेष रुचि लेते रहे हैं। यद्यपि इन कवियों का ऋतुवर्णन प्रायः उद्दीपन रूप में ही हुआ है परंतु कहीं-कहीं इन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र चित्र भी उतारे हैं। पद्माकर का निम्नलिखित पद वसंत वर्णन का सुंदर उदाहरण है:

कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में पौन हू में,
पानन में पिकन पलासन पगंत है।।
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है।।

14.6.3 भाव पक्ष

पद्माकर आचार्य की अपेक्षा कवि रूप में अधिक प्रख्यात हैं। वे उदात्त एवं स्वच्छंद कल्पना के मर्मज्ञ हैं। इनका कवि मन आनंद और उल्लास के वर्णन प्रसंगों में खूब रमा है। पद्माकर की कल्पना इतनी मधुर एवं स्वाभाविक है कि पाठक को बरबस रसोविभोर कर देती है। अब इसी पद में कवि कल्पना की कैसी उड़ान भरता है:

बहति लाज बूड़त सुमन भ्रमत नैन तिहि ठाँउ।

प्रेम रूपी नदी की धार में पैर डालने का परिणाम यह होता है कि लज्जा बह जाती है, मन रूपी फूल डूबता जाता है और आंखें उस नदी के भंवर में फंस जाती हैं। कवि यहाँ केवल यह कहना चाहता है कि प्रेम करने के बाद तन और मन की सुध नहीं रहती। पर इसी बात को उसने एक चित्र के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। पद्माकर के इसी गुण के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं "ऐसा सजीव मूर्ति-विधान करने बाली कल्पना बिहारी को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती। पद्माकर की विशेषता यह है कि इन्होंने अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह दूर की कौड़ी लाने का प्रयास नहीं किया। इन्होंने यथासंभव अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से अपने काव्य को दूर रखा। पद्माकर की कल्पना की शक्ति निम्नलिखित पंक्तियो से लगाया जा सकता है:

पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो
काहू विधित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है।

कृष्ण के वियोग में जल रही नायिकाओं की हालत गंभीर है। उनकी इस दशा पर कोई तरस नहीं खा रहा है। यहाँ तक कि पापी पपीहा भी अब स्वाति की बूंद के लिए रट नहीं लगा रहा है बल्कि यह व्यथित और वियोग से पीड़ित नायिकाओं के प्राण का प्यासा हो गया है। पपीहा की "पी कहाँ-पी कहाँ" की रट नायिकाओं के वियोग को और बढ़ा रही है; ऐसा लगता है मानो वह वियोग से पीड़ित नायिकाओं का प्राण हर कर ही रहेगा। नायिका की यह विरह दशा कितनी मर्मस्पर्शी है इसका अनुमान सिर्फ सहृदय ही लगा सकता हैं। इस प्रकार के भावुक चित्रण से पद्माकर का काव्य भरा पड़ा है। पद्माकर वर्णन की विदग्धता, रसिकता और अनुभूति की सघनता के कारण रीतिकाल के लोकप्रिय कवियों में स्थान रखते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत ऊँचा स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। इनकी रचना की रमणीयता ही इस सर्वप्रियता का एक मात्र कारण है। रीतिकाल की कविता इनकी और प्रताप साहि की वाणी द्वारा अपने पूर्ण

उत्कर्ष को पहुंचकर फिर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार से ये अपनी परंपरा के परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अतिम भी। देश में जैसा इनका नाम गूंजा वैसा फिर आगे चलकर किसी और कवि का नहीं"। दरबारी काव्य-परंपरा की चमत्कार प्रियता को पद्माकर ने शिखर पर पहुंचा दिया और अंत में वे "कविराज शिरोमणि" की पदवी पाकर ही रहे। कल्पना और अभिव्यक्तिं शक्ति दोनों के संयोग से उनका काव्य प्रभावशाली बन गया है।

14.6.4 संरचना शिल्प

पद्माकर की भाषा सरस, कोमल एवं मंजी हुई साहित्यिक बज का सुंदर नमूना है। यह कवित्व के प्रायः सभी गुणों से ओतप्रोत है तथा पद्माकर की ख्याति का मुख्य आधार है। पद्माकर शब्दचयन में माहिर थे। अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह पद्माकर ने भी मधुर एवं कोमल शब्दों की लड़ियों सजाने में गहन रुचि का परिचय दिया है, परंतु इससे इनके भाव-सौंदर्य को क्षति नहीं पहुंची है। पद्माकर की काव्य भाषा में बिब योजना एक खास प्रकार की है। "इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव-भावपूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसी सजीव मूर्ति विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़ और किसी कवि में नहीं पाई जाती। ऐसी कल्पना के बिना भावुकता कुछ नहीं कर सकती। यह तो बह भीतर ही भीतर लीन हो जाती है अथवा असमर्थ पदावली के बीच व्यर्थ फड़फड़ाया करती है।" इस काव्य भाषा में प्रयोग-शक्ति की सजीवता इतनी अधिक है कि उक्तियों की मार्मिकता में काव्यात्मकता की सरसता मनोहारी है। कहीं तो वे श्रृंगार की रसधारा प्रवाहित कर देते हैं और कहीं वीररस से "अकड़ती और कड़कती" काव्य भाषा का कौशल दिखाते हैं। "सारांश यह कि उनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता तुलसीदास में दिखाई देती है।" यहाँ तुलसी तथा पद्माकर की काव्य भाषा की तुलना यह सिद्ध करती है कि दोनों में ही भाषा की अनेकरूपता से अनुभवों को व्यक्त करने की नई पद्धतियाँ प्रविधियाँ विकसित हुई हैं। कोमल भाव-स्थितियों का सृजनात्मक स्प्रंदन भी पद्माकर की भाषा का आकर्षण है। इसका बिंब विधान हृदय की सच्वी प्रेरणा का परिणाम दिखाई देता है। इन बिंबों में लक्षण व्यंजना के सही प्रयोग से नगी भाव दीप्ति निष्पन्न हुई है। वस्तुतः पद्माकर की कविता चमत्कारवादी अनुप्रास कला का सुंदर नमूना है। भाषा पर पद्माकर का व्यापक अधिकार था। भाषा की गति और प्रवाह की दृष्टि से इन्हें मतिराम के समकक्ष माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पद्माकर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं "भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है।" कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम मूर्ति रहा करती है, कहीं भाषा या रस की धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासों की टंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीर दर्प से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और और कहीं प्रशांत सरोबर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन की विधान्ति की छाया विखाती है। सारांश यह कि इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। यद्यपि प्रबंध रचना में पद्माकर को पर्याप्त सफलता नहीं मिली परंतु मुक्तक रचना में वह साहित्य क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल हो गये हैं जो मुख्यतः इनकी जादुई भाषा की ही करामात कही जा सकती है। वस्तुतः पद्माकर की काव्य भाषा बुदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। उर्दू भाषा के प्रयोग सहजता से आते हैं- जैसे- फराकत, साहिबी, चिरागन, जौहर, कलाम, गुल इत्यादि मूलतः यह फारसी मिश्रित उर्दू का रूप प्रस्तुत करती है। देशज शब्दों के प्रयोग में पद्माकर एकतम मुक्त है- इटावा की बोली और लोकभाषा की झंकार साफ सुनाई दे जाती है। लोकोक्ति मुहावरे तड़प के साथ आते हैं। हृदय तत्व के संयोग के कारण यह भाषा कोरे शब्दाडंबर की भाषा नहीं है, तरलता और नाद-सौंदर्य इसका गुण है। पद्माकर का प्रिय छंद कवित्त है। इसके अतिरिक्त इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया, छप्पय आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। लेकिन कवित्त ने इन्हें जितना लोकप्रिय बनाया, उतना अन्य छंदों ने नहीं।

14.7 देव और पद्माकर की कविता का मूल्यांकन

देव और पद्माकर रीतिबद्ध कवि हैं। रीतिबद्ध कवि आचार्य की भूमिका भी निभाता था और कवि की भी। पर अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति देव और पद्माकर भी श्रेष्ठ आचार्य सिद्ध नहीं हो सके। अतः उनके कवि व्यक्तित्व का मूल्यांकन समीचीन है। देव और पद्माकर दोनों कवियों ने श्रृंगार को अपना प्रमुख विषय बनाया। दोनों कवियों ने अपनी कविता में कल्पना और भावुकता का समावेश किया। कवित्व शक्ति और मौलिकता की दृष्टि से देव का अपना अलग महत्व है। पर जहाँ ये अलंकारों के मोह में पड़ते हैं वहाँ उनकी कविता कमजोर पड़ जाती है। भाषा के प्रवाह में भी इससे बाधा पड़ती है। पद्माकर की भाषा में विविधता है। कहीं इनकी भाषा स्निग्ध है, कहीं भाव और रस से परिपूर्ण है, कहीं अनुप्रास के झंकारों से ओतप्रोत है, कहीं इसमें वीर रस का ओज है तो कहीं बिल्कुल शांत और गंभीर। इस प्रकार की विविधता कम कवियों में पायी जाती है। इस इकाई में आपने देव और पद्माकर के काव्य का

अध्ययन किया। उनकी कविता की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की और संदर्भ सहित व्याख्या करना सीखा। हम आशा करते हैं कि आपने इन पक्षों पर पूरा ध्यान दिया होगा।

अब आप रीतिबद्ध कवि के रूप में देव और पद्माकर का मूल्यांकन करने में सक्षम हो गये हैं। आप इस तथ्य में भी परिचित हो गये हैं कि देव और पद्माकर क्रमशः 17वीं और 18वीं शती के रीतिकालीन कवि हैं, जिन्होंने रीतिबद्ध श्रृंगार ग्रंथ और राजाओं की स्तुति में ग्रंथ लिखे। इन्होंने भक्ति संबंधी रचनाएँ भी कीं। आप यह भी जान गये हैं कि देव और पद्माकर आचार्य और कवि दोनों थे। आचार्य के रूप में उन्होंने लक्षण-ग्रंथों की रचना की।

देव और पद्माकर के कवि रूप से भी आपका परिचय हुआ। आप इस तथ्य से भी अवगत हुए कि देव ने श्रृंगार वर्णन में स्वकीया प्रेम को ही श्रेष्ठ माना है। प्रेम उनके लिए वासना की वस्तु नहीं थी, बल्कि प्रेम को उन्होंने आदर्शात्मक ऊँचाइयों तक उठाया। देव ने अपने काव्य में अलंकारों का खूब प्रयोग किया। अनुप्रासों का सुंदर प्रयोग उनकी कविता में देखा जा सकता है। इनके कुछ पदों को पढ़ते समय आपने देव के इस काव्य कौशल पर गौर किया होगा।

पद्माकर ने श्रृंगार के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) का वर्णन किया है, पर उनका मन संयोग चित्रण में अधिक रमा है। नायक-नायिका के सौंदर्य चित्रण, ऋतु वर्णन, होली वर्णन, हिंडोला वर्णन आदि के रूप में पद्माकर ने संयोग श्रृंगार का चित्रण किया है। पद्माकर ने "हिम्मत विरुदावली" नाम से प्रशस्ति ग्रंथ भी लिखा है और उन्होंने भक्ति काव्य की भी रचना की है। पर उनकी कविता श्रृंगार वर्णन में अधिक सफल प्रतीत होती है। उनकी कल्पना शक्ति की तुलना बिहारी से की जाती है। उनके काव्य में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, पर यह अन्य रीतिकालीन कवियों के समान ने सिर-पैर का नहीं है। पद्माकर की भाषा सरल, सुंदर और प्रवाहमयी है। अनुप्रास का इन्होंने इतना मोहक प्रयोग किया है कि कविता में संगीत की धुन उत्पन्न हो गयी है। पद्माकर को कवित्त पर महारथ हासिल था। संपूर्ण रीतिकाल में इस छंद का प्रयोग इतनी सशक्तता के साथ कोई अन्य कवि नहीं कर सका।

देव और पद्माकर के काव्य की व्याख्या किस प्रकार करनी चाहिए, यह आपने सीख लिया है। अब आप इसके आधार पर देव और पद्माकर के काव्य की व्याख्या कर सकते हैं। आप यह जान गये हैं कि रीतिकालीन कवियों की रचना की व्याख्या में सबसे महत्वपूर्ण बात होती है, प्रसंग समझना। कवि एक छंद में पूरा दृश्य उपस्थित कर देता है। जब तक आपके सामने प्रसंग स्पष्ट नहीं होता है, आप इनकी व्याख्या करने में असमर्थ रहेंगे। अतः ध्यान देकर प्रसंग को समझने की कोशिश करें, इन कविताओं की व्याख्या आपके लिए काफी आसान हो जाएगी। कटिन शब्दों के लिए आप शब्दकोश का सहारा ले सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. देव के आचार्यत्व की समीक्षा कीजिए।
2. पद्माकर कवि अधिक हैं अथवा आचार्य; संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. देव की तीन रचनाओं के नाम लिखिए।
4. पद्माकर के तीन रचनाओं के नाम लिखिए।
5. देव और पद्माकर की कविताओं में साम्यता के बिन्दुओं की चर्चा कीजिए।

14.7 सारांश

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आपने देव और पद्माकर की कविताओं की पाठ, व्याख्या और उनका वैशिष्ट्य समझने के साथ साथ रीतिकाल में उनकी उपस्थिति को भी समझ लिया है। देव और पद्माकर दोनों रीतिकाल के रीतिसिद्ध परम्परा के कवि और आचार्य हैं। इन दोनों कवियों के आचार्य और कवि होने के तत्वों को समझ चुके हैं। रीतिकाल के श्रृंगार तत्वों और उससे अलग इन कवियों की विशिष्टता को भी इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आपने समझ लिया है। देव और पद्माकर की कविता में निहित प्रकृति विवरण छायावाद की कविता की पृष्ठभूमि निर्मित करती है, इसे भी इन कवियों के प्रकृति-परक कविताओं से समझा जा सकता है। इन कवियों की भक्ति भावना भी हिंदी के स्वर्ण युग भक्ति युग की ध्वनि मौजूद है, इसे भी आपने समझ लिया होगा।

14.8 शब्दकोश

अनुप्रास : यह एक शब्दालंकार है। जब किसी पंक्ति में एक ही वर्ण या वर्ण-समूह दो या दो से अधिक बार बाता है, तो उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। जैसे निपट नीरव नंद निकेत एक ही वर्ण "न" को कई बार वुहराया गया है, अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

अभिधा : शब्द का अर्थ प्रकट करने की शक्ति को शब्द शक्ति कहते हैं। इसके तीन भेद हैं: अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। अभिधा शब्द की वह शक्ति है जिससे वाच्यार्थ प्रकट होता है। साधारण शब्दों में जिससे शब्द का सामान्य अर्थ सामने आता है।

अलंकरण : किसी पंक्ति, वाक्य या पद में जब. अलंकार का प्रयोग होता है, तो उस प्रयोग पद्धति को अलंकरण कहते हैं।

उक्ति वैचित्र्य : जब किसी कथन में विचित्रता होती है, उसे उक्ति वैचित्र्य कहते हैं।

काव्यांग : रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, छंद इत्यादि।

कुवलयानंद : अप्पयदीक्षित दारा लिखित अलंकार का ग्रंथ।

कोमलकांत पदावली : काव्य की मृदुल, कोमल और सुंदर पद रचना।

गुण : काव्य की वह विशेषता जिससे उसका सरलता से, मधुरता से या ओजस्वीता से अनुभव किया जा सके। काव्य में इन्हें क्रमशः प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण कहा जाता है।

घनाक्षरी: एक छंद का नाम जिसे हिंदी में कवित्त भी कहते हैं। इसमें अक्षरों का विन्यास इतना सघन और प्रवाहमय होता है कि इसी के कारण उसका नाम घनाक्षरी रखा गया है। इसके रूप घनाक्षरी, देव घनाक्षरी आदि कई भेद होते हैं। यह इकतीस से तैंतीस वर्षों का दंडक छंद है, जिसके पहले चरण में 16, 15 या 16, 16 अथवा 16, 17 वर्ण होते हैं। 33 वर्णों का देव घनाक्षरी छंद कवि देव ने बनाया था अतएव उन्हीं के नाम पर उसे देव घनाक्षरी कहा गया।

तुकान्त: छंद के पहले चरण में जिस शब्द से समाप्ति की जाती है, उसी उच्चारण से मिलते- जुलते शब्दों को अन्य चरणों में रखना। उदाहरण करते हैं, चरते हैं, हरते हैं।

पुराण शैली : इतिहास, मिथक, धर्म आदि का मिश्रण करते हुए रचना करना। कथा को धार्मिक और आस्थावादी दृष्टि से प्रस्तुत करना।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. देव की कविता शीर्षक प्रभाग देखें।
2. पद्माकर की कविता शीर्षक प्रभाग देखें।
3. क. रीतिसिद्ध ख. रीतिसिद्ध
4. क. गलत ख. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1. देव की कविता का वैशिष्ट्य शीर्षक प्रभाग देखें।
2. पद्माकर की कविता का वैशिष्ट्य शीर्षक प्रभाग देखें।
3. भाव विलास, रसविलास, भवानीविलास
4. हिम्मत बहादुर विरुदावली, जगाद्विनोद, प्रबोध पचासा
5. देव और पद्माकर शीर्षक प्रभाग देखें।

14.10 उपयोगी पाठ्य पुस्तक

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. देव और बिहारी : मिश्रबंधु
3. रीतिकाव्य की भूमिका : डॉ. नगेन्द्र

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. देव की कविता के वैशिष्ट्य का रेखांकन कीजिए।
2. पद्माकर की कविता के वैशिष्ट्य का रेखांकन कीजिए।